अध्याय ८

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्री रामानन्द राय के बीच वार्तालाप

आठवें अध्याय का सारांश श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में दिया है। जियड़-नृसिंह मन्दिर में दर्शन के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु गोदावरी नदी के तट पर स्थित विद्यानगर नामक स्थान पर गये। जब श्रील रामानन्द राय नदी में स्नान करने वहाँ गये, तभी दोनों की भेंट हुई। अपना परिचय देने के बाद श्री रामानन्द राय ने श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रार्थना की कि वे कुछ दिनों तक गाँव में रहें। उनकी प्रार्थना मानकर चैतन्य महाप्रभु वहाँ कुछ वैदिक ब्राह्मणों के घर में रहे। श्रील रामानन्द राय हररोज संध्या-समय श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने आते थे। सामान्य वस्त्र धारण किये रामानन्द राय ने महाप्रभु को सादर नमस्कार किया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे पूजा के उद्देश्य और उसकी विधि के विषय में प्रश्न पूछे और उन्हें वैदिक साहित्य से कुछ श्लोक सुनाने को भी कहा।

सर्वप्रथम श्रील रामानन्द राय ने वर्णाश्रम पद्धति का व्याख्यान किया। उन्होंने *कर्मार्पण* के विषय में अनेक श्लोक सुनाये, जिनमें कहा गया था कि हर वस्तु भगवान् को समर्पित की जानी चाहिए। फिर उन्होंने अनासक्त कर्म, भक्तिमिश्रित ज्ञान तथा अन्त में भगवान् की रागानुगा भक्ति के विषय में बतलाया। श्रील रामानन्द राय द्वारा सुनाये गये श्लोकों को सुन लेने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने समस्त प्रकार की मानसिक कल्पना से रहित शुद्ध भक्ति को स्वीकार किया। इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से कहा कि वे

भक्ति के उच्चतर स्तर की व्याख्या करें। तब श्रील रामानन्द राय ने अनन्य भक्ति, भगवत्प्रेम, शुद्ध दास्य भाव, सख्य भाव तथा वात्सल्य भाव से भगवान् की सेवा के विषय में व्याख्या की। अन्त में उन्होंने माधुर्य भाव से भगवान् की सेवा के विषय में बतलाया। तत्पश्चात् उन्होंने बतलाया कि किस प्रकार विभिन्न उपायों से माधुर्य भाव को विकसित किया जा सकता है। यह माधुर्य प्रेम कृष्ण के प्रति श्रीमती राधारानी के प्रेम में सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त करता है। इसके बाद उन्होंने श्रीमती राधारानी की स्थिति तथा भगवत्प्रेम के रसों का वर्णन किया। तब श्रील रामानन्द राय ने अपना एक श्लोक सुनाया, जो *प्रेम-विलास-विवर्त* से सम्बन्धित था। उन्होंने यह भी बतलाया कि माधुर्य प्रेम की सारी अवस्थाएँ वृन्दावनवासियों, विशेषतया गोपियों की कृपा के माध्यम से प्राप्त की जा सकती हैं। इस तरह उन्होंने इन सारे विषयों का स्पष्टता से वर्णन किया। श्रील रामानन्द राय ने धीरे-धीरे महाप्रभु की स्थिति समझ ली और जब श्रील चैतन्य महाप्रभु ने अपना वास्तविक रूप प्रदर्शित किया, तो रामानन्द राय बेहोश हो गये। कुछ दिनों बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से कहा कि वे सरकारी नौकरी से अवकाश लेकर जगन्नाथ पुरी चले आयें। रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के मिलन का यह विवरण स्वरूप दामोदर गोस्वामी की कड़चा (स्मृति-पुस्तिका) से लिया गया है।

सञ्चार्य रामाभिध-भक्त-मेघे
स्व-भक्ति-सिद्धान्त-चयामृतानि ।
गौराब्धिरेतैरमुना वितीर्णैस्
तज्ज्ञत्व-रत्नालयतां प्रयाति ॥ १ ॥

सञ्चार्य रामाभिध-भक्त-मेघे
स्व-भक्ति-सिद्धान्त-चयामृतानि ।
गौराब्धिरेतैरमुना वितीर्णैस्
तज्ज्ञत्व-रत्नालयतां प्रयाति ॥ १ ॥

सञ्चार्य—शक्ति प्रदान करके; **राम-अभिध**—राम नाम का; **भक्त-मेघे**—मेघ-सदृश भक्त में; **स्व-भक्ति**—अपनी भक्ति के; **सिद्धान्त**—सिद्धान्त का; **चय**—सारा संग्रह; **अमृतानि**—अमृत; **गौर-अब्धिः**—श्री चैतन्य महाप्रभु रूपी समुद्र; **एतैः**—इनसे; **अमुना**—

श्री रामानन्द राय रूपी मेघ से; **वितीर्णैः**—वितरित करना; **तत्-ज्ञत्व**—भक्ति के ज्ञान का; **रत्न-आलयताम्**—रत्नों से भरपूर समुद्र होने का गुण; **प्रयाति**—पूरा हुआ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु, जो गौरांग भी कहलाते हैं, भक्ति विषयक समस्त सैद्धान्तिक ज्ञान के सागर हैं। उन्होंने श्री रामानन्द राय को शक्ति प्रदान की, जिनकी तुलना भक्ति के बादल से की जा सकती है। यह बादल भक्ति के समस्त सैद्धान्तिक निष्कर्षों रूपी जल से पूरित था, और सागर द्वारा शक्तिप्रदत्त था कि वह इस जल को स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु रूपी समुद्र के ऊपर फैला दे। इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु रूपी समुद्र स्वयं शुद्ध भक्ति के ज्ञान रूपी रत्नों से भर गया।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।
जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ २॥

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।
जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ २॥

जय जय—जय हो; **श्री-चैतन्य**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **जय**—जय हो; **नित्यानन्द**—नित्यानन्द प्रभु; **जय अद्वैत-चन्द्र**—अद्वैत आचार्य की जय हो; **जय गौर-भक्त-वृन्द**—श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

पूर्व-रीते प्रभु आगे गमन करिला ।
'जियड़-नृसिंह'-क्षेत्रे कत-दिने गेला ॥ ३॥

पूर्व-रीते प्रभु आगे गमन करिला ।
'जियड़-नृसिंह'-क्षेत्रे कत-दिने गेला ॥ ३॥

पूर्व-रीते—उनके पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **आगे**—

आगे; **गमन**—प्रस्थान; **करिला**—किया; **जियड़-नृसिंह**—जियड़ नृसिंह; **क्षेत्रे**—तीर्थ स्थान पर; **कत-दिने**—कुछ दिनों के बाद; **गेला**—पहुँचे।

अनुवाद

अपने पूर्ववर्ती कार्यक्रम के अनुसार श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे यात्रा की और कुछ दिनों के बाद जियड़-नृसिंह नामक तीर्थस्थान पहुँचे।

तात्पर्य

जियड़-नृसिंह मन्दिर विशाखापत्तन से लगभग ५ मील की दूरी पर एक पहाड़ी की चोटी पर स्थित है। वहाँ पर दक्षिण भारतीय रेलवे पर सिंहाचल नामक एक रेलवे स्टेशन है। सिंहाचल नाम से विख्यात मन्दिर विशाखापत्तन क्षेत्र का सर्वश्रेष्ठ मन्दिर है। यह मन्दिर अत्यन्त वैभवयुक्त है और स्थानीय भवन निर्माण कला का अनूठा उदाहरण है। एक शिलालेख में यह उल्लेख है कि पहले किसी रानी ने अर्चाविग्रह को सोने का पानी चढ़ाया था। *विशाखापत्तनम गजेटियर* में इसका वर्णन मिलता है। मन्दिर के चारों ओर पुजारियों तथा भक्तों के रहने के लिए मकान बने हैं। इस समय दर्शनार्थी भक्तों के लिए अनेक आवासीय मकान बन गये हैं। मूल विग्रह मन्दिर के गर्त में स्थित है, किन्तु उनकी एक अनुकृति भी है, जो *विजय-मूर्ति* कहलाती है। यह छोटी मूर्ति मन्दिर से हिलाई जा सकती है और शोभायात्रा में ले जाई जा सकती है। सारे पुजारी सामान्यतया रामानुज सम्प्रदाय के हैं, और उन्हीं पर अर्चाविग्रह की पूजा का भार है।

नृसिंह देखिया कैल दण्डवत्प्रणति ।
प्रेमावेशे कैल बहु नृत्य-गीत-स्तुति ॥ ४॥

नृसिंह देखिया कैल दण्डवत्प्रणति ।
प्रेमावेशे कैल बहु नृत्य-गीत-स्तुति ॥ ४॥

नृसिंह देखिया—मन्दिर में भगवान् नृसिंह के दर्शन करके; **कैल**—किया; **दण्डवत्-प्रणति**—नमस्कार (दण्डवत् प्रणाम); **प्रेमावेशे**—प्रेमावेश में; **कैल**—किया; **बहु**—सभी प्रकार के; **नृत्य**—नृत्य; **गीत**—कीर्तन; **स्तुति**—स्तुति करना।

अनुवाद

मन्दिर में भगवान् नृसिंह के अर्चाविग्रह का दर्शन करके श्री चैतन्य

महाप्रभु ने दण्डवत् प्रणाम किया। फिर प्रेमावेश में उन्होंने अनेक प्रकार से नृत्य किया, कीर्तन किया और स्तुतियाँ कीं।

"श्री-नृसिंह, जय नृसिंह, जय जय नृसिंह ।
प्रह्लादेश जय पद्मा-मुख-पद्म-भृङ्ग" ॥ ५ ॥
" श्री-नृसिंह, जय नृसिंह, जय जय नृसिंह ।
प्रह्लादेश जय पद्मा-मुख-पद्म-भृङ्ग" ॥ ५ ॥

श्री-नृसिंह—भगवान् नृसिंह लक्ष्मी सहित; **जय नृसिंह**—भगवान् नृसिंह की जय हो; **जय जय**—जय हो; **नृसिंह**—नृसिंह देव की; **प्रह्लाद-ईश**—प्रह्लाद महाराज के भगवान्; **जय**—जय हो; **पद्मा**—लक्ष्मी देवी; **मुख-पद्म**—मुखकमल; **भृङ्ग**—भौंरा।

अनुवाद

"'नृसिंहदेव की जय हो! नृसिंहदेव की जय हो! प्रह्लाद महाराज के प्रभु नृसिंहदेव की जय हो, जो भौंरे के समान ही लक्ष्मीजी के कमल सदृश मुख को देखने में सदैव लगे रहते हैं।'

तात्पर्य

लक्ष्मीजी सदैव भगवान् नृसिंहदेव द्वारा आलिंगित होती हैं। महान् भाष्यकार श्रील श्रीधर स्वामी ने श्रीमद्भागवत पर अपने भाष्य में इसका उल्लेख किया है। *श्रीमद्भागवत* के दसवें स्कन्ध की टीका करते हुए श्रीधर स्वामी ने निम्नलिखित श्लोक (१०.८७.१) की रचना की है :

वागीश यस्यवदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि।
यस्यास्ते हृदये सम्वित् तं नृसिंहमहं भजे॥

"विद्या की देवी सरस्वती सदैव भगवान् नृसिंहदेव की सहायता करती हैं और वे लक्ष्मीजी का सदैव अपने वक्षस्थल पर आलिंगन करते हैं। भगवान् सदैव अपने आप ज्ञान में पूर्ण हैं। हम उन नृसिंहदेव को नमस्कार करते हैं।"

इसी प्रकार *श्रीमद्भागवत* के प्रथम स्कंध (१.१.१) की टीका करते हुए श्रीधर स्वामी ने नृसिंहदेव का वर्णन इस प्रकार किया है :

प्रह्लाद-हृदयाह्लादं भक्ताविद्याविदारणम्।
शरदिन्दुरुचिं वन्दे पारीन्द्रवदनं हरिम्॥

"मैं उन भगवान् नृसिंहदेव को नमस्कार करता हूँ, जो प्रह्लाद महाराज को उनके हृदय के भीतर से सदैव प्रकाश प्रदान करते हैं, और जो भक्तों पर आक्रमण करने वाली अविद्या का सदैव विनाश करते हैं। उनकी कृपा चाँदनी की तरह फैली हुई है, और उनका मुख सिंह के समान है। मैं उन्हें बारम्बार नमस्कार करता हूँ।"

उग्रोऽप्यनुग्र एवायं स्व-भक्तानां नृ-केशरी ।
केशरीव स्व-पोतानामन्येषां उग्र-विक्रमः ॥ ६॥

उग्रोऽप्यनुग्र एवायं स्व-भक्तानां नृ-केशरी ।
केशरीव स्व-पोतानामन्येषां उग्र-विक्रमः ॥ ६ ॥

उग्रः—उग्र; **अपि**—यद्यपि; **अनुग्रः**—दयावान; **एव**—निश्चित रूप से; **अयम्**—यह; **स्व-भक्तानाम्**—अपने शुद्ध भक्तों को; **नृ-केशरी**—मनुष्य और सिंह के शरीर वाले; **केशरी इव**—शेरनी की भाँती; **स्व-पोतानाम्**—अपने बच्चों को; **अन्येषाम्**—अन्यों के लिए; **उग्र**—उग्र; **विक्रमः**—जिसकी शक्ति।

अनुवाद

"'यद्यपि सिंहिनी अत्यन्त हिंस्र होती है, किन्तु वह अपने बच्चों के प्रति अत्यन्त दयालु होती है। इसी तरह यद्यपि नृसिंहदेव हिरण्यकशिपु जैसे अभक्तों के प्रति अत्यन्त उग्र हैं, किन्तु वे प्रह्लाद महाराज जैसे भक्तों के प्रति अत्यन्त कोमल एवं दयालु हैं।'"

तात्पर्य

यह *श्रीमद्भागवत* के सातवें स्कन्ध के श्लोक (७.९.१) पर श्रीधर स्वामी द्वारा दिये गये भाष्य का श्लोक है।

এই-মত নানা শ্লোক পড়ি' স্তুতি কৈল ।
নৃসিংহ-সেবক মালা-প্রসাদ আনি' দিল ॥৭॥

এই-মত নানা শ্লোক পড়ি' স্তুতি কৈল ।
নৃসিংহ-সেবক মালা-প্রসাদ আনি' দিল ॥ ৭॥

এই-মত—इस प्रकार; **नाना**—नाना प्रकार के; **श्लोक**—श्लोक; **पड़ि'**—पढ़कर; **स्तुति**—स्तुतियाँ; **कैल**—की; **नृसिंह-सेवक**—मन्दिर में भगवान् नृसिंह का पुजारी; **माला**—

मालाएँ; **प्रसाद**—भगवान् नृसिंहदेव के भोजन का बचा हुआ प्रसाद; **आनि'**—लाकर; **दिल**—दिया।

अनुवाद

इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु ने शास्त्रों से अनेक श्लोक सुनाये। तब नृसिंहदेव के पुजारी ने महाप्रभु को मालाएँ तथा प्रसाद लाकर दिया।

पूर्ववत्कोन विप्रे कैल निमन्त्रण ।
सेइ रात्रि ताहाँ रहि' करिला गमन ॥ ८॥

पूर्ववत्कोन विप्रे कैल निमन्त्रण ।
सेइ रात्रि ताहाँ रहि' करिला गमन ॥ ८॥

पूर्व-वत्—पहले की तरह; **कोन**—किसी; **विप्रे**—ब्राह्मण; **कैल**—दिया; **निमन्त्रण**—निमंत्रण; **सेइ रात्रि**—उस रात; **ताहाँ**—वहाँ; **रहि'**—रहकर; **करिला**—किया; **गमन**—प्रस्थान।

अनुवाद

पहले की ही तरह एक ब्राह्मण ने श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने यहाँ आमन्त्रित किया। महाप्रभु ने वह रात्रि मन्दिर में ही बिताइ और पुनः अपनी यात्रा शुरू कर दी।

प्रभाते उठिया प्रभु चलिला प्रेमावेशे ।
दिग्विदिक्नाहि ज्ञान रात्रि-दिवसे ॥ ९॥

प्रभाते उठिया प्रभु चलिला प्रेमावेशे ।
दिग्विदिक्नाहि ज्ञान रात्रि-दिवसे ॥ ९॥

प्रभाते—प्रातःकाल; **उठिया**—उठकर; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **चलिला**—गये; **प्रेम-आवेशे**—महान् प्रेमावेश में; **दिक्-विदिक्**—सही अथवा गलत दिशा; **नाहि**—नहीं था; **ज्ञान**—ज्ञान; **रात्रि-दिवसे**—दिन और रात।

अनुवाद

अगली सुबह श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रेमावेश में अपनी यात्रा पर बिना किसी दिशा-ज्ञान के ही चल पड़े और दिन-रात चलते गये।

পূর্ববৎ'বৈষ্ণব' করি' সর্ব লোক-গণে ।
গোদাবরী-তীরে প্রভু আইলা কত-দিনে ॥১০॥

पूर्ववत् 'वैष्णव' करि' सर्व लोक-गणे ।
गोदावरी-तीरे प्रभु आइला कत-दिने ॥ १० ॥

पूर्व-वत्—पहले की तरह; **वैष्णव**—भक्त; **करि'**—बनाकर; **सर्व**—सब; **लोक-गणे**—लोगों को; **गोदावरी-तीरे**—गोदावरी नदी के तट पर; **प्रभु**—महाप्रभु; **आइला**—पहुँचे; **कत-दिने**—कुछ दिनों के बाद।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पहले की ही तरह मार्ग में मिलने वाले अनेक लोगों को वैष्णव बनाया। कुछ दिनों बाद महाप्रभु गोदावरी नदी के तट पर जा पहुँचे।

গোদাবরী দেখি' হইল 'যমুনা'-স্মরণ ।
তীরে বন দেখি' স্মৃতি হৈল বৃন্দাবন ॥১১॥

गोदावरी देखि' हइल 'यमुना'-स्मरण ।
तीरे वन देखि' स्मृति हैल वृन्दावन ॥ ११ ॥

गोदावरी—गोदावरी नदी; **देखि'**—देखकर; **हइल**—हुआ; **यमुना स्मरण**—यमुना नदी का स्मरण; **तीरे**—तट पर; **वन**—वन; **देखि'**—देखकर; **स्मृति**—स्मृति; **हैल**—थी; **वृन्दावन**—श्री वृन्दावन।

अनुवाद

जब उन्होंने गोदावरी नदी देखी, तो उन्हें यमुना नदी का स्मरण हो आया और जब उन्होंने नदी के तट पर स्थित वन देखा, तो उन्हें श्री वृन्दावन धाम की याद हो आई।

সেই বনে কত-ক্ষণ করি' নৃত্য-গান ।
গোদাবরী পার হঞা তাহাঁ কৈল স্নান ॥১২॥

सेइ वने कत-क्षण करि' नृत्य-गान ।
गोदावरी पार हञा ताहाँ कैल स्नान ॥ १२ ॥

सेइ वने—उस वन में; **कत-क्षण**—कुछ काल के लिए; **करि'**—करके; **नृत्य-गान**—नृत्य और कीर्तन; **गोदावरी**—गोदावरी नदी; **पार हञा**—पार करके; **ताहाँ**—वहाँ; **कैल**—किया; **स्नान**—स्नान।

अनुवाद

इस वन में कुछ समय तक कुछ काल के लिए पहले की तरह कीर्तन तथा नृत्य करने के बाद महाप्रभु ने नदी पार की और दूसरे किनारे पर पहुँचकर स्नान किया।

घाट छाड़ि' कत-दूरे जल-सन्निधाने ।
वसि' प्रभु करे कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तने ॥ १३ ॥

घाट छाड़ि' कत-दूरे जल-सन्निधाने ।
वसि' प्रभु करे कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तने ॥ १३ ॥

घाट छाड़ि'—स्नान-घाट छोड़कर; **कत-दूरे**—थोड़ी दूरी पर; **जल-सन्निधाने**—जल के निकट; **वसि'**—बैठकर; **प्रभु**—महाप्रभु; **करे**—करने लगे; **कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तने**—भगवान् कृष्ण के पावन नाम का संकीर्तन।

अनुवाद

नदी में स्नान करने के बाद महाप्रभु स्नान-घाट से कुछ दूर गये और कृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन में लग गये।

हेन-काले दोलाय चड़ि' रामानन्द राय ।
स्नान करिबारे आइला, बाजना बाजाय ॥ १४ ॥

हेन-काले दोलाय चड़ि' रामानन्द राय ।
स्नान करिबारे आइला, बाजना बाजाय ॥ १४ ॥

हेन-काले—इस समय; **दोलाय चड़ि'**—पालकी में चढ़कर; **रामानन्द राय**—श्रील रामानन्द राय; **स्नान**—स्नान; **करिबारे**—करने के लिए; **आइला**—वहाँ आये; **बाजना बाजाय**—बाजे-गाजे के साथ।

अनुवाद

उस समय बाजे-गाजे के साथ पालकी पर चढ़कर रामानन्द राय वहाँ स्नान करने आये।

তাঁর সঙ্গে বহু আইলা বৈদিক ব্রাহ্মণ ।
বিধি-মতে কৈল তেঁহো স্নানাদি-তর্পণ ॥ ১৫ ॥

তাঁর সঙ্গে বহু আইলা বৈদিক ব্রাহ্মণ ।
বিধি-মতে কৈল তেঁহো স্নানাদি-তর্পণ ॥ ১৫ ॥

তাঁর সঙ্গে—उनके साथ; **বহু**—बहुत से; **আইলা**—आये; **বৈদিক**—वैदिक सिद्धान्तों का पालन करने वाले; **ব্রাহ্মণ**—ब्राह्मण; **বিধি-মতে**—विधि के अनुसार; **কৈল**—किया; **তেঁহো**—उन्होंने, श्री रामानन्द राय ने; **স্নান-আদি-তর্পণ**—स्नान, तर्पण इत्यादि।

अनुवाद

रामानन्द राय के साथ साथ वैदिक सिद्धान्तों का पालन करने वाले अनेक ब्राह्मण थे। रामानन्द राय ने वैदिक रीति से स्नान किया और अपने पितरों को तर्पण दिया।

প্রভু তাঁরে দেখি' জানিল—এই রাম-রায় ।
তাঁহারে মিলিতে প্রভুর মন উঠি' ধায় ॥ ১৬ ॥

প্রভু তাঁরে দেখি' জানিল—এই রাম-রায় ।
তাঁহারে মিলিতে প্রভুর মন উঠি' ধায় ॥ ১৬ ॥

প্রভু—श्री चैतन्य महाप्रभु; **তাঁরে**—उनको; **দেখি'**—देखकर; **জানিল**—जान गये; **এই**—यह; **রাম-রায়**—श्रील रामानन्द राय; **তাঁহারে**—उनको; **মিলিতে**—मिलने के लिए; **প্রভুর**—चैतन्य महाप्रभु का; **মন**—मन; **উঠি'**—उठकर; **ধায়**—पीछे भागता है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जान गये कि जो व्यक्ति नदी में स्नान करने आये हैं, वे रामानन्द राय हैं। महाप्रभु उनसे मिलने के लिए इतने इच्छुक हो उठे कि उनका मन उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगा।

তথাপি ধৈর্য ধরি' প্রভু রহিলা বসিয়া ।
রামানন্দ আইলা অপূর্ব সন্ন্যাসী দেখিয়া ॥ ১৭ ॥

তথাপি ধৈর্য্য ধরি' প্রভু রহিলা বসিয়া ।
রামানন্দ আইলা অপূর্ব সন্ন্যাসী দেখিয়া ॥ ১৭ ॥

तथापि—तथापि; **धरिय धरि'**—धैर्य धरकर; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **रहिला**—रहे; **वसिया**—बैठे; **रामानन्द**—श्रील रामानन्द राय; **आइला**—पहुँचे; **अपूर्व**—अपूर्व; **सन्न्यासी**—संन्यासी; **देखिया**—देखकर।

अनुवाद

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु का मन उसके पीछे पीछे दौड़ रहा था, किन्तु वे धैर्यपूर्वक बैठे रहे। तब रामानन्द राय इस अपूर्व संन्यासी को देखकर उनसे मिलने आये।

सूर्य-शत-सम कान्ति, अरुण वसन ।
सुवलित प्रकाण्ड देह, कमल-लोचन ॥ १८॥

सूर्य्र-शत-सम कान्ति, अरुण वसन ।
सुबलित प्रकाण्ड देह, कमल-लोचन ॥ १८॥

सूर्य्र-शत—सैकड़ों सूर्य; **सम**—के समान; **कान्ति**—चमक; **अरुण**—केसरिया; **वसन**—वस्त्र; **सुबलित**—अत्यन्त सुदृढ़; **प्रकाण्ड**—विशाल; **देह**—शरीर; **कमल-लोचन**—कमल-दल जैसे नेत्र।

अनुवाद

श्रील रामानन्द राय ने देखा कि श्री चैतन्य महाप्रभु सौ सूर्यों के समान कान्तिवान हैं। उन्होंने केसरिया वस्त्र पहन रखा था। उनका शरीर विशाल तथा सुदृढ़ था और उनकी आँखें कमल की पंखुड़ियों जैसी थीं।

देखिया ताँहार मने हैल चमत्कार ।
आसिया करिल दण्डवत्नमस्कार ॥ १९॥

देखिया ताँहार मने हैल चमत्कार ।
आसिया करिल दण्डवत्नमस्कार ॥ १९॥

देखिया—देखकर; **ताँहार**—उनके; **मने**—मन में; **हैल**—हो गया; **चमत्कार**—आश्चर्य; **आसिया**—वहाँ आकर; **करिल**—किया; **दण्ड-वत्**—दण्डवत्; **नमस्कार**—नमस्कार।

अनुवाद

जब रामानन्द राय ने इस अद्भुत संन्यासी को देखा, तो वे

आश्चर्यचकित रह गये। वे उनके पास गये और तुरन्त भूमि पर दण्डवत् गिरकर उन्हें सादर नमस्कार किया।

উঠি' প্রভু কহে,—উঠ, কহ 'কৃষ্ণ' 'কৃষ্ণ' ।
তারে আলিঙ্গিতে প্রভুর হৃদয় সতৃষ্ণ ॥২০॥

उठि' प्रभु कहे,—ऊठ, कह 'कृष्ण' 'कृष्ण' ।
तारे आलिङ्गिते प्रभुर हृदय सतृष्ण ॥ २० ॥

उठि'—उठकर; **प्रभु**—महाप्रभु ने; **कहे**—कहा; **उठ**—उठो; **कह**—कहो; **कृष्ण कृष्ण**—कृष्ण कृष्ण; **तारे**—उनका; **आलिङ्गिते**—आलिंगन करने के लिए; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **हृदय**—हृदय; **स-तृष्ण**—बहुत उत्सुक।

अनुवाद

महाप्रभु खड़े हो गये और उन्होंने रामानन्द राय से उठने तथा कृष्ण-नाम का कीर्तन करने के लिए कहा। श्री चैतन्य महाप्रभु उनका आलिंगन करने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे।

তথাপি পুছিল,—তুমি রায় রামানন্দ? ।
তেঁহো কহে,—সেই হঙ দাস শূদ্র মন্দ ॥২১॥

तथापि पुछिल,—तुमि राय रामानन्द? ।
तेंहो कहे,—सेइ हङ दास शूद्र मन्द ॥ २१ ॥

तथापि—तथापि; **पुछिल**—उन्होंने पूछा; **तुमि**—तुम; **राय रामानन्द**—रामानन्द राय; **तेंहो कहे**—उन्होंने उत्तर दिया; **सेइ हङ**—मैं वही हूँ; **दास**—सेवक; **शूद्र**—शूद्र जाति वाला; **मन्द**—अत्यन्त नीच।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने पूछा कि क्या आप रामानन्द राय हो? तो उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ, मैं आपका तुच्छ दास हूँ और शूद्र जाति का हूँ।"

তবে তারে কৈল প্রভু দৃঢ় আলিঙ্গন ।
প্রেমাবেশে প্রভু-ভৃত্য দোঁহে অচেতন ॥২২॥

तबे तारे कैल प्रभु दृढ़ आलिङ्गन ।
प्रेमावेशे प्रभु-भृत्य दोंहे अचेतन ॥ २२ ॥

तबे—तत्पश्चात्; **तारे**—उनको; **कैल**—किया; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **दृढ़**—दृढ़; **आलिङ्गन**—आलिंगन; **प्रेम-आवेशे**—प्रेमावेश में; **प्रभु-भृत्य**—स्वामी तथा सेवक; **दोंहे**—दोनों; **अचेतन**—अचेत।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री रामानन्द राय का दृढ़ता से आलिंगन किया। इस तरह प्रभु तथा दास दोनों प्रेमावेश में अचेत-से हो गये।

স্বাভাবিক প্রেম দোঁহার উদয় করিলা ।
দুঁহা আলিঙ্গিয়া দুঁহে ভূমিতে পড়িলা ॥২৩॥

स्वाभाविक प्रेम दोंहार उदय करिला ।
दुँहा आलिङ्गिया दुँहे भूमिते पड़िला ॥ २३ ॥

स्वाभाविक—स्वाभाविक; **प्रेम**—प्रेम; **दोंहार**—दोनों का; **उदय**—जाग पड़ा; **करिला**—था; **दुँहा**—दोनों; **आलिङ्गिया**—आलिंगन करके; **दुँहे**—वे दोनों; **भूमिते**—भूमि पर; **पड़िला**—गिर पड़े।

अनुवाद

दोनों में एक-दूसरे के प्रति स्वाभाविक प्रेम उमड़ आया, दोनों ने आलिंगन किया और दोनों भूमि पर गिर पड़े।

तात्पर्य

श्रील रामानन्द राय विशाखा गोपी के अवतार थे। चुँकि श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् भगवान् कृष्ण थे, अतएव विशाखा तथा कृष्ण में प्रेम का उदय होना स्वाभाविक था। श्री कृष्णचैतन्य महाप्रभु श्रीमती राधारानी तथा कृष्ण के सम्मिलित रूप हैं और विशाखा गोपी श्रीमती राधारानी की प्रधान सहायिका थी। रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक-दूसरे का दृढ़ आलिंगन किया, क्योंकि उनमें स्वाभाविक प्रेम उमड़ आया था।

স্তম্ভ, স্বেদ, অশ্রু, কম্প, পুলক, বৈবর্ণ্য ।
দুঁহার মুখেতে শুনি' গদগদ 'কৃষ্ণ' বর্ণ ॥২৪॥

स्तम्भ, स्वेद, अश्रु, कम्प, पुलक, वैवर्ण्य ।
दुँहार मुखेते शुनि' गद्‌गद 'कृष्ण' वर्ण ॥ २४॥

स्तम्भ—जड़; **स्वेद**—पसीना; **अश्रु**—अश्रु; **कम्प**—कम्पन; **पुलक**—पुलकित होना; **वैवर्ण्य**—पीलापन; **दुँहार**—दोनों के; **मुखेते**—मुख में; **शुनि'**—सुनकर; **गद्‌गद**—गद्‌गद होने लगा; **कृष्ण वर्ण**—कृष्ण का नाम।

अनुवाद

एक-दूसरे का आलिंगन करते समय उनमें स्तम्भ, स्वेद, अश्रु, कम्प, पुलक, वैवर्ण्य—ये भावलक्षण प्रकट हो आये। उनके मुखों से रुक-रुककर "कृष्ण" शब्द निकल रहा था।

দেখিয়া ব্রাহ্মণ-গণের হৈল চমত্কার ।
বৈদিক ব্রাহ্মণ সব করেন বিচার ॥২৫॥

দেখিয়া ব্রাহ্মণ-গণের হৈল চমত্কার ।
বৈদিক ব্রাহ্মণ সব করেন বিচার ॥ ২৫॥

देखिया—यह देखकर; **ब्राह्मण-गणेर**—कर्मकण्डी ब्राह्मण; **हैल**—हो गये; **चमत्कार**—आश्चर्यचकित; **वैदिक**—वैदिक कर्मकाण्डी; **ब्राह्मण**—ब्राह्मण; **सब**—सबने; **करेन**—किया; **विचार**—विचार।

अनुवाद

जब रूढ़िवादी कर्मकाण्डी वैदिक ब्राह्मणों ने इस प्रेम-आवेश के प्राकट्य को देखा, तो वे आश्चर्यचकित रह गये। वे सारे ब्राह्मण इस प्रकार विचार करने लगे।

এই ত' সন্ন্যাসীর তেজ দেখি ব্রহ্ম-সম ।
শূদ্রে আলিঙ্গিয়া কেনে করেন ক্রন্দন ॥২৬॥

এই ত' সন্ন্যাসীর তেজ দেখি ব্রহ্ম-সম ।
শূদ্রে আলিঙ্গিয়া কেনে করেন ক্রন্দন ॥ ২৬॥

एइ त'—यह निस्सन्देह; **सन्न्यासीर**—संन्यासी श्री चैतन्य महाप्रभु; **तेज**—शारीरिक ज्योति; **देखि**—हम देखते हैं; **ब्रह्म-सम**—ब्रह्म की ही भाँति; **शूद्रे**—शूद्र अथवा श्रमिक; **आलिङ्गिया**—आलिंगन करके; **केने**—क्यों; **करेन**—करता है; **क्रन्दन**—रोना।

अनुवाद

ब्राह्मणों ने सोचा, "हम देख रहे हैं कि इस संन्यासी में ब्रह्म जैसा तेज है, किन्तु यह समाज के चौथे वर्ण के एक शूद्र का आलिंगन करके रो क्यों रहा है?"

এই মহারাজ——মহা-পণ্ডিত, গম্ভীর ।
সন্ন্যাসীর স্পর্শে মত্ত হইলা অস্থির ॥২৭॥

এइ महाराज——महा-पण्डित, गम्भीर ।
सन्यासीर स्पर्शे मत्त हइला अस्थिर ॥ २७॥

एइ महाराज—यह रामानन्द राय जो गवर्नर है; **महा-पण्डित**—महान् पण्डित; **गम्भीर**—गम्भीर; **सन्यासीर स्पर्शे**—एक संन्यासी के स्पर्श से; **मत्त**—पागल; **हइला**—हो गया; **अस्थिर**—अस्थिर।

अनुवाद

उन्होंने सोचा, "यह रामानन्द राय तो मद्रास का गवर्नर है, प्रकाण्ड पण्डित और गम्भीर व्यक्ति है, किन्तु इस संन्यासी का स्पर्श करके यह पागल व्यक्ति की तरह व्याकुल हो उठा है।"

এই-মত বিপ্র-গণ ভাবে মনে মন ।
বিজাতীয় লোক দেখি, প্রভু কৈল সম্বরণ ॥২৮॥

एइ-मत विप्र-गण भावे मने मन ।
विजातीय लोक देखि, प्रभु कैल सम्वरण ॥ २८॥

एइ-मत—इस प्रकार; **विप्र-गण**—सभी ब्राह्मण; **भावे**—सोचते हैं; **मने मन**—अपने मन में; **विजातीय लोक**—बाहरी लोग; **देखि**—देखकर; **प्रभु**—चैतन्य महाप्रभु ने; **कैल**—किया; **सम्वरण**—संभाला।

अनुवाद

जब सारे ब्राह्मण श्री चैतन्य महाप्रभु एवं रामानन्द राय के कार्यों के विषय में इस प्रकार सोच रहे थे, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन बाहरी ब्राह्मणों को देख लिया, अतएव उन्होंने अपने दिव्य भावों को रोका।

तात्पर्य

रामानन्द राय का श्री चैतन्य महाप्रभु से घनिष्ठ सम्बन्ध था, अतएव उन्हें *सजातीय* अर्थात् भगवान् के अन्तरंग समुदाय के व्यक्ति माने जा सकते हैं। किन्तु सारे ब्राह्मण वैदिक अनुष्ठानों को मानने वाले थे, अतएव वे श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ किसी प्रकार की घनिष्ठता नहीं बना पा रहे थे। इसीलिए इन्हें *विजातीय लोक* कहा गया है। दूसरे शब्दों में, ये शुद्ध भक्त नहीं थे। कोई कितना ही विद्वान ब्राह्मण क्यों न हो, किन्तु यदि वह शुद्ध भक्त नहीं है, तो वह *विजातीय* है—जाति-निकाला है या यों कह लें कि अभक्त है। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय भावविभोर होकर आलिंगन कर रहे थे, किन्तु महाप्रभु ने बाहरी ब्राह्मणों को देखकर अपने भावों को रोका।

সুস্থ হঞা দুঁহে সেই স্থানেতে বসিলা ।
তবে হাসি' মহাপ্রভু কহিতে লাগিলা ॥২৯॥

সুস্থ হঞা দুঁহে সেই স্থানেতে বসিলা ।
তবে হাসি' মহাপ্রভু কহিতে লাগিলা ॥ ২৯ ॥

সু-স্থ হঞা—स्थिर होकर; **দুঁহে**—वे दोनों; **সেই**—उस; **স্থানেতে**—स्थान पर; **বসিলা**—बैठ गये; **তবে**—तब; **হাসি'**—मुस्कुराकर; **মহাপ্রভু**—चैतन्य महाप्रभु; **কহিতে**—बोलने; **লাগিলা**—लगे।

अनुवाद

जब दोनों के मन स्थिर हो गये, तो दोनों बैठ गये और श्री चैतन्य महाप्रभु ने हँसकर इस प्रकार कहना शुरू किया।

'সার্বভৌম ভট্টাচার্য কহিল তোমার গুণে ।
তোমারে মিলিতে মোরে করিল যতনে ॥৩০॥

'সার্বভৌম ভট্টাচার্য্য কহিল তোমার গুণে ।
তোমারে মিলিতে মোরে করিল যতনে ॥ ৩০ ॥

সার্বভৌম ভট্টাচার্য্য—सार्वभौम भट्टाचार्य ने; **কহিল**—कहा; **তোমার**—आपके; **গুণে**—गुणों; **তোমারে**—आपको; **মিলিতে**—मिलने के लिए; **মোরে**—मुझे; **করিল**—किया; **যতনে**—प्रयास।

अनुवाद

"सार्वभौम भट्टाचार्य ने आपके सारे अच्छे गुण मुझसे बतलाये हैं और उन्होंने मुझे प्रभावित करने का भरसक प्रयास किया कि मैं आपसे मिलूँ।

तोमा मिलिवारे मोर एथा आगमन ।
भाल हैल, अनायासे पाइलुँ दरशन' ॥ ३१॥
तोमा मिलिबारे मोर एथा आगमन ।
भाल हैल, अनायासे पाइलुँ दरशन' ॥ ३१ ॥

तोमा—आपको; **मिलिबारे**—मिलने के लिए; **मोर**—मेरा; **एथा**—यहाँ; **आगमन**—आना; **भाल हैल**—बहुत अच्छा हुआ; **अनायासे**—बिना किसी कठिनाई के; **पाइलुँ**—मैंने पा लिया है; **दरशन**—दर्शन।

अनुवाद

"निस्सन्देह, मैं यहाँ आपसे ही मिलने आया हूँ। अच्छा हुआ कि बिना प्रयास के आपसे यहाँ भेंट हो गई।"

राय कहे,—सार्वभौम करे भृत्य-ज्ञान ।
परोक्षेह मोर हिते हय सावधान ॥ ३२॥
राय कहे,—सार्वभौम करे भृत्य-ज्ञान ।
परोक्षेह मोर हिते हय सावधान ॥ ३२ ॥

राय कहे—रामानन्द राय ने उत्तर दिया; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **करे**—करते हैं; **भृत्य-ज्ञान**—मुझे अपना सेवक समझते हैं; **परोक्षेह**—मेरी अनुपस्थिति में; **मोर**—मेरे; **हिते**—हित के लिए; **हय**—हैं; **सावधान**—सदा सावधान।

अनुवाद

रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "सार्वभौम भट्टाचार्य मुझे अपने सेवक की तरह मानते हैं। वे मेरी अनुपस्थिति में भी मेरा हित करने के लिए सोचते रहते हैं।

তাঁর কৃপায় পাইনু তোমার দরশন ।
আজি সফল হৈল মোর মনুষ্য-জনম ॥ ৩৩ ॥

তাঁর কৃপায় পাইনু তোমার দরশন ।
আজি সফল হৈল মোর মনুষ্য-জনম ॥ ৩৩ ॥

তাঁর কৃপায়—उनकी कृपा से; **পাইনু**—मैंने पाया है; **তোমার**—आपका; **দরশন**—दर्शन; **আজি**—आज; **স-ফল**—सफल; **হৈল**—हो गया है; **মোর**—मेरा; **মনুষ্য-জনম**—मनुष्य जन्म।

अनुवाद

"उनकी कृपा से मुझे यहाँ पर आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। फलतः मैं मानता हूँ कि आज मेरा मनुष्य-जन्म सफल हो गया।

সার্বভৌমে তোমার কৃপা,—তার এই চিহ্ন ।
অস্পৃশ্য স্পর্শিলে হঞা তাঁর প্রেমাধীন ॥ ৩৪ ॥

সার্বভৌমে তোমার কৃপা,—তার এই চিহ্ন ।
অস্পৃশ্য স্পর্শিলে হঞা তাঁর প্রেমাধীন ॥ ৩৪ ॥

সার্বভৌমে—सार्वभौम भट्टाचार्य पर; **তোমার**—आपकी; **কৃপা**—कृपा; **তার**—ऐसी कृपा का; **এই**—यह; **চিহ্ন**—चिह्न; **অস্পৃশ্য**—अछूत; **স্পর্শিলে**—आपने स्पर्श किया है; **হঞা**—होकर; **তাঁর**—उनके; **প্রেম-অধীন**—प्रेम से प्रेरित होकर।

अनुवाद

"मैं देख रहा हूँ कि आपने सार्वभौम भट्टाचार्य पर विशेष कृपा की है। अतएव आपने मेरा स्पर्श किया है, यद्यपि मैं अस्पृश्य (अछूत) हूँ। यह आपके प्रति उनके प्रेम के ही कारण है।

কাহাঁ তুমি—সাক্ষাতীশ্বর নারায়ণ ।
কাহাঁ মুঞি—রাজ-সেবী বিষয়ী শূদ্রাধম ॥ ৩৫ ॥

কাহাঁ তুমি—সাক্ষাতীশ্বর নারায়ণ ।
কাহাঁ মুঞি—রাজ-সেবী বিষয়ী শূদ্রাধম ॥ ৩৫ ॥

কাহাঁ—कहाँ; **তুমি**—आप; **সাক্ষাত্**—साक्षात्; **ঈশ্বর নারায়ণ**—पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्;

काहाँ—कहाँ; **मुञि**—मैं; **राज-सेवी**—सरकारी नौकर; **विषयी**—भौतिक; **शूद्र-अधम**—शूद्र से भी नीच, चुतर्थ श्रेणी का पुरुष।

अनुवाद

"आप साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण हैं और मैं भौतिकतावादी कार्यों में रुचि रखने वाला केवल एक सरकारी नौकर हूँ। निस्सन्देह, मैं शूद्रों में भी सबसे नीच हूँ।

মোর স্পর্শে না করিলে ঘৃণা, বেদ-ভয় ।
মোর দর্শন তোমা বেদে নিষেধয় ॥ ৩৬॥

मोर स्पर्शे ना करिले घृणा, वेद-भय ।
मोर दर्शन तोमा वेदे निषेधय ॥ ३६॥

मोर—मेरे; **स्पर्शे**—स्पर्श से; **ना**—नहीं; **करिले**—आपने की; **घृणा**—घृणा; **वेद-भय**—वेदों के आदेशों से भयभीत होकर; **मोर**—मेरा; **दर्शन**—दर्शन; **तोमा**—आप; **वेदे**—वेदों के आदेश; **निषेधय**—मनाही की गई है।

अनुवाद

"आपको इस वैदिक आदेश का भी भय नहीं है कि आपको शूद्र का संग नहीं करना चाहिए। यद्यपि वेदों में शूद्रों की संगति करने का निषेध है, किन्तु आपको मेरा स्पर्श करने में कोई घृणा नहीं हुई।

तात्पर्य

भगवद्गीता (९.३२) में भगवान् कहते हैं :

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

"हे पार्थ, जो मेरी शरण ग्रहण करते हैं, वे भले ही निम्न जन्म के—स्त्रियाँ, वैश्य तथा शूद्र—क्यों न हों, परम गन्तव्य को प्राप्त कर सकते हैं।"

पापयोनयः का अर्थ है, "निम्न जाति की स्त्रियों से उत्पन्न।" वैश्य व्यापारी होते हैं और शूद्र कामकाज करने वाले चाकर या सेवक होते हैं। वैदिक विभाजन के अनुसार वे निम्न जाति में आते हैं। निम्न जीवन का अर्थ है कृष्णभावनामृतविहीन जीवन। समाज में उच्च अथवा निम्न पद की गणना

मनुष्य की कृष्णभावना के अनुसार की जाती है। ब्राह्मण को सर्वोच्च पद पर इसीलिए माना जाता है, क्योंकि वह परम सत्य, ब्रह्म को जानता है। दूसरी जाति क्षत्रिय की है। वे भी ब्रह्म को जानते हैं, किन्तु ब्राह्मणों से कम। वैश्य तथा शूद्र भगवत्-चेतना को ठीक से नहीं समझते, किन्तु यदि भगवान् कृष्ण तथा गुरु की कृपा से वे कृष्णभावना ग्रहण करते हैं, तो वे निम्न जातियों के (*पापयोनयः*) नहीं रहते। यह स्पष्ट कहा गया है—*तेऽपि यान्ति परां गतिम्।*

जीवन का सर्वोच्च पद प्राप्त किये बिना कोई भी व्यक्ति भगवद्धाम वापस नहीं लौट सकता। भले ही कोई शूद्र, वैश्य या स्त्री क्यों न हो, यदि वह कृष्णभावना में भगवान् की सेवा में लगा रहता है, तो उसे स्त्री, शूद्र, वैश्य या शूद्र से अधम नहीं माना जा सकता। भगवान् की सेवा में लगा व्यक्ति भले ही निम्न कुल में उत्पन्न क्यों न हुआ हो, वह निम्न वंश का नहीं माना जा सकता। *पद्म-पुराण* में वर्जित किया गया है—*वीक्षते जाति सामान्यात् स याति नरकं ध्रुवम्।* जो व्यक्ति भगवद्भक्त से जन्म के आधार पर भेदभाव करता है, वह तुरन्त नरक जाता है। यद्यपि रामानन्द राय ने शूद्र कुल में जन्म लिया था, किन्तु उन्हें शूद्र नहीं माने जा सकते, क्योंकि वे महान् भक्त थे। वे दिव्य पद को प्राप्त थे। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनका आलिंगन किया। श्री रामानन्द राय ने आध्यात्मिक विनयशीलतावश ही अपने आपको शूद्र के रूप में प्रस्तुत किया (*राजसेवी विषयी शूद्राधम*)। भले ही कोई सरकारी नौकरी या अन्य किसी रुपये-पैसे के व्यापार में—भौतिकतावादी जीवन में—क्यों न लगा हो, उसे केवल कृष्णभावनामृत स्वीकार करना चाहिए। कृष्णभावनामृत अत्यन्त सरल विधि है। मनुष्य को केवल भगवन्नाम का जप और पापकर्म का निषेध करने वाले नियमों का पालन करने की आवश्यकता है। इस तरह से वह अस्पृश्य, विषयी या शूद्र नहीं रह जाता। जो आध्यात्मिक जीवन में उन्नत हैं, उन्हें अभक्तों की—अर्थात् सरकारी नौकरी वालों, इन्द्रिय-तृप्ति के लिए विषय-भोग में लगे हुए व्यक्तियों की या अन्यों की सेवा करने वालों की संगति नहीं करनी चाहिए। ऐसे लोग *विषयी* अर्थात् भौतिकतावादी माने जाते हैं। ऐसा कहा भी गया है :

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य
पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।

सन्दर्शनं विषयिनामथ योषितां च
हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु॥

"जो व्यक्ति अविद्या के सागर को लाँघने के उद्देश्य से भक्ति में गम्भीरतापूर्वक लगा हुआ है और जिसने सारे भौतिक कार्यों को त्याग दिया है, उसे कभी भी शूद्र, वैश्य या स्त्री को नहीं देखना चाहिए।" (*श्री चैतन्य चन्द्रोदय नाटक* ८.२३)।

তোমার কৃপায় তোমায় করায় নিন্দ্য-কর্ম ।
সাক্ষাতীশ্বর তুমি, কে জানে তোমার মর্ম ॥৩৭॥

তোমার কৃপায় তোমায় করায় নিন্দ্য-কর্ম ।
সাক্ষাতীশ্বর তুমি, কে জানে তোমার মর্ম ॥ ৩৭॥

तोमार कृपाय—आपकी कृपा; **तोमाय**—आपको; **कराय**—प्रेरणा देती है; **निन्द्य-कर्म**—निषिद्ध कर्म; **साक्षात् ईश्वर**—साक्षात् ईश्वर; **तुमि**—आप; **के जाने**—कौन जान सकता है; **तोमार**—आपका; **मर्म**—मर्म।

अनुवाद

"आप स्वयं साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, अतएव आपके प्रयोजन (रहस्य) को कोई नहीं समझ सकता। यह आपकी कृपा है कि आप मेरा स्पर्श कर रहे हैं, यद्यपि वेदों द्वारा इसकी अनुमति नहीं है।

तात्पर्य

किसी संन्यासी के लिए विषयी तथा भौतिकतावादी लोगों को देखना पूरी तरह वर्जित है। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी असीम अहैतुकी कृपा के कारण जन्म तथा पद पर विचार किये बिना ही किसी पर भी कृपा कर सकते थे।

আমা নিস্তারিতে তোমার ইহাঁ আগমন ।
পরম-দয়ালু তুমি পতিত-পাবন ॥৩৮॥

আমা নিস্তারিতে তোমার ইহাঁ আগমন ।
পরম-দয়ালু তুমি পতিত-পাবন ॥ ৩৮॥

आमा निस्तारिते—मेरा उद्धार करने हेतु; **तोमार**—आपका; **इहाँ**—यहाँ; **आगमन**—आगमन; **परम-दयालु**—परम दयालु; **तुमि**—आप; **पतित-पावन**—पतित पावन।

अनुवाद

"आप यहाँ मेरा उद्धार करने के लिए विशेष रूप से पधारे हैं। आप इतने दयालु हैं कि सभी पतितात्माओं को केवल आप ही उबार सकते हैं।

तात्पर्य

प्रार्थना (३९) में श्रील नरोत्तम दास ठाकुर गाते हैं :

श्रीकृष्णचैतन्य-प्रभु दया कर मोरे
तोमा विना के दयालु जगत संसारे।
पतितपावन-हेतु तव अवतार
मो-सम पतित प्रभु ना पाइबे आर॥

"हे प्रभु, आप मुझ पर कृपालु हों। इन तीनों लोकों में आपसे अधिक दयालु और कौन हो सकता है? आप बद्ध पतित जीवों का उद्धार करने के लिए ही अवतरित होते हैं, किन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मुझसे बड़ा पतित आपको दूसरा कोई नहीं मिलेगा।"

श्री चैतन्य महाप्रभु का विशिष्ट उद्देश्य पतितात्माओं का उद्धार करना है। निस्सन्देह, इस कलियुग में शायद ही कोई ऐसा हो जो वैदिक दृष्टि से पतित न हो। रूप गोस्वामी को शिक्षा देते समय श्री चैतन्य महाप्रभु ने वैदिक धर्म के इन तथाकथित अनुयायियों का वर्णन इस प्रकार किया है (मध्य १९.१४६) :

वेदनिष्ठमध्ये अर्धेक वेद 'मुखे' माने।
वेदनिषिद्ध पाप करे, धर्म नाहि गणे॥

वैदिक नियमों के तथाकथित अनुयायी वेदों को औपचारिक रूप से ही मानते हैं, किन्तु वे उन नियमों के विपरीत कर्म करते हैं। यह इस कलियुग का लक्षण है। लोग अपने आपको हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि बतलाकर किसी एक धर्म का पालन करते हैं, किन्तु वास्तव में कोई भी व्यक्ति धर्मशास्त्रों में बतलाये गये नियमों का पालन नहीं करता। यही इस युग का रोग है। इसलिए दयालु चैतन्य महाप्रभु ने तो केवल हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने की

सलाह दी है—*हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।* महाप्रभु किसी भी व्यक्ति का उद्धार कर सकते हैं—चाहे वह शास्त्रों के मतानुसार पतित ही क्यों न हो। यही श्री चैतन्य महाप्रभु की विशिष्ट कृपा है। इसीलिए वे *पतित-पावन* कहलाते हैं।

महान्त-स्वभाव एइ तारिते पामर ।
निज कार्य नाहि तबु यान तार घर ॥३९॥

महान्त-स्वभाव एइ तारिते पामर ।
निज कार्य्य नाहि तबु य्यान तार घर ॥ ३९ ॥

महान्त-स्वभाव—सन्त पुरुषों का स्वभाव; **एइ**—यह; **तारिते**—उद्धार करना; **पामर**—पतित आत्माओं का; **निज**—अपना; **कार्य्य**—कार्य; **नाहि**—नहीं है; **तबु**—फिर भी; **य्यान**—जाते हैं; **तार**—उसके; **घर**—घर।

अनुवाद

"सारे सन्त पुरुषों का यह सामान्य कार्य है कि वे पतितों का उद्धार करते हैं। इसीलिए वे लोगों के घरों में जाते हैं, यद्यपि वहाँ उनका कोई निजी कार्य नहीं रहता।

तात्पर्य

एक संन्यासी का नियम है कि वह द्वार-द्वार जाकर भिक्षा माँगे। वह केवल इसलिए भिक्षा नहीं माँगता कि वह भूखा है। उसका वास्तविक उद्देश्य तो हर घर के निवासियों को कृष्णभावनामृत का उपदेश देकर जाग्रत करना होता है। संन्यासी मात्र भिक्षा माँगने के लिए अपना उच्च पद छोड़कर भिखारी नहीं बनता। इसी प्रकार गृहस्थ जीवन में रहकर कोई व्यक्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो सकता है, किन्तु स्वेच्छा से वह भी साधु-महात्मा का जीवन बिता सकता है। रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी मन्त्री थे, किन्तु उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों का विनीत भाव से प्रचार करने के लिए स्वेच्छा से साधु-जीवन स्वीकार किया। उनके बारे में कहा जाता है—*त्यक्त्वा तूणमशेषमण्डलपति श्रेणीं सदा तुच्छवत् भूत्वा दीनगणेशकौ करुणया कौपीनकन्थाश्रितौ।* यद्यपि ये दोनों गोस्वामी राजसी ठाठ-बाट से रह रहे थे, किन्तु चैतन्य महाप्रभु के

आदेशानुसार पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए वे संन्यासी बन गये। मनुष्य को इस पर भी विचार करना चाहिए कि जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचार-कार्य में लगे हुए हैं, वे श्री चैतन्य महाप्रभु के मार्गदर्शन में रहते हैं। वे वास्तव में भिखारी नहीं होते हैं, उनका वास्तविक कार्य तो पतितात्माओं का उद्धार करना है। इसलिए चाहे किसी पुस्तक का ही प्रचार क्यों न हो, उसके लिए वे द्वार-द्वार जा सकते हैं, जिससे लोग उसे पढ़कर ज्ञान प्राप्त कर सकें। पहले ब्रह्मचारी तथा संन्यासी द्वार-द्वार जाकर भीख माँगते थे। किन्तु आजकल, विशेषतया पश्चिमी देशों में, यदि कोई द्वार-द्वार भिक्षा माँगे, तो उसे पुलिस पकड़ सकती है। पश्चिमी देशों में भीख माँगना अपराध माना जाता है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों को भीख माँगने से कोई सरोकार नहीं। वे तो कृष्णभावनामृत सम्बन्धी साहित्य का प्रचार करने के लिए कठोर परिश्रम करते हैं, जिससे लोग उसे पढ़कर लाभान्वित हों। किन्तु यदि कोई व्यक्ति कृष्णभावनाभावित व्यक्ति को कोई चन्दा या सहायता देता है, तो वह उसे कभी अस्वीकार नहीं करता।

महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीन-चेतसाम् ।
निःश्रेयसाय भगवन्नान्यथा कल्पते क्वचित् ॥ ४० ॥

महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीन-चेतसाम् ।
निःश्रेयसाय भगवन्नान्यथा कल्पते क्वचित् ॥ ४० ॥

महत्-विचलनम्—सन्त पुरुषों का भ्रमण; **नृणाम्**—लोगों के; **गृहिणाम्**—गृहस्थों के; **दीन-चेतसाम्**—दीन-हृदयवाले; **निःश्रेयसाय**—परम हित के लिए; **भगवन्**—हे मेरे स्वामी; **न अन्यथा**—अन्यथा नहीं; **कल्पते**—कोई सोचता है; **क्वचित्**—किसी भी समय।

अनुवाद

"'हे प्रभु, कभी-कभी बड़े से बड़े सन्त पुरुष भी गृहस्थों के घर जाते हैं, यद्यपि ये गृहस्थ सामान्यतया तुच्छ बुद्धि वाले होते हैं। जब कोई सन्त पुरुष उनके घर जाता है, तो यही समझना चाहिए कि गृहस्थों को लाभ पहुँचाने के अतिरिक्त उनका अन्य कोई उद्देश्य नहीं हो सकता।

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.८.४) का है।

আমার সঙ্গে ব্রাহ্মণাদি সহস্রেক জন ।
তোমার দর্শনে সবার দ্রবী-ভূত মন ॥ ৪১ ॥

আমার সঙ্গে ব্রাহ্মণাদি সহস্রেক জন ।
তোমার দর্শনে সবার দ্রবী-ভূত মন ॥ ৪১ ॥

আমার সঙ্গে—मेरे साथ; **ব্রাহ্মণ-আদি**—ब्राह्मण तथा अन्य; **সহস্রেক**—एक हजार से अधिक; **জন**—व्यक्ति; **তোমার**—आपके; **দর্শনে**—दर्शन में; **সবার**—सबके; **দ্রবী-ভূত**—द्रवित हो गये; **মন**—हृदय।

अनुवाद

"मेरे साथ ब्राह्मणों को मिलाकर लगभग एक हजार व्यक्ति हैं और उन सबके हृदय आपके दर्शन से द्रवीभूत हो चुके हैं।

'কৃষ্ণ' 'কৃষ্ণ' নাম শুনি সবার বদনে ।
সবার অঙ্গ—পুলকিত, অশ্রু—নয়নে ॥ ৪২ ॥

'কৃষ্ণ' 'কৃষ্ণ' নাম শুনি সবার বদনে ।
সবার অঙ্গ—পুলকিত, অশ্রু—নয়নে ॥ ৪২ ॥

কৃষ্ণ কৃষ্ণ—'कृष्ण,' 'कृष्ण'; **নাম**—पावन नाम; **শুনি**—मैं सुनता हूँ; **সবার**—हर एक के; **বদনে**—मुख से; **সবার**—सबके; **অঙ্গ**—शरीर; **পুলকিত**—पुलकित; **অশ্রু**—अश्रु; **নয়নে**—नेत्रों में।

अनुवाद

"मैं हर व्यक्ति को कृष्ण-नाम का कीर्तन करते हुए सुन रहा हूँ। प्रत्येक व्यक्ति का शरीर भाव से पुलकित है और हर एक की आँखों में आँसू हैं।

আকৃত্যে-প্রকৃত্যে তোমার ঈশ্বর-লক্ষণ ।
জীবে না সম্ভবে এই অপ্রাকৃত গুণ ॥ ৪৩ ॥

আকৃত্যে-প্রকৃত্যে তোমার ঈশ্বর-লক্ষণ ।
জীবে না সম্ভবে এই অপ্রাকৃত গুণ ॥ ৪৩ ॥

আকৃত্যে—शारीरिक लक्षणों में; **প্রকৃত্যে**—व्यवहार में; **তোমার**—आपका; **ঈশ্বর**—परम

भगवान् के; **लक्षण**—लक्षण; **जीवे**—सामान्य जीव में; **ना**—नहीं; **सम्भवे**—सम्भव; **एइ**—ये; **अप्राकृत**—दिव्य; **गुण**—गुण।

अनुवाद

"हे मान्यवर, आप अपने शारिरिक लक्षणों तथा स्वभाव से पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् हैं। सामान्य जीवों में ऐसे दिव्य लक्षणों का मिलना असम्भव है।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के शारीरिक लक्षण असाधारण थे। निस्सन्देह, उनका शरीर नाप में असाधारण था। उनकी छाती तथा उनके भुजाओं की लम्बाई समान थी। इसे *न्यग्रोध परिमण्डल* कहते हैं। जहाँ तक उनके स्वभाव की बात है, वे हर एक के प्रति दयालु थे। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अतिरिक्त सबके प्रति अन्य कोई ऐसा दयालु नहीं हो सकता। इसीलिए भगवान् का नाम कृष्ण अर्थात् "सर्वाकर्षक" है। *भगवद्गीता* (१४.४) में कहा गया है कि कृष्ण हर एक के दयालु पिता हैं। वे सभी योनियों (*सर्वयोनिषु*) के बीजदाता आदि पिता (*बीजप्रदः पिता*) हैं। तो फिर वे किसी जीव के प्रति निष्ठुर कैसे हो सकते हैं? चाहे कोई मनुष्य हो, पशु या वृक्ष हो, भगवान् हर एक पर दयालु होते हैं। यही ईश्वर का गुण है। उन्होंने *भगवद्गीता* (९.२९) में भी कहा है—*समोऽहम् सर्वभूतेषु*—"मैं हर एक के प्रति समान रूप से दयालु हूँ।" उनका उपदेश है—*सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।* "सभी धर्मों को त्यागकर केवल मेरी शरण में आओ।" यह उपदेश केवल अर्जुन के लिए नहीं, अपितु सारे जीवों के लिए है। जो भी उनके इस उपदेश से लाभ उठाता है, वह तुरन्त सारे पापों से मुक्त होकर भगवद्धाम लौट जाता है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु इस ग्रह पर उपस्थित थे, तब उन्होंने भी यही उपदेश दिया था।

प्रभु कहे,—तुमि महा-भागवतोत्तम ।
तोमार दर्शने सबार द्रव हैल मन ॥ ४४॥

प्रभु कहे,—तुमि महा-भागवतोत्तम ।
तोमार दर्शने सबार द्रव हैल मन ॥ ४४॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने उत्तर दिया; **तुमि**—आप; **महा-भागवत-उत्तम**—उच्च भक्तों में सर्वोत्तम; **तोमार दर्शने**—आपके दर्शन से; **सबार**—प्रत्येक का; **द्रव**—द्रवित; **हैल**—हो गया; **मन**—मन।

अनुवाद

महाप्रभु ने रामानन्द राय को उत्तर दिया, "हे महोदय, आप सर्वोच्च भक्तों के शिरोमणि हैं, अतएव आपके दर्शन से हर एक का हृदय द्रवित हो उठा है।

तात्पर्य

प्रथम कक्षा के भक्त हुए बिना कोई उपदेशक नहीं बन सकता। सामान्यतया उपदेशक सर्वोच्च भक्त होता है, किन्तु सामान्य जनता से मिलने के लिए उसे भक्तों तथा अभक्तों में अन्तर करना होता है। अन्यथा महान् भक्त ऐसा अन्तर नहीं करता है। वह तो हर एक को सदैव भगवान् की सेवा में लगा हुआ देखता है। जब कोई व्यक्ति उपदेश या प्रचार-कार्य में लग जाता है, तो उसे मनुष्यों में अन्तर करना चाहिए और यह समझना चाहिए कि कुछ लोग भगवान् की भक्ति में नहीं लगे हैं। तब उपदेशक ऐसे अबोध लोगों पर दया करता है, जिन्हें यह ज्ञान नहीं है कि भगवान् की पूजा कैसे की जाए। *श्रीमद्भागवत* (११.२.४५) में सर्वोच्च भक्त के लक्षणों का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥

"उन्नत भक्त सभी जीवों को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अंश रूप में देखता है। हर एक कृष्ण में हैं और कृष्ण भी हर एक में हैं। ऐसी दृष्टि उसी में हो सकती है, जो भक्ति में बहुत उन्नत है।"

অন্যের কি কথা, আমি—'মায়াবাদী সন্ন্যাসী'।
আমিহ তোমার স্পর্শে কৃষ্ণ-প্রেমে ভাসি ॥ ৪৫ ॥

अन्येर कि कथा, आमि—'मायावादी सन्न्यासी'।
आमिह तोमार स्पर्शे कृष्ण-प्रेमे भासि ॥ ४५ ॥

अन्येर—दूसरों का; **कि कथा**—क्या कहें; **आमि**—मैं; **मायावादी सन्न्यासी**—मायावादी

संन्यासी; **आमिह**—मैं; **तोमार**—आपके; **स्पर्शे**—स्पर्श से; **कृष्ण**—कृष्ण के; **प्रेमे**—प्रेम में; **भासि**—तैरता हूँ।

अनुवाद

"यद्यपि मैं मायावादी संन्यासी अर्थात् अभक्त हूँ, किन्तु आपका स्पर्श पाने मात्र से मैं भी कृष्ण-प्रेम के सागर में तैर रहा हूँ। दूसरों का तो कहना ही क्या?

এই জানি' কঠিন মোর হৃদয় শোধিতে ।
সার্বভৌম কহিলেন তোমারে মিলিতে ॥৪৬॥

एइ जानि' कठिन मोर हृदय शोधिते ।
सार्वभौम कहिलेन तोमारे मिलिते ॥ ४६ ॥

एइ जानि'—यह जानकर; **कठिन**—अत्यन्त कठोर; **मोर**—मेरा; **हृदय**—हृदय; **शोधिते**—शुद्ध करने के लिए; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य ने; **कहिलेन**—कहा; **तोमारे**—आपसे; **मिलिते**—मिलने के लिए।

अनुवाद

"सार्वभौम भट्टाचार्य यह जानते थे कि ऐसा होगा और इसीलिए मेरे अत्यन्त कठोर हृदय को शुद्ध करने के उद्देश्य से उन्होंने मुझे आपसे मिलने के लिए कहा है।"

এই-মত দুঁহে স্তুতি করে দুঁহার গুণ ।
দুঁহে দুঁহার দরশনে আনন্দিত মন ॥৪৭॥

एइ-मत दुँहे स्तुति करे दुँहार गुण ।
दुँहे दुँहार दरशने आनन्दित मन ॥ ४७ ॥

एइ-मत—इस प्रकार; **दुँहे**—वे दोनों; **स्तुति**—प्रशंसा; **करे**—करते हैं; **दुँहार**—एक-दूसरे के; **गुण**—गुणों की; **दुँहे**—वे दोनों; **दुँहार**—उन दोनों के; **दरशने**—दर्शन से; **आनन्दित**—आनन्दित; **मन**—मन।

अनुवाद

इस तरह दोनों एक-दूसरे के गुणों की प्रशंसा करते रहे, और दोनों ही एक-दूसरे को देखकर अत्यन्त प्रसन्न थे।

হেন-কালে বৈদিক এক বৈষ্ণব ব্রাহ্মণ ।
দণ্ডবৎকরি' কৈল প্রভুরে নিমন্ত্রণ ॥৪৮॥

हेन-काले वैदिक एक वैष्णव ब्राह्मण ।
दण्डवत्करि' कैल प्रभुरे निमन्त्रण ॥ ४८ ॥

हेन-काले—उस समय; **वैदिक**—वैदिक अनुष्ठानों का अनुयायी; **एक**—एक; **वैष्णव ब्राह्मण**—वैष्णव ब्राह्मण; **दण्डवत्**—दण्डवत् प्रणाम; **करि'**—करके; **कैल**—किया; **प्रभुरे**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **निमन्त्रण**—निमन्त्रण।

अनुवाद

उसी समय एक वैष्णव ब्राह्मण आया, जो वैदिक नियमों का पालन करने वाला था और उसने नमस्कार किया। महाप्रभु के समक्ष दण्डवत् गिरने के बाद उसने उन्हें भोजन करने के लिए आमन्त्रित किया।

নিমন্ত্রণ মানিল তাঁরে বৈষ্ণব জানিয়া ।
রামানন্দে কহে প্রভু ঈষৎ হাসিয়া ॥৪৯॥

निमन्त्रण मानिल ताँरे वैष्णव जानिया ।
रामानन्दे कहे प्रभु ईषत् हासिया ॥ ४९ ॥

निमन्त्रण—निमंत्रण; **मानिल**—स्वीकार किया; **ताँरे**—उसको (ब्राह्मण को); **वैष्णव**—भक्त; **जानिया**—समझकर; **रामानन्दे**—रामानन्द को; **कहे**—कहा; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **ईषत्**—थोड़ा सा; **हासिया**—मुस्कुराकर।

अनुवाद

महाप्रभु ने उस ब्राह्मण को एक भक्त जानकर उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और कुछ-कुछ हँसते हुए रामानन्द राय से वे इस प्रकार बोले।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस वैष्णव ब्राह्मण का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। कोई भले ही ब्राह्मण-संस्कृति के विधि-विधानों का पालन करने वाला पक्का ब्राह्मण क्यों न हो, किन्तु यदि वह भक्त नहीं है, अर्थात् श्री चैतन्य महाप्रभु का अनुयायी नहीं है, तो उसका निमन्त्रण स्वीकार नहीं करना चाहिए। वर्तमान

समय में लोग इतने गिर चुके हैं कि वैष्णव नियमों के पालन की बात जानें दें, वे वैदिक नियमों तक का पालन नहीं करते। वे सर्वभक्षी हैं—जो कुछ भी खा लेते हैं—अतएव कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों को निमन्त्रण स्वीकार करते समय बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है।

तोमार मुखे कृष्ण-कथा शुनिते हय मन ।
पुनरपि पाइ येन तोमार दरशन ॥५०॥

तोमार मुखे कृष्ण-कथा शुनिते हय मन ।
पुनरपि पाइ येन तोमार दरशन ॥५०॥

तोमार मुखे—आपके मुख से; **कृष्ण-कथा**—कृष्ण कथाएँ; **शुनिते**—सुनने के लिए; **हय**—है; **मन**—मेरा मन; **पुनरपि**—फिर; **पाइ**—मैं पाऊँ; **येन**—यदि सम्भव हो तो; **तोमार**—आपका; **दरशन**—दर्शन।

अनुवाद

"मैं आपसे भगवान् कृष्ण के विषय में सुनना चाहता हूँ। मेरा मन ऐसा चाहता है, अतएव मैं आपके दर्शन फिर से करना चाहता हूँ।"

राय कहे, आइला यदि पामर शोधिते ।
दर्शन-मात्रे शुद्ध नहे मोर दुष्ट चित्ते ॥५१॥
दिन पाँच-सात रहि' करह मार्जन ।
तबे शुद्ध हय मोर एइ दुष्ट मन ॥५२॥

राय कहे, आइला येदि पामर शोधिते ।
दर्शन-मात्रे शुद्ध नहे मोर दुष्ट चित्ते ॥५१॥
दिन पाँच-सात रहि' करह मार्जन ।
तबे शुद्ध हय मोर एइ दुष्ट मन ॥५२॥

राय कहे—रामानन्द राय ने उत्तर दिया; **आइला**—आप आये हैं; **येदि**—यद्यपि; **पामर**—पतित आत्मा को; **शोधिते**—सुधारने के लिए; **दर्शन-मात्रे**—मात्र आपके दर्शन से; **शुद्ध नहे**—शुद्ध नहीं हुई; **मोर**—मेरी; **दुष्ट**—दुष्ट; **चित्ते**—चेतना; **दिन**—दिन; **पाँच-सात**—पाँच या सात; **रहि'**—रहकर; **करह**—कृपया करो; **मार्जन**—सफाई; **तबे**—तब; **शुद्ध**—शुद्ध; **हय**—होगा; **मोर**—मेरा; **एइ**—यह; **दुष्ट**—दुष्ट; **मन**—मन।

अनुवाद

रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, यद्यपि आप मुझ पतित का शोधन करने आये हैं, किन्तु मेरा मन आपको देखने से अभी शुद्ध नहीं हुआ है। कृपया आप पाँच-सात दिन रुकें और मेरे दूषित मन को शुद्ध कर दें। इतने दिनों में मेरा मन अवश्य ही शुद्ध हो जायेगा।"

यद्यपि विच्छेद दोँहार सहन ना याय ।
तथापि दण्डवत्करि' चलिला राम-राय ॥५३॥

य्रद्यपि विच्छेद दोंहार सहन ना य्राय ।
तथापि दण्डवत्करि' चलिला राम-राय ॥५३॥

य्रद्यपि—यद्यपि; **विच्छेद**—विरह; **दोंहार**—उन दोनों का; **सहन**—सहन; **ना**—नहीं; **य्राय**—सम्भव; **तथापि**—तथापि; **दण्डवत्**—दण्डवत्; **करि'**—करके; **चलिला**—गये; **राम-राय**—रामानन्द राय।

अनुवाद

यद्यपि वे दोनों एक-दूसरे के विछोह को सहन नहीं कर सकते थे, फिर भी रामानन्द राय ने महाप्रभु को नमस्कार किया और वहाँ से विदा ली।

प्रभु याइ' सेइ विप्र-घरे भिक्षा कैल ।
दुइ जनार उत्कन्ठाय आसि' सन्ध्या हैल ॥५४॥

प्रभु य्राइ' सेइ विप्र-घरे भिक्षा कैल ।
दुइ जनार उत्कन्ठाय आसि' सन्ध्या हैल ॥५४॥

प्रभु—श्री चैतन्य महाप्रभु; **य्राइ'**—जाकर; **सेइ**—उस; **विप्र-घरे**—ब्राह्मण के घर पर; **भिक्षा**—दोपहर का भोजन; **कैल**—स्वीकार किया; **दुइ**—दोनों; **जनार**—लोगों को; **उत्कण्ठाय**—बेचैनी में; **आसि'**—आकर; **सन्ध्या**—सन्ध्या; **हैल**—प्रकट हुई।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु उस ब्राह्मण के घर गये, जिसने उन्हें आमन्त्रित किया था और उन्होंने वहीं भोजन किया। जब संध्या हुई, तो रामानन्द राय

तथा महाप्रभु दोनों ही एक-दूसरे से पुनः मिलने के लिए उत्कण्ठित हो उठे।

प्रभु स्नान-कृत्य करि' आछेन वसिया ।
एक-भृत्य-सङ्गे राय मिलिला आसिया ॥५५॥

प्रभु स्नान-कृत्य करि' आछेन वसिया ।
एक-भृत्य-सङ्गे राय मिलिला आसिया ॥५५॥

प्रभु—महाप्रभु; **स्नान-कृत्य**—स्नान करने की दैनिक क्रिया; **करि'**—समाप्त करके; **आछेन**—थे; **वसिया**—बैठे; **एक**—एक; **भृत्य**—नौकर; **सङ्गे**—के साथ; **राय**—राय रामानन्द; **मिलिला**—मिले; **आसिया**—आकर।

अनुवाद

शाम का स्नान करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु बैठकर रामानन्द राय के आने की प्रतीक्षा करने लगे। तभी रामानन्द राय एक नौकर के साथ उनसे मिलने के लिए आये।

तात्पर्य

आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नत वैष्णव को, चाहे वह गृहस्थ हो या संन्यासी, दिन में तीन बार—प्रातः, दोपहर और शाम को—स्नान करना चाहिए। जो व्यक्ति अर्चाविग्रह की सेवा में नियुक्त हो, उसे *पद्म-पुराण* के सिद्धान्तों का पालन करते हुए नियमित रूप से स्नान करना चाहिए। स्नान के बाद उसे अपने शरीर में बारह तिलक भी लगाने चाहिए।

नमस्कार कैल राय, प्रभु कैल आलिङ्गने ।
दुइ जने कृष्ण-कथा कय रहः-स्थाने ॥५६॥

नमस्कार कैल राय, प्रभु कैल आलिङ्गने ।
दुइ जने कृष्ण-कथा कय रहः-स्थाने ॥५६॥

नमस्कार—नमस्कार; **कैल**—किया; **राय**—रामानन्द राय ने; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **कैल**—किया; **आलिङ्गने**—आलिंगन करके; **दुइ**—दोनो; **जने**—व्यक्ति; **कृष्ण-कथा**—कृष्ण कथाओं की; **कय**—चर्चा की; **रहः-स्थाने**—एकान्त स्थान में।

अनुवाद

रामानन्द राय ने महाप्रभु के पास आकर सादर नमस्कार किया और महाप्रभु ने उनका आलिंगन किया। फिर वे दोनों एकान्त स्थान में कृष्ण के विषय में चर्चा करने लगे।

तात्पर्य

रहः स्थाने अर्थात् "एकान्त स्थान में" अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कृष्ण तथा उनकी लीलाएँ—विशेषतया उनकी वृन्दावन-लीलाएँ तथा गोपियों के साथ आचरण—ये चर्चाएँ अत्यन्त गोपनीय हैं। इनकी सार्वजनिक रूप से चर्चा नहीं की जा सकती, क्योंकि जिन्हें कृष्ण की लीलाओं की दिव्य प्रकृति के विषय में जानकारी नहीं है, वे सदैव यह सोचकर अपराध के भागी बनते हैं कि कृष्ण एक सामान्य मनुष्य हैं और गोपियाँ सामान्य युवतियाँ हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु, कृष्ण तथा गोपियों के आचरण के विषय में सार्वजनिक रूप से कभी भी चर्चा नहीं करते थे, अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु के सिद्धान्तों का पालन करते हुए कृष्णभावनामृत आन्दोलन के भक्तों के लिए यह आदेश है कि वे कृष्ण की वृन्दावन-लीलाओं की चर्चा जनता के समक्ष न करें। सामान्य जनता में कृष्णभावनामृत जाग्रत करने की सबसे प्रभावशाली विधि संकीर्तन है। यदि हो सके तो *भगवद्गीता* की शिक्षओं की चर्चा करनी चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु इस सिद्धान्त का कठोरता से पालन करते थे और विद्वानों के साथ, यथा सार्वभौम भट्टाचार्य तथा प्रकाशानन्द सरस्वती के साथ *भगवद्गीता* के दर्शन पर चर्चा करते थे। किन्तु वे सनातन गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी जैसे शिष्यों को भक्ति-सम्प्रदाय के नियमों की शिक्षा देते थे। वे रामानन्द राय के साथ कृष्ण तथा गोपियों के मध्य सर्वोच्च भक्तिमय आचरण की चर्चा करते थे। सामान्य जनों के लिए वे बड़ी तत्परता से संकीर्तन करते थे। हमें भी चाहिए कि कृष्णभावनामृत का सारे विश्व में प्रचार करते समय इन्हीं सिद्धान्तों को अपनायें।

প্রভু কহে,——''পড় শ্লোক সাধ্যের নির্ণয়'' ।
রায় কহে,——''স্ব-ধর্মাচরণে বিষ্ণু-ভক্তি হয়'' ॥৫৭॥

प्रभु कहे,—"पड़ श्लोक साध्येर निर्णय" ।
राय कहे,—"स्व-धर्माचरणे विष्णु-भक्ति हय" ॥ ५७ ॥

प्रभु कहे—श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; **पड़**—जरा पढ़ो; **श्लोक**—शास्त्रों से एक श्लोक; **साध्येर**—जीवन के उद्देश्य से सम्बन्धित; **निर्णय**—निर्णय; **राय कहे**—रामानन्द राय ने उत्तर दिया; **स्व-धर्म-आचरणे**—अपने नियत कर्तव्य के करने से; **विष्णु-भक्ति**—भगवान् विष्णु की भक्ति; **हय**—होती है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय को आदेश दिया, "जीवन के चरम लक्ष्य से सम्बन्धित शास्त्रों से एक श्लोक सुनायें।" इस पर रामानन्द ने उत्तर दिया, "यदि कोई अपने सामाजिक पद सम्बन्धी नियत कर्मों को सम्पन्न करता है, तो वह अपनी मूल कृष्णभावनामृत को जाग्रत करता है।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में *वेदार्थ-संग्रह* में श्री रामानुजाचार्य ने बतलाया है कि जीव को स्वभावत: भक्ति अत्यन्त प्रिय है। निस्सन्देह, यही जीवन-लक्ष्य है। यह भक्ति परम ज्ञान या कृष्णभावनामृत है और यह समस्त भौतिक कर्म से विरक्ति उत्पन्न करने वाली है। दिव्य अवस्था में जीव भगवत्-सेवा की सर्वोच्चता को पूरी तरह स्वीकार कर सकता है। भक्त केवल भक्ति से भगवान् को प्राप्त करते हैं। ऐसा ज्ञान होने पर मनुष्य अपने वृत्तिपरक कार्य में लग जाता है और इसे *भक्तियोग* कहते हैं। भक्तियोग सम्पन्न करने पर मनुष्य शुद्ध भक्ति के पद को प्राप्त कर सकता है।

श्री व्यासदेव के पिता महामुनि पराशर ने विशेष रूप से उल्लेख किया है कि वर्णाश्रम धर्म के अनुसार कर्म करते हुए मानव समाज में भगवद्भक्ति को जाग्रत किया जा सकता है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने वर्णाश्रम धर्म की स्थापना इसी उद्देश्य से की है कि मनुष्यों को भगवद्धाम वापस जाने का अवसर मिल सके। भगवान् श्रीकृष्ण, जिन्हें *भगवद्गीता* में पुरुषोत्तम कहा गया है, स्वयं अवतरित हुए और उन्होंने यह घोषित किया कि वर्णाश्रम धर्म की स्थापना उन्होंने की है। जैसेकि *भगवद्गीता* (४.१३) में कहा गया है :

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥

भगवद्गीता में अन्यत्र (१८.४५-४६) भगवान् कहते हैं :

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

मानव समाज को चार वर्गों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—में विभाजित किया जाना चाहिए और सबको अपने नियत-कर्मों (स्वाभाविक धर्म) में सदैव लगे रहना चाहिए। भगवान् कहते हैं कि जो लोग अपने-अपने नियत-कर्मों में लगे हुए हैं, वे अपने स्वाभाविक धर्म का पालन करने के साथ-साथ ही भगवान् की प्रेमाभक्ति करके पूर्णता प्राप्त कर सकते हैं। वास्तव में वर्गविहीन समाज का आधुनिक आदर्श केवल कृष्णभावनामृत द्वारा ही लाया जा सकता है। सारे लोग अपना-अपना स्वाभाविक कार्य करें और जो लाभ हो उसे भगवान् की सेवा में अर्पित कर दें। दूसरे शब्दों में, अपना स्वाभाविक कर्तव्य निभाने तथा उसके फलों को भगवान् की सेवा में लगाने से ही जीवन की पूर्णता प्राप्त हो सकती है। इस विधि की पुष्टि बोधायन, तंक, द्रमिड, गुहदेव, कपर्दि तथा भारुचि जैसे महापुरुषों ने की है। *वेदान्त-सूत्र* से भी इसकी पुष्टि होती है।

वर्णाश्रमाचार-वता पूरुषेण परः पुमान् ।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत्तत्तोष-कारणम् ॥५८॥

वर्णाश्रमाचार-वता पुरुषेण परः पुमान् ।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत्तत्तोष-कारणम् ॥ ५८ ॥

वर्ण-आश्रम-आचार-वता—जो चार आश्रमों और वर्णों के अनुसार व्यवहार करता है; **पुरुषेण**—पुरुष से; **परः**—परम; **पुमान्**—पुरुष; **विष्णुः**—भगवान् विष्णु; **आराध्यते**—पूजे जाते हैं; **पन्था**—मार्ग; **न**—नहीं; **अन्यत्**—अन्य; **तत्-तोष-कारणम्**—भगवान् को सन्तुष्ट करने का उपाय।

अनुवाद

"'वर्णाश्रम प्रणाली में नियत कर्तव्यों को उचित रीति से सम्पन्न करके पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु की पूजा की जाती है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को तुष्ट करने की अन्य कोई विधि है ही नहीं। मनुष्य को चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों के संस्थान में स्थित होना चाहिए।'"

तात्पर्य

यह श्लोक *विष्णु पुराण* (३.८.९) से लिया गया है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में कहा है, "तात्पर्य यह है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को तुष्ट करने से ही जीवन की पूर्णता की अनुभूति की जा सकती है।" *श्रीमद्भागवत* (१.२.१३) में भी इसकी पुष्टि हुई है :

अतः पुम्भिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रम विभागशः।
स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम्॥

"हे द्विज-श्रेष्ठ, अतः अन्तिम निर्णय यही निकलता है कि मनुष्य वर्ण तथा आश्रम के अनुसार नियत कर्म (*स्वधर्म*) का पालन करके जो सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करता है, वह है भगवान् हरि को तुष्ट करना।"

प्रत्येक मनुष्य को अपनी प्रवृत्ति के अनुसार ही नियत कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। उसे अपनी क्षमताओं के अनुसार ही वर्णाश्रम संस्थान में पद स्वीकार करना चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के विभाग समाज के अन्तर्गत प्राकृतिक विभाग हैं। वर्णाश्रम धर्म के अनुसार हर व्यक्ति का अपना-अपना नियत कर्तव्य होता है। जो लोग अपने नियत कर्तव्य पूरा करते हैं, वे शान्तिपूर्वक रहते हैं और भौतिक परिस्थितियों से विचलित नहीं होते। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास—ये आध्यात्मिक विभाग *आश्रम* कहलाते हैं। यदि कोई व्यक्ति वर्ण तथा आश्रम दोनों के नियत कर्तव्यों को पूरा करता है, तो उससे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तुष्ट रहते हैं। यदि वह अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करता है, तो वह अपराधी बन जाता है और नरक को जाता है। वास्तव में हम देखते हैं कि विभिन्न लोग विभिन्न तरीकों से अपने अपने कामों में लगे रहते हैं, अतएव कर्म के अनुसार विभाग बनने चाहिए। पूर्णता प्राप्त करने के लिए मनुष्य को भक्ति को अपने जीवन का केन्द्रबिन्दु बनाना चाहिए। इस

तरह वह कर्म, संगति तथा शिक्षा द्वारा अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति को जाग्रत कर सकता है। वर्णाश्रम धर्म को जन्म से नहीं अपितु योग्यता के अनुसार स्वीकार करना चाहिए। इस प्रणाली को लागू किये बिना मानव-कार्यों को ढंग से सम्पन्न नहीं किये जा सकते।

ब्राह्मण लोग वे बुद्धिमान व्यक्ति हैं, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझ सकते हैं। वे सदैव ज्ञान के अनुशीलन में लगे रहते हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वे भारत के हों या भारत से बाहर के। जो लोग स्वभावत: शूरवीर होते हैं और दूसरों पर शासन करना चाहते हैं, वे *क्षत्रिय* कहलाते हैं। जो लोग खेती करके अन्न उपजाना, गौवों तथा अन्य पशुओं की रक्षा करना एवं व्यापार में लगे रहना चाहते हैं, वे *वैश्य* या व्यापारी कहलाते हैं। जो लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य होने के लिए पर्याप्त बुद्धिमान नहीं होते, वे किसी स्वामी की सेवा करने के लिए होते हैं और *शूद्र* कहलाते हैं। इस तरह हर व्यक्ति भगवान् की सेवा में लग सकता है और अपनी स्वाभाविक कृष्ण-चेतना को जागृत कर सकता है। यदि समाज ऐसे प्राकृतिक विभाजनों के अनुसार कार्य नहीं करता, तो सामाजिक व्यवस्था में गिरावट आती है। निष्कर्ष यही है कि समाज को *वर्णाश्रम धर्म* की वैज्ञानिक विधि अपनानी चाहिए।

प्रभु कहे,—"एहो बाह्य, आगे कह आर" ।
राय कहे, "कृष्णे कर्मार्पण—सर्व-साध्य-सार" ॥५९॥

प्रभु कहे,—"एहो बाह्य, आगे कह आर" ।
राय कहे, "कृष्णे कर्मार्पण—सर्व-साध्य-सार" ॥५९॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **एहो**—यह; **बाह्य**—बाहरी; **आगे**—आगे; **कह**—कहो; **आर**—और; **राय कहे**—श्री रामानन्द राय ने कहा; **कृष्णे**—कृष्ण को; **कर्म-अर्पण**—कर्मफल अर्पित करना; **सर्व-साध्य-सार**—सिद्धि के सभी साधनों का सार।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "यह तो बाह्य है। आप मुझे कोई दूसरा साधन बतलायें।" इस पर रामानन्द ने उत्तर दिया, "सारी पूर्णता का सार यह है कि अपने कर्मों के फल कृष्ण को अर्पित किये जाएँ।"

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ ६०॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ ६०॥

यत्—जो कुछ; **करोषि**—तुम करते हो; **यत्**—जो कुछ; **अश्नासि**—खाते हो; **यत्**—जो कुछ; **जुहोषि**—यज्ञ करते हो; **ददासि**—दान में देते हो; **यत्**—जो कुछ; **यत्**—जो कुछ; **तपस्यसि**—तप करते हो; **कौन्तेय**—हे कुन्ती-पुत्र; **तत्**—वह; **कुरुष्व**—कर दो; **मत्**—मुझे; **अर्पणम्**—अर्पण।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे कहा, "'हे कुन्ती-पुत्र, तुम जो कुछ करो, जो भी खाओ, जो भी यज्ञ करो, जो भी दान दो तथा तुम जितनी भी तपस्याएँ करो, उन सबके फल मुझे, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को अर्पण करो।"

तात्पर्य

महाप्रभु यह कह चुके हैं कि इस कलियुग में वर्णाश्रम धर्म का ठीक से पालन नहीं हो पाता, इसलिए उन्होंने रामानन्द राय को आदेश दिया कि वे अपनी बात को आगे बढ़ायें। रामानन्द राय ने उत्तर में *भगवद्गीता* का यह श्लोक (९.२७) पढ़ा, जिसमें आदेश दिया गया है कि वर्णाश्रम धर्म का निर्वाह करते हुए मनुष्य अपने कर्मफल प्रेमपूर्वक भगवान् कृष्ण को अर्पित कर दे। स्वाभाविक है कि श्री चैतन्य महाप्रभु रामानन्द राय से भक्ति सम्पन्न करने की बात पूछ रहे थे। रामानन्द राय ने सर्वप्रथम वर्णाश्रम धर्म के सिद्धान्तों को भौतिक लोगों के दृष्टिकोण से बतलाया। किन्तु यह विचार दिव्य नहीं है। जब तक मनुष्य इस भौतिक जगत् में रहता है, तब तक उसे वर्णाश्रम धर्म का पालन करना आवश्यक है, किन्तु भक्ति तो दिव्य होती है। वर्णाश्रम धर्म की पद्धति भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के अन्तर्गत है, किन्तु दिव्य भक्ति तो सर्वोच्च पद पर स्थित होती है।

श्री चैतन्य महाप्रभु का सम्बन्ध वैकुण्ठ से था और संकीर्तन आन्दोलन को प्रसारित करने की उनकी विधियाँ भी वैकुण्ठ से लाई गई थीं। श्रील नरोत्तम

दास ठाकुर ने गाया है—*गोलोकेर प्रेमधन, हरिनाम-सङ्कीर्तन, रति न जन्मिल केने ताय।* अर्थात् संकीर्तन आन्दोलन का इस भौतिक जगत् से कोई सरोकार नहीं है। यह आध्यात्मिक जगत्, गोलोक वृन्दावन से लाया गया है। नरोत्तम दास ठाकुर को खेद है कि संसारी लोग इस संकीर्तन आन्दोलन को गम्भीरता से ग्रहण नहीं करते। भक्ति तथा संकीर्तन आन्दोलन की स्थिति पर विचार करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने वर्णाश्रम धर्म प्रणाली को भौतिक बतलाया, यद्यपि इसका उद्देश्य आध्यात्मिक पद पर उन्नत होना है। किन्तु संकीर्तन आन्दोलन तो मनुष्य को तुरन्त ही आध्यात्मिक पद को प्राप्त कराने वाला है। फलत: वर्णाश्रम धर्म को बाह्य कहा गया है और श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से विषय की गहराई में जाकर आध्यात्मिक पद को अनावृत करने के लिए कहा।

कभी-कभी भौतिकतावादी लोग भगवान् विष्णु को एक भौतिक कल्पना मान बैठते हैं। निर्विशेषवादी लोग सोचते हैं कि भगवान् विष्णु से भी बढ़कर निर्विशेष ब्रह्म है। निर्विशेषवादी लोग भगवान् विष्णु की पूजा को गलत ढंग से समझते हैं। वे भगवान् विष्णु के शरीर में समाहित होने के लिए उनकी पूजा करते हैं। कोई *विष्णु-आराधन* को गलत न समझे, इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से अनुरोध किया कि वे अपनी बात को और स्पष्ट करें। तब रामानन्द राय ने *भगवद्गीता* का श्लोक उद्धृत करते हुए कहा कि अपने नियत कर्मों के फलों को भगवान् विष्णु या कृष्ण को अर्पित किया जाए। *श्रीमद्भागवत* (१.२.८) में भी कहा गया है :

धर्म: स्वनुष्ठित: पुंसां विष्वक्सेनकथासु य:।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥

"यदि कोई व्यक्ति वर्णाश्रम धर्म के अनुसार नियत कर्म सम्पन्न करता है, किन्तु अपनी सुप्त कृष्णभावना को जागृत नहीं करता, तो उसके सारे कार्य व्यर्थ जाते हैं। उसके सारे काम व्यर्थ का श्रम बनकर रह जाते हैं।"

প্রভু কহে,—"এহো বাহ্য, আগে কহ আর"।
রায় কহে,—"স্বধর্ম-ত্যাগ, এই সাধ্য-সার" ॥৬১॥

प्रभु कहे,—"एहो बाह्य, आगे कह आर" ।
राय कहे,—"स्वधर्म-त्याग, एइ साध्य-सार" ॥ ६१ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने उत्तर दिया; **एहो**—यह; **बाह्य**—बाह्य; **आगे**—आगे; **कह**—बोलो; **आर**—और अधिक; **राय कहे**—रामानन्द राय ने उत्तर दिया; **स्व-धर्म-त्याग**—स्वाभाविक धर्म का त्याग; **एइ**—यह; **साध्य-सार**—पूर्णता का सार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "यह भी बाह्य है। इस विषय पर आगे कहो।" तब रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "वर्णाश्रम में अपने नियत कर्मों को त्यागना ही पूर्णता का सार है।"

तात्पर्य

ब्राह्मण अपने परिवार को त्यागकर संन्यास ग्रहण कर सकता है। अन्य लोग यथा क्षत्रिय तथा वैश्य भी अपने अपने परिवार त्यागकर कृष्णभावनामृत अंगीकार कर सकते हैं। ऐसा त्याग *कर्म-त्याग* कहलाता है। ऐसे त्याग से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तुष्ट होते हैं।

इसके विपरीत अपने कर्मफलों को कृष्ण को अर्पित करके फलों का त्याग करने की पद्धति दोषरहित नहीं मानी जाती, क्योंकि यद्यपि ऐसी पद्धति सूचित करती है कि मनुष्य कृष्ण का स्वीकार परम पुरुष के रूप में करे, फिर भी इस में मनुष्य भौतिक कर्मों में संलग्न होता है। चूँकि ऐसे कर्म भौतिक ब्रह्माण्ड के भीतर होते हैं, अतः श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें बाह्य समझा। इसे संशोधित करने के लिए रामानन्द राय ने संस्तुति की कि भौतिक कर्मों को लाँघने के लिए संन्यास ग्रहण किया जाए। इसका समर्थन *श्रीमद्भागवत* के निम्नलिखित श्लोक (११.११.३२) से होता है :

आज्ञायैवं गुणान्दोषान्मयादिष्टानपि स्वकान् ।
धर्मान्सन्त्यज्य यः सर्वान्मां भजेत्स च सत्तमः ॥ ६२ ॥

आज्ञाय—पूर्णरूपेण जानकर; **एवम्**—इस प्रकार; **गुणान्**—गुण; **दोषान्**—दोष; **मया**—

मुझसे; **आदिष्टान्**—आदेश दिया; **अपि**—यद्यपि; **स्वकान्**—अपना; **धर्मान्**—नियत कर्म; **सन्त्यज्य**—त्यागकर; **यः**—जो कोई; **सर्वान्**—सभी को; **माम्**—मेरी; **भजेत्**—सेवा करे; **सः**—वह; **च**—और; **सत्-तमः**—सर्वोत्तम व्यक्ति।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे कहा, '"शास्त्रों में नियत कर्तव्यों का वर्णन हुआ है। उनका विश्लेषण करने पर उनके गुण-दोषों का पता चल सकता है और तब उनका पूर्ण परित्याग करके पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सेवा की जा सकती है। ऐसा व्यक्ति उच्च कोटि का माना जाता है।'

सर्व-धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्व-पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ ६३ ॥

सर्व-धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्व-पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ ६३ ॥

सर्व-धर्मान्—सभी धर्मों को (सभी नियत धर्मों को); **परित्यज्य**—त्यागकर; **माम् एकम्**—केवल मेरी; **शरणम्**—शरण में; **व्रज**—आओ; **अहम्**—मैं; **त्वाम्**—तुम्हें; **सर्व-पापेभ्यः**—सभी पापफलों से; **मोक्षयिष्यामि**—मुक्ति दूँगा; **मा**—मत; **शुचः**—चिंता करो।

अनुवाद

"जैसाकि शास्त्र (*भगवद्गीता* १८.६६) में कहा गया है, 'यदि तुम सारे धार्मिक तथा नियत कर्तव्यों को त्यागकर मुझ भगवान् की शरण में आ जाओ, तो मैं तुम्हें तुम्हारे जीवनभर के सारे पापकर्मों के फलों से छुटकारा दिला दूँगा। तुम चिन्ता मत करो।'"

तात्पर्य

इस प्रसंग में श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी अपनी पुस्तक *मनःशिक्षा* (२) में उपदेश देते हैं :

न धर्मं नाधर्मं श्रुतिगणनिरुक्तं किल कुरु।
व्रजे राधाकृष्णप्रचुरपरिचर्यामिह तनु॥

इस तरह उन्होंने आदेश दिया है कि हमें वेदों में बतलाये गये धार्मिक या अधार्मिक कृत्यों को करने की आवश्यकता नहीं है। सबसे उत्तम मार्ग यही है

कि भगवान् कृष्ण तथा राधारानी की सेवा में तत्पर रहा जाए। इस जीवन की यही पूर्णता है। इसी प्रकार *श्रीमद्भागवत* (४.२९.४६) में नारद मुनि ने कहा है :

यदा यस्यानुगृह्णाति भगवान् आत्मभावितः।
सजहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्॥

"जब कोई वास्तव में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की प्रेममयी सेवा करने लगता है, तो वह भौतिक जगत् के सभी कार्यों का तथा वैदिक साहित्य द्वारा नियत किये गये सारे कर्तव्यों का परित्याग कर देता है। इस तरह वह भगवान् की भक्ति में स्थिर हो जाता है।"

प्रभु कहे,—"एहो बाह्य, आगे कह आर"।
राय कहे, "ज्ञान-मिश्रा भक्ति—साध्य-सार"॥ ६४॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **एहो**—यह; **बाह्य**—बाहरी; **आगे**—आगे; **कह**—कहो; **आर**—और; **राय कहे**—राय ने उत्तर दिया; **ज्ञान-मिश्रा भक्ति**—ज्ञान-मिश्रित भक्ति; **साध्य-सार**—पूर्णता का सार है।

अनुवाद

रामानन्द राय को इस तरह बातें करते सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके कथन को अस्वीकार करते हुए कहा, "आगे कुछ और कहो।" तब रामानन्द राय ने कहा, "ज्ञानमिश्रित भक्ति ही पूर्णता का सार है।"

तात्पर्य

अवैदिक तार्किक ज्ञान से मिश्रित भक्ति निश्चय ही शुद्ध भक्ति नहीं है। अतएव श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने अपने *अनुभाष्य* में उपदेश दिया है कि कर्मकाण्ड द्वारा आत्म-साक्षात्कार होना मुक्ति तथा बद्ध जीवन के बीच की तटस्थ अवस्था है। यह स्थान इस भौतिक जगत् से परे विरजा नदी में है, जहाँ भौतिक प्रकृति के तीनों गुण तटस्थ अथवा अव्यक्तावस्था में निष्क्रिय रहते हैं। किन्तु आध्यात्मिक जगत् में आध्यात्मिक शक्ति प्रकट होती है और उसे वैकुण्ठ

लोक कहते हैं, जहाँ कोई चिन्ता नहीं रहती। भौतिक जगत् जो *ब्रह्माण्ड* कहलाता है, बहिरंगा शक्ति का सृजन है। भौतिक सृष्टि तथा आध्यात्मिक सृष्टि के बीच में विरजा नदी तथा ब्रह्मलोक स्थित हैं। विरजा नदी तथा ब्रह्मलोक उन जीवों के आश्रय-स्थान हैं, जो भौतिक जीवन से ऊबकर, भौतिक विविधता को नकारकर निर्विशेष अस्तित्व की ओर उन्मुख होते हैं। चूँकि ये स्थान वैकुण्ठ-लोकों में नहीं हैं, अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु इन्हें बाह्य बतलाते हैं। ब्रह्मलोक तथा विरजा नदी में कोई वैकुण्ठ लोकों की कल्पना नहीं कर सकता। ब्रह्मलोक तथा विरजा नदी भी काफी कठिन तपस्या के बाद प्राप्त हो पाते हैं। किन्तु इन क्षेत्रों में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनकी दिव्य प्रेमाभक्ति की कोई जानकारी नहीं हो पाती। ऐसे आध्यात्मिक ज्ञान के बिना भौतिक परिस्थितियों से विरक्ति का होना इस भौतिक जगत् का दूसरा पक्ष है। आध्यात्मिक दृष्टि से यह सब बाह्य है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया, तो रामानन्द राय ने यह प्रस्ताव रखा कि दर्शन तथा तर्क पर आधारित भक्ति अधिक उन्नत अवस्था है। इसलिए उन्होंने *भगवद्गीता* का निम्नलिखित श्लोक (१८.५४) उद्धृत किया।

ब्रह्म-भूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ ६५ ॥

ब्रह्म-भूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ ६५ ॥

ब्रह्म-भूतः—भौतिक बुद्धि से विरक्त किन्तु निराकार से आसक्त; **प्रसन्न-आत्मा**—प्रसन्न-आत्मा; **न शोचति**—नहीं सोचता (चिन्ता करता); **न काङ्क्षति**—न आकांक्षा करता है; **समः**—समान भाव रखता है; **सर्वेषु**—सभी; **भूतेषु**—जीवों में; **मत्-भक्तिम्**—मेरी भक्ति; **लभते**—पाता है; **पराम्**—दिव्य।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे कहा, "भगवद्गीता के अनुसार—'जो इस प्रकार दिव्य पद को प्राप्त है, उसे परम ब्रह्म की अनुभूति तुरन्त हो जाती है और वह पूर्णतया प्रसन्न हो जाता है। वह न तो कभी चिन्ता करता है,

न किसी वस्तु की इच्छा रखता है। वह सभी जीवों के प्रति समभाव रखता है। उस अवस्था में वह मेरी पूर्ण भक्ति प्राप्त करता है।'"

तात्पर्य

भगवद्गीता के इस श्लोक में कहा गया है कि जो व्यक्ति एकेश्वरवाद को स्वीकार करता है, अर्थात् जो आध्यात्मिक जीवन के विषय में दार्शनिक चर्चाओं में लगा रहता है, वह प्रसन्न होता है और समस्त भौतिक चिन्ताओं तथा लालसाओं से छुटकारा पा लेता है। उस अवस्था में वह समदर्शी हो जाता है। वह सारे जीवों को आध्यात्मिक रूप में देखता है। इस उच्च अवस्था को प्राप्त करने पर वह शुद्ध भक्ति प्राप्त कर सकता है। निष्कर्ष यह है कि कर्म-मिश्रित भक्ति, ज्ञानमिश्रित भक्ति से निकृष्ट है।

प्रभु कहे, "एहो बाह्य, आगे कह आर" ।
राय कहे,—"ज्ञान-शून्या भक्ति—साध्य-सार" ॥ ६६ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **एहो**—यह; **बाह्य**—बाहरी; **आगे**—आगे; **कह**—कहो; **आर**—और आगे; **राय कहे**—रामानन्द राय ने उत्तर दिया; **ज्ञान-शून्या भक्ति**—ज्ञान रहित भक्ति; **साध्य-सार**—जीवन की पूर्णता का सार।

अनुवाद

यह सुनकर महाप्रभु ने पहले की तरह इसे भी बाह्य भक्ति मानते हुए अस्वीकार कर दिया। उन्होंने रामानन्द राय से पुनः आगे बोलने के लिए कहा। इस पर रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "ज्ञान से रहित शुद्ध भक्ति ही पूर्णता का सार है।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने *अनुभाष्य* नामक अपने भाष्य में कहा है कि भक्ति की यह ज्ञानमिश्रित अवस्था भी बाह्य है और वैकुण्ठ लोक में की जाने वाली शुद्ध भक्ति के क्षेत्र में नहीं आती। जब कोई भौतिक विचार उठता है, चाहे वह सकारात्मक हो या नकारात्मक, तो ऐसी सेवा आध्यात्मिक

नहीं रह जाती। भले ही वह भौतिक कल्मष से रहित क्यों न हो, किन्तु मानसिक तर्क होने के कारण भक्ति शुद्ध और भौतिक जीवन के कल्मष से मुक्त नहीं रह पाती। जो जीव पूरा शुद्ध रहना चाहता है, उसे इस भौतिक विचार से ऊपर उठना चाहिए। यह जरूरी नहीं है कि भौतिक अस्तित्व के निषेध का अर्थ आध्यात्मिक जगत् हो। भौतिक जगत् का निषेध करने पर भी, हो सकता है, आध्यात्मिक जगत् अर्थात् *सच्चिदानन्द* प्रकट न हो। वास्तव में जब तक मनुष्य भगवान् के साथ अपने सनातन सम्बन्ध को नहीं समझ लेता, तब तक वह आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश नहीं पा सकता। आध्यात्मिक जीवन का अर्थ ही है भौतिक जीवन से विरक्त होना और भगवान् की प्रेममयी सेवा में लगना। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से कहा कि वे ज्ञानमिश्रित भक्ति से भी परे की कोई बात बतायें। शुद्ध भक्त भगवान् के चरणकमलों में पूर्णतया शरणागत होता है और वह अपने प्रेम के बल पर ही अजेय कृष्ण को जीत लेता है। कृष्ण सदैव विजेता रहते हैं। उन्हें कोई जीत नहीं सकता। मात्र पूर्ण शरणागति द्वारा ही शुद्ध भक्ति की अवस्था प्राप्त की जा सकती है। इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* के श्लोक (१०.१४.३) से होती है, जिसमें ब्रह्माजी ने श्रीकृष्ण की शक्ति से पराजित होकर उनकी शरण पूर्णतया ग्रहण की थी।

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीय-वार्ताम् ।
स्थाने स्थिताः श्रुति-गतां तनु-वाङ्-मनोभिर्
ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रि-लोक्याम् ॥ ६७॥

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीय-वार्ताम् ।
स्थाने स्थिताः श्रुति-गतां तनु-वाङ्-मनोभिर्
ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रि-लोक्याम् ॥ ६७॥

ज्ञाने—ज्ञान पाने हेतु; **प्रयासम्**—अनावश्यक प्रयास; **उदपास्य**—दूर रखकर; **नमन्तः**—पूर्णतया शरणागत होकर; **एव**—निश्चित रूप से; **जीवन्ति**—जीते हैं; **सत्-मुखरिताम्**—महान् स्वरूप-सिद्ध भक्तों द्वारा घोषित; **भवदीय-वार्ताम्**—आप भगवान् से सम्बन्धित चर्चा; **स्थाने**

स्थिताः—अपने पद पर स्थित; **श्रुति-गताम्**—श्रवण द्वारा से प्राप्त; **तनु-वाक्-मनोभिः**—शरीर, वाणी और मन से; **ये**—वे जो; **प्रायशः**—सदैव; **अजित**—हे मेरे अजेय प्रभु (इन्द्रियानुभूति से परे एवं असीम रूप से स्वतन्त्र); **जितः**—जीते गये; **अपि**—अवश्य; **असि**—आप हैं; **तैः**—ऐसे शुद्ध भक्तों से; **त्रि-लोक्याम्**—तीनों लोकों में।

अनुवाद

रामानन्द ने आगे कहा, "[ब्रह्माजी ने कहा :] 'हे प्रभु, जिन भक्तों ने परम सत्य के बारे में निर्विशेष खयाल को त्याग दिया है और जिन्होंने चिन्तन के दार्शनिक सत्यों के बारे में विचार-विमर्श करना त्याग दिया है, उन्हें स्वरूपसिद्ध भक्तों से आपके नाम, रूप, लीलाओं तथा गुणों के बारे में श्रवण करना चाहिए। उन्हें भक्ति के नियमों का पूर्णतया पालन करना चाहिए और अवैध सम्बन्ध, जुआ, नशा तथा पशु-हत्या से दूर रहना चाहिए। मन, कर्म तथा वचन से शरणागत होकर वे किसी भी वर्ण या आश्रम में रह सकते हैं। निस्सन्देह, आप सदैव अजेय होते हुए भी ऐसे व्यक्तियों द्वारा जीते जाते हैं।'"

প্রভু কহে, "এহো হয়, আগে কহ আর" ।
রায় কহে, "প্রেম-ভক্তি——সর্ব-সাধ্য-সার" ॥ ৬৮ ॥

प्रभु कहे, "एहो हय, आगे कह आर" ।
राय कहे, "प्रेम-भक्ति——सर्व-साध्य-सार" ॥ ६८ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **एहो हय**—यह ठीक है; **आगे कह आर**—आगे कुछ और कहो; **राय कहे**—राय ने उत्तर दिया; **प्रेम-भक्ति**—प्रेमाभक्ति; **सर्व-साध्य-सार**—सभी पूर्णता का सार है।

अनुवाद

इस पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "यह ठीक है, फिर भी कुछ आगे कहो।" तब रामानन्द राय ने कहा, "समस्त पूर्णता का सार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भावपूर्ण प्रेमाभक्ति है।"

तात्पर्य

इस प्रसंग का सार देते हुए श्रील भक्तिविनोद ठाकुर अपने *अमृत-प्रवाह-*

भाष्य में लिखते हैं कि रामानन्द की बात सुनने के बाद महाप्रभु ने कहा— *एहो हय, आगे कह आर।* इसका अर्थ यह है कि भक्ति में यही विधि मान्य है, किन्तु इसमें इससे भी अधिक कुछ छिपा रहता है। इसीलिए महाप्रभु ने अनुरोध किया कि वे यह बतायें कि इसके आगे क्या है। समस्त वर्णों तथा आश्रमों के कर्तव्यों का पालन करना ही अपने समस्त कर्मफलों को भगवान् को अर्पित करने के समान नहीं है। जब कोई व्यक्ति सारे सकाम कर्म छोड़कर भगवान् का पूर्णतया शरणागत बनता है, तो वह *स्वधर्म-त्याग* करता है, जिसमें वह अपने वर्ण को छोड़कर संन्यास ग्रहण करता है। यह निश्चित रूप से बेहतर है। किन्तु संन्यास ग्रहण करने से भी उत्तम है ज्ञान-मिश्रित भक्ति का अनुशीलन। तो भी ये सारे कर्म आध्यात्मिक जगत् के कार्यों की तुलना में बाह्य हैं। इनमें शुद्ध भक्ति नहीं पायी जाती। न तो कोरे ज्ञान से शुद्ध भक्ति प्राप्त हो सकती है, न केवल सत्संगति से पूर्णता प्राप्त हो सकती है। आत्म-साक्षात्कार द्वारा भक्ति सर्वथा भिन्न विषय है। इसमें लेशमात्र भी सकाम कर्म नहीं रहता, क्योंकि मनुष्य अपने कर्मफल भगवान् को अर्पित कर देता है, अपने नियत कर्तव्यों का परित्याग कर देता है और संन्यास आश्रम ग्रहण कर लेता है। ऐसी भक्ति कोरे चिन्तन-युक्त दार्शनिक भक्ति से श्रेष्ठ है। इसकी पुष्टि श्रील रूप गोस्वामी द्वारा *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.१.११) में की गई है :

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

"मनुष्य को सकाम कर्मों या दार्शनिक चिन्तन द्वारा किसी लाभ की इच्छा किये बिना भगवान् की अनुकूल प्रेमाभक्ति करनी चाहिए। यही शुद्ध भक्ति कहलाती है।"

फिर भी कभी-कभी प्राथमिक अवस्था में भक्तिमय कार्यकलाप अशुद्ध लग सकते हैं, किन्तु परिपक्व अवस्था में ये पूर्णतया शुद्ध होते हैं या भौतिक कार्यकलापों से मुक्त होते हैं। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु के अन्तिम वाक्य को सुनकर रामानन्द राय ने उत्तर दिया— *प्रेमभक्ति-सर्वसाध्यसार।* श्री चैतन्य महाप्रभु ने वस्तुतः इस श्लोक को (*ज्ञाने प्रयासम्*) पूर्णता के मूल सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया। प्रगति करने के लिए इस सिद्धान्त का अभ्यास करना

आवश्यक है। जब वास्तव में और प्रगति हो जाती है, तो मनुष्य भगवान् की भावपूर्ण प्रेमाभक्ति को प्राप्त होता है। यह पहली अवस्था *साधन-भक्ति* कहलाती है। साधन-भक्ति का परिणाम है भावपूर्ण *प्रेमाभक्ति।* प्राथमिक अवस्था में *साधन भक्ति* के अन्तर्गत श्रद्धा, भक्तों की संगति तथा भक्ति करना आते हैं। इस तरह मनुष्य सभी अवांछित वस्तुओं से मुक्त हो जाता है। तब वह भक्ति में स्थिर हो जाता है और उसमें भक्ति-कार्य करने की इच्छा और बढ़ जाती है। इस तरह वह भगवान् तथा उनकी भक्ति में आसक्त हो जाता है।

नानोपचार-कृत-पूजनमार्त-बन्धोः
प्रेम्णैव भक्त-हृदयं सुख-विद्रुतं स्याৎ ।
यावत्क्षुदस्ति जठरे जरठा पिपासा
তাবৎসুখায় ভবতো ননু ভক্ষ্য-পেয়ে ॥ ৬৯॥

नानोपचार-कृत-पूजनमार्त-बन्धोः
प्रेम्णैव भक्त-हृदयं सुख-विद्रुतं स्यात् ।
यावत्क्षुदस्ति जठरे जरठा पिपासा
तावत्सुखाय भवतो ननु भक्ष्य-पेये ॥ ६९॥

नाना-उपचार—नाना प्रकार के उपचार; **कृत**—किये गये; **पूजनम्**—पूजा के; **आर्त-बन्धोः**—सभी दुःखियों के बन्धु भगवान् के; **प्रेम्णा**—प्रेमभाव से; **एव**—निस्सन्देह; **भक्त-हृदयम्**—भक्त के हृदय को; **सुख-विद्रुतम्**—दिव्य आनन्द में द्रवित करते हैं; **स्यात्**—हो जाता है; **यावत्**—जब तक; **क्षुत्**—भूख; **अस्ति**—होती है; **जठरे**—पेट में; **जरठा**—तेज; **पिपासा**—प्यास; **तावत्**—तब तक; **सुखाय**—सुख के लिए; **भवतः**—हैं; **ननु**—निस्सन्देह; **भक्ष्य**—खाने के पदार्थ; **पेये**—और पीने के पदार्थ।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे कहा, "'जब तक पेट में भूख और प्यास है, तब तक विविध प्रकार के खाद्य-पेय पदार्थों से मनुष्य अत्यन्त सुख का अनुभव करता है। इसी तरह जब शुद्ध प्रेम से भगवान् की पूजा की जाती है, तो उस पूजा के दौरान किए गये विभिन्न कार्यकलापों से भक्त के हृदय में दिव्य आनन्द जाग्रत होता है।'"

कृष्ण-भक्ति-रस-भाविता मतिः
क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते ।
तत्र लौल्यमपि मूल्यमेकलं
जन्म-कोटि-सुकृतैर्न लभ्यते ॥७०॥

कृष्ण-भक्ति-रस-भाविता मतिः
क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते ।
तत्र लौल्यमपि मूल्यमेकलं
जन्म-कोटि-सुकृतैर्न लभ्यते ॥ ७० ॥

कृष्ण-भक्ति-रस-भाविता—कृष्णभक्ति के रस में मग्न; **मतिः**—बुद्धि; **क्रीयताम्**—खरीद ली जाए; **यदि**—यदि; **कुतः अपि**—कहीं न कहीं; **लभ्यते**—उपलब्ध है; **तत्र**—वहाँ; **लौल्यम्**—लोभ; **अपि**—निस्सन्देह; **मूल्यम्**—मूल्य; **एकलम्**—केवल; **जन्म-कोटि**—लाखों जन्मों में; **सुकृतैः**—पुण्य कर्मों से; **न**—नहीं; **लभ्यते**—पाया जाता।

अनुवाद

"'सैकड़ों-हजारों जन्मों के पुण्यकर्मों से भी कृष्णभावनाभावित शुद्ध भक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती। इसे तो केवल एक मूल्य पर—उसे प्राप्त करने की उत्कट लालसा से ही—प्राप्त की जा सकती है। यदि यह कहीं भी उपलब्ध हो सके, तो उसे तुरन्त ही खरीद लेनी चाहिए।'"

तात्पर्य

पिछले दो श्लोक ६९ तथा ७० श्रील रूप गोस्वामी कृत *पद्यावली* (१३, १४) से लिये गये हैं। श्लोक ६९ में श्रद्धायुक्त भक्ति का और श्लोक ७० में उत्कट लालसा से की जाने वाली भक्ति का उल्लेख है। पहली अर्थात् श्रद्धा भक्ति विधि-विधानों के अनुसार सम्पन्न की जाने वाली भक्ति है, जबकि दूसरी भक्ति किसी बाह्य प्रयास के बिना भगवान् के प्रति स्वतः स्फूर्त (रागानुराग प्रेम) भक्ति है। इसके आगे श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय की वार्ता का विषय भगवान् की स्वतःस्फूर्त रागानुगा प्रेम-भक्ति होगा। शास्त्रों के आदेशानुसार विधि-विधान तब तक आवश्यक हैं, जहाँ तक मनुष्य की मूल सुप्त कृष्ण-चेतना स्वतः जाग्रत नहीं होती। स्वतः स्फूर्त क्रिया का उदाहरण है समुद्र में नदियों का बहना। इस जल-प्रवाह को कोई रोक नहीं सकता। जिस तरह जल के प्रवाह को कोई रोक नहीं सकता, उसी तरह जब मनुष्य की सुप्त

कृष्ण-चेतना जाग्रत हो जाती है, तो यह निर्बाध रूप से कृष्ण के चरणकमलों की ओर स्वत: बह निकलती है। अब रामानन्द राय इसके आगे जो भी कहेंगे, वह स्वत: स्फूर्त प्रेम पर आधारित होने के कारण महाप्रभु को स्वीकार्य होगा और महाप्रभु उनसे इस विषय पर अधिकाधिक प्रश्न करते जायेंगे।

प्रभु कहे, "एहो हय, आगे कह आर" ।
राय कहे, "दास्य-प्रेम—सर्व-साध्य-सार" ॥ ७१ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **एहो हय**—यह ठीक है; **आगे कह आर**—आगे और कहो; **राय कहे**—रामानन्द राय ने उत्तर दिया; **दास्य-प्रेम**—दासता के रस में स्वाभाविक प्रेम; **सर्व-साध्य-सार**—पूर्णता का सार है।

अनुवाद

स्वत: स्फूर्त प्रेम की बात सुनकर महाप्रभु ने कहा, "यह ठीक है, किन्तु यदि आप और अधिक जानते हों तो कृपया मुझे बतलायें।" इसके उत्तर में रामानन्द राय ने कहा, "स्वत: स्फूर्त दास्य प्रेम—स्वामी तथा सेवक में आदान-प्रदान होने वाला प्रेम—ही सर्वोच्च पूर्णता है।

तात्पर्य

भगवान् की स्वत: स्फूर्त प्रेमा-भक्ति सेवक तथा सेव्य के बीच घनिष्ठ आसक्ति से युक्त भक्ति कहलाती है। यह घनिष्ठता *ममता* कहलाती है। सेवक तथा सेव्य में अभिन्नता का भाव होता है। यह *ममता* सेवक (दास) द्वारा सेव्य (स्वामी) के प्रति की गई सेवा अर्थात् दास्य प्रेम से शुरू होती है। जब तक ऐसा सम्बन्ध नहीं होता, तब तक वास्तव में भगवान् तथा उनके भक्त के बीच प्रेम व्यापार स्थिर नहीं हो पाता। जब भक्त यह अनुभव करता है कि, "भगवान् मेरे स्वामी हैं," और वह उनकी सेवा करता है, तो कृष्णभावनामृत का उदय होता है। यह दृढ़ चेतना भगवत्प्रेम के ज्ञान मात्र से अधिक उच्च स्तर पर होती है।

यन्नाम-श्रुति-मात्रेण पुमान्भवति निर्मलः ।
तस्य तीर्थ-पदः किं वा दासानामवशिष्यते ॥७२॥

यन्नाम-श्रुति-मात्रेण पुमान्भवति निर्मलः ।
तस्य तीर्थ-पदः किं वा दासानामवशिष्यते ॥७२॥

यत्—जिसका; **नाम**—नाम; **श्रुति-मात्रेण**—सुनने मात्र से; **पुमान्**—मनुष्य; **भवति**—हो जाता है; **निर्मलः**—निर्मल; **तस्य**—उनका; **तीर्थ-पदः**—भगवान् का, जिनके चरणकमलों में सभी तीर्थस्थान स्थित हैं; **किम्**—क्या; **वा**—और; **दासानाम्**—दासों के लिए; **अवशिष्यते**—बाकी रह जाता है।

अनुवाद

"'जिन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरणकमल तीर्थस्थानों को उत्पन्न करते हैं, उनके पवित्र नाम को सुनने से ही मनुष्य निर्मल हो जाता है। अतएव जो उनके दास बन चुके हैं, उन्हें अब आगे पाने के लिए क्या बचा है?'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (९.५.१६) का है, जो महर्षि दुर्वासा मुनि की स्वीकारोक्ति है। दुर्वासा मुनि, जो कि जाति के ब्राह्मण और महान् योगी हैं, महाराज अम्बरीष से घृणा करते थे। जब उन्होंने अपनी योगशक्ति से महाराज अम्बरीष को दण्ड देना चाहा, तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सुदर्शन चक्र ने उनका पीछा किया। जब मामला शान्त हो गया तो उन्होंने कहा, "जब कोई व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पवित्र नाम को सुनता है, तो वह तुरन्त निर्मल हो जाता है। भगवान् भक्तों के स्वामी हैं और उनके शरणागत भक्त उनके ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हैं।"

भवन्तमेवानुचरन्निरन्तरः
प्रशान्त-निःशेष-मनो-रथान्तरः ।
कदाहमैकान्तिक-नित्य-किङ्करः
प्रहर्षयिष्यामि स-नाथ-जीवितम् ॥७३॥

भवन्तमेवानुचरन्निरन्तरः
प्रशान्त-निःशेष-मनो-रथान्तरः ।

कदाहमैकान्तिक-नित्य-किङ्करः
प्रहर्षयिष्यामि स-नाथ-जीवितम् ॥ ७३ ॥

भवन्तम्—आप; **एव**—निश्चय ही; **अनुचरन्**—सेवा करने से; **निरन्तरः**—निरन्तर, सदा; **प्रशान्त**—शान्त हो जाते हैं; **निःशेष**—सब; **मनः-रथ**—इच्छाएँ; **अन्तरः**—अन्य; **कदा**—कब; **अहम्**—मैं; **ऐकान्तिक**—अकेले; **नित्य**—शाश्वत; **किङ्करः**—दास; **प्रहर्षयिष्यामि**—मैं प्रसन्न होऊँगा; **स-नाथ**—योग्य स्वामी के साथ; **जीवितम्**—रहकर।

अनुवाद

"'आपकी निरन्तर सेवा करते रहने से मनुष्य सारी भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाता है और पूर्णतया शान्त बन जाता है। वह दिन कब आयेगा जब आप मुझे अपना सनातन दास बना लेंगे और मैं आप जैसे पूर्ण स्वामी को पाकर परम हर्ष का अनुभव करूँगा?'

तात्पर्य

यह कथन परम सन्त भक्त यामुनाचार्य का है, जो उनके *स्तोत्ररत्न* (४३) से लिया गया है।

प्रभु कहे, "एहो हय, किछु आगे आर" ।
राय कहे, "सख्य-प्रेम—सर्व-साध्य-सार" ॥ ७४ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **एहो हय**—यह भी ठीक है; **किछु**—कुछ; **आगे**—आगे; **आर**—और; **राय कहे**—रामानन्द राय ने कहा; **सख्य-प्रेम**—सख्य-प्रेम; **सर्व-साध्य-सार**—उच्च श्रेणी की पूर्णता की अवस्था।

अनुवाद

रामानन्द राय से यह सुनकर महाप्रभु ने पुनः प्रार्थना की कि वे और आगे बढ़ें। रामानन्द राय ने उत्तर में कहा, "सख्य भाव से की गई कृष्ण की प्रेमाभक्ति सर्वोच्च पूर्णता है।

तात्पर्य

जब तक भगवान् की प्रेममयी सेवा सेव्य-सेवक सम्बन्ध में की जाती है, तब तक कुछ भय रहता है, क्योंकि स्वार्थ की प्रगाढ़ता के बावजूद दास को

स्वामी का भय बना रहता है। इस अवस्था में दास सदैव स्वामी से भयभीत रहता है और उसका आदर करता है। किन्तु जब भक्त उन्नति करता है, तब उसे किसी बात का भय नहीं रह जाता। वह अपने आपको भगवान् के समान पद पर मानता है। ऐसे अवसर पर भक्त को पूर्ण विश्वास हो जाता है कि भगवान् कृष्ण मित्र (सखा) हैं और यदि भक्त उनके समान पद पर रहता है, तो वे बिल्कुल असन्तुष्ट नहीं होंगे। यह विचार *विश्रम्भ* कहलाता है—इसमें सम्मान-प्रवृत्ति का अभाव रहता है। इस प्रवृत्ति को अपनाने पर *सख्य प्रेम* उपजता है। इस अवस्था में भगवान् तथा भक्त के बीच समानता की विकसित चेतना उत्पन्न होती है।

इत्थं सतां ब्रह्म-सुखानुभूत्या
दास्यं गतानां पर-दैवतेन ।
मायाश्रितानां नर-दारकेण
सार्धं विजह्रुः कृत-पुण्य-पुञ्जाः ॥७५॥

इत्थम्—इस प्रकार; **सताम्**—भगवान् के निराकार पहलू को महत्त्व देने वाले लोगों के; **ब्रह्म**—निराकार ज्योति; **सुख**—सुख से; **अनुभूत्या**—अनुभव करने वाला; **दास्यम्**—दास्य भाव; **गतानाम्**—उनका जिन्होंने स्वीकार किया है; **पर-दैवतेन**—परम पूज्य विग्रह; **माया-आश्रितानाम्**—माया के जाल में फँसे सामान्य व्यक्तियों के लिए; **नर-दारकेण**—उनके लिए जो इस भौतिक संसार में बालक के समान हैं; **सार्धम्**—मित्रता में; **विजह्रुः**—क्रीड़ा करते थे; **कृत-पुण्य-पुञ्जाः**—जिन्होंने पुण्यों के ढेर को संचित किया है।

अनुवाद

"'जो लोग भगवान् के ब्रह्मतेज की सराहना करते हुए आत्म-साक्षात्कार में लगे हैं, और जो लोग भगवान् को स्वामी के रूप में स्वीकार करके भक्ति में लगे हैं, तथा वे जो भगवान् को सामान्य पुरुष मानकर माया के पाश में बँधे रहते हैं, कभी यह नहीं समझ सकते कि कुछ

महापुरुष अनेक पुण्यकर्मों को संचित करने के बाद ग्वालबालों के रूप में भगवान् के साथ मित्र बनकर खेल रहे हैं।'"

तात्पर्य

यह कथन शुकदेव गोस्वामी का है (भागवत १०.१२.११), जो कृष्ण के साथ खेलने वाले तथा यमुना नदी के तट पर उनके साथ भोजन करने वाले ग्वालबालों के भाग्य की सराहना कर रहे हैं।

प्रभु कहे,—"एहो उत्तम, आगे कह आर" ।
राय कहे, "वात्सल्य-प्रेम—सर्व-साध्य-सार" ॥ ७६ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **एहो उत्तम**—यह बहुत अच्छा है; **आगे**—और आगे; **कह**—कहो; **आर**—कुछ और; **राय कहे**—रामानन्द राय ने उत्तर दिया; **वात्सल्य-प्रेम**—वात्सल्य भाव में भगवान् की प्रेममयी सेवा; **सर्व-साध्य-सार**—सर्वोच्च पूर्णता की अवस्था।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "यह कथन अति उत्तम है, किन्तु आगे कहते चलो।" तब रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "भगवान् के प्रति वात्सल्य प्रेम सर्वोच्च पूर्णता की अवस्था है।"

तात्पर्य

वात्सल्य प्रेम सख्य प्रेम से आगे की अवस्था है। सख्य सम्बन्ध में समानता का भाव रहता है, किन्तु जब समानता का भाव आगे बढ़कर वात्सल्य का रूप धारण कर लेता है, तो वात्सल्य प्रेम का पद प्राप्त हो जाता है। इस सन्दर्भ में *श्रीमद्भागवत* का निम्नलिखित श्लोक (१०.८.४६) उद्धृत किया गया है, जिसमें शुकदेव गोस्वामी कृष्ण के प्रति नन्द महाराज तथा माता यशोदा के उत्कट प्रेम की प्रशंसा करते हैं।

नन्दः किमकरोद्ब्रह्मन्श्रेय एवं महोदयम् ।
यशोदा वा महा-भागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥ ७७ ॥

नन्दः किमकरोद्ब्रह्मन्श्रेय एवं महोदयम् ।
यशोदा वा महा-भागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥ ७७॥

नन्दः—नन्द महाराज; **किम्**—क्या; **अकरोत्**—किया है; **ब्रह्मन्**—हे ब्राह्मण; **श्रेयः**—शुभ कर्म; **एवम्**—इस तरह; **महा-उदयम्**—कृष्ण के पिता की उच्च स्थिति तक ऊपर उठने के लिए; **यशोदा**—यशोदा माता; **वा**—अथवा; **महा-भागा**—महा भाग्यवान; **पपौ**—पिया; **यस्याः**—जिनके; **स्तनम्**—स्तन; **हरिः**—भगवान् ने।

अनुवाद

रामानन्द राय कहते रहे, "'हे ब्राह्मण, भला नन्द महाराज ने कौन-सा पुण्यकर्म किया था, जिसके कारण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण उन्हें पुत्र रूप में प्राप्त हुए? और माता यशोदा ने कौन-से पुण्यकर्म किये थे, जिनके कारण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण से अपने आपको "माता" कहलवाया और अपने स्तनों का पान कराया?

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्ग-संश्रया ।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्ति-दात् ॥७८॥

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्ग-संश्रया ।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्ति-दात् ॥ ७८ ॥

न—नहीं; **इमम्**—यह (ईश्वर-प्रेम); **विरिञ्चः**—ब्रह्माजी; **न**—नहीं; **भवः**—शिवजी; **न**—न ही; **श्रीः**—लक्ष्मी देवी; **अपि**—भी; **अङ्ग**—विष्णु के वक्षस्थल पर; **संश्रया**—आश्रय लेती हैं; **प्रसादम्**—पक्ष; **लेभिरे**—पाया है; **गोपी**—माता यशोदा; **यत्**—जो; **तत्**—वह; **प्राप**—प्राप्त किया; **विमुक्ति-दात्**—मुक्तिदाता से।

अनुवाद

"'मुक्ति प्रदान करने वाले श्रीकृष्ण से माता यशोदा को जो कृपा-प्रसाद मिला, वह न तो कभी ब्रह्माजी को प्राप्त हो सका, न शिवजी को, न ही उन लक्ष्मीजी को जो सदैव भगवान् विष्णु के वक्षस्थल पर विराजमान रहती हैं।'"

तात्पर्य

यह कथन *श्रीमद्भागवत* (१०.९.२०) का है। जब माता यशोदा कृष्ण को रस्सी से न बाँध पाईं, तो कृष्ण ने अपने आपको बँधवा लिया। श्री शुकदेव

गोस्वामी ने महाराज परीक्षित के समक्ष कृष्ण-लीलाओं का वर्णन करते हुए इस तरह से प्रशंसा की।

প্রভু কহে, "এহো উত্তম, আগে কহ আর" ।
রায় কহে, "কান্তা-প্রেম সর্ব-সাধ্য-সার" ॥৭৯॥

प्रभु कहे, "एहो उत्तम, आगे कह आर" ।
राय कहे, "कान्ता-प्रेम सर्व-साध्य-सार" ॥ ७९ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **एहो उत्तम**—यह अति उत्तम है; **आगे**—आगे; **कह**—कहो; **आर**—और अधिक; **राय कहे**—रामानन्द राय ने कहा; **कान्ता-प्रेम**—पति-पत्नी के बीच प्रेम; **सर्व-साध्य-सार**—उच्चतम पूर्णता की अवस्था है।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "तुम्हारे कथन उत्तरोत्तर अच्छे होते जा रहे हैं, किन्तु इन सबसे बढ़कर अन्य दिव्य रस है, जिसे आप अच्छी तरह बतला सकते हैं।" तब रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "भगवत्प्रेम में कृष्ण के प्रति माधुर्य आसक्ति सर्वोपरि है।

तात्पर्य

सामान्यतया भगवत्प्रेम स्वामित्व की घनिष्ठता से रहित होता है। दास्य प्रेम में विश्वास का अभाव रहता है। सख्य प्रेम में अधिक स्नेह का अभाव रहता है; जब यह स्नेह बढ़कर वात्सल्य सम्बन्ध का रूप धारण करता है, तो भी उसमें पूर्ण स्वतन्त्रता का अभाव रहता है। किन्तु जब कोई कृष्ण को दाम्पत्य-भाव से प्रेम करने लगता है, तो अन्य सम्बन्धों के सारे अभाव प्रकट हो आते हैं। दाम्पत्य अवस्था में भगवत्प्रेम में कोई अभाव नहीं रह जाता। इस श्लोक का सारांश यह है कि वात्सल्य प्रेम निश्चित रूप से सख्य प्रेम से बढ़कर है और दाम्पत्य प्रेम उससे भी ऊँचा है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से और आगे बढ़ने के लिए कहा, तभी उन्होंने दाम्पत्य सम्बन्ध (माधुर्य भाव) की बात उठाई, जो दिव्य प्रेम की सर्वोच्च पूर्णावस्था है।

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्त-रतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिन-गन्ध-रुचां कुतोऽन्याः ।

रासोत्सवेऽस्य भुज-दण्ड-गृहीत-कण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद्व्रज-सुन्दरीणाम् ॥ ८० ॥

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्त-रतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिन-गन्ध-रुचां कुतोऽन्याः ।
रासोत्सवेऽस्य भुज-दण्ड-गृहीत-कण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद्व्रज-सुन्दरीणाम् ॥ ८० ॥

न—नहीं; **अयम्**—यह; **श्रियः**—लक्ष्मी देवी की; **अङ्गे**—छातीपर; **उ**—अफसोस है; **नितान्त-रतेः**—जिनका अन्तरंग सम्बन्ध है; **प्रसादः**—कृपा; **स्वः**—स्वर्ग-लोकों की; **योषिताम्**—महिलाओं की; **नलिन**—कमल-पुष्प की; **गन्ध**—गन्ध वाला; **रुचाम्**—शारीरिक कान्ति; **कुतः**—बहुत कम; **अन्याः**—अन्य; **रास-उत्सवे**—रास नृत्य के उत्सव में; **अस्य**—भगवान् श्रीकृष्ण की; **भुज-दण्ड**—भुजाओं से; **गृहीत**—आलिंगित किया गया; **कण्ठ**—उनकी गर्दन में; **लब्ध-आशिषाम्**—जिन्हें ऐसा आशीर्वाद मिला; **यः**—जो; **उदगात्**—प्रकट हुआ; **व्रज-सुन्दरीणाम्**—व्रजभूमि की सुन्दर दिव्य बालाएँ।

अनुवाद

"'जब भगवान् श्रीकृष्ण गोपियों के साथ रासनृत्य कर रहे थे, तब उनकी भुजाएँ गोपियों के गले के इर्द गिर्द उनका आलिंगन कर रही थीं। ऐसा दिव्य सुयोग न तो कभी लक्ष्मीजी को प्राप्त हुआ, न ही वैकुण्ठ की अन्य प्रेयसियों को। न ही स्वर्गलोक की उन श्रेष्ठ सुन्दरियों ने कभी ऐसी कल्पना की थी, जिनकी शारीरिक कान्ति तथा सुगन्धि कमल के फूल जैसी है। तो भला उन सांसारिक स्त्रियों की बात ही क्या, जो भौतिक दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर हों?'

तात्पर्य

यह श्लोक (*भागवत* १०.४७.६०) उद्धव ने उस समय कहा था, जब वे कृष्ण का सन्देश लेकर गोपियों के पास श्री वृन्दावन गये थे। उद्धव गोपियों की गतिविधियाँ जानने के लिए वृन्दावन में रहे थे। जब उन्होंने कृष्ण के विरह में गोपियों द्वारा प्रकट प्रेम-भाव देखा, तो उन्होंने उनके सर्वोच्च प्रेम की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए यह श्लोक कहा। उन्होंने स्वीकार किया कि गोपियों के भाग्य की तुलना में जब लक्ष्मी का भाग्य नगण्य है, तो स्वर्ग की सुन्दरियों की तो बात ही नहीं उठती।

তাসামাবিরভূচ্ছৌরিঃ স্ময়মান-মুখাম্বুজঃ ।
পীতাম্বর-ধরঃ স্রগ্বী সাক্ষান্মন্মথ-মন্মথঃ ॥ ৮১ ॥

তাসামাবিরভূচ্ছৌরিঃ স্ময়মান-মুখাম্বুজঃ ।
পীতাম্বর-ধরঃ স্রগ্বী সাক্ষান্মন্মথ-মন্মথঃ ॥ ৮১ ॥

তাসাম্—उनमें; **আবিরভূৎ**—प्रकट हुए; **শৌরিঃ**—भगवान् कृष्ण; **স্ময়মান**—मुस्कुराते हुए; **মুখ-অম্বুজঃ**—कमलमुख वाले; **পীত-অম্বর-ধরঃ**—पीताम्बर पहने; **স্রগ্বী**—फूलों की माला धारण किये; **সাক্ষাৎ**—साक्षात्; **মন্মথ**—कामदेव को; **মন্মথঃ**—मोहित करने वाले।

अनुवाद

"'गोपियों की विरह भावनाओं के कारण कृष्ण पीताम्बर पहने फूलों की माला धारण किये एकाएक उनके बीच में प्रकट हो गये। उनका कमल-मुख मुस्कुरा रहा था और वे कामदेव के मन को भी आकृष्ट करने वाले थे।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.३२.२) का है। कृष्ण रासनृत्य के बीच से ही अन्तर्धान हो गये थे, जिससे गोपियाँ उनके विरह और उनके प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण विह्वल हो उठीं। फलस्वरूप कृष्ण को पुनः प्रकट होना पड़ा।

কৃষ্ণ-প্রাপ্তির উপায় বহু-বিধ হয় ।
কৃষ্ণ-প্রাপ্তি-তারতম্য বহুত আছয় ॥ ৮২ ॥

কৃষ্ণ-প্রাপ্তির উপায় বহু-বিধ হয় ।
কৃষ্ণ-প্রাপ্তি-তারতম্য বহুত আছয় ॥ ৮২ ॥

কৃষ্ণ-প্রাপ্তির—कृष्ण के चरणकमल की शरण पा लेने के; **উপায়**—उपाय; **বহু-বিধ**—नाना प्रकार के; **হয়**—हैं; **কৃষ্ণ-প্রাপ্তি**—भगवान् कृष्ण की कृपा पा लेने का; **তারতম্য**—तुलनाएँ; **বহুত**—नाना प्रकार की; **আছয়**—हैं।

अनुवाद

"कृष्ण की कृपा प्राप्त करने के अनेक साधन तथा विधियाँ हैं। अब उन सारी दिव्य विधियों का अध्ययन सापेक्ष महत्त्व की दृष्टि से किया जायेगा।

কিন্তু যাঁর যেই রস, সেই সর্বোত্তম ।
তট-স্থ হঞা বিচারিলে, আছে তর-তম ॥৮৩॥

किन्तु य्याँर य्येइ रस, सेइ सर्वोत्तम ।
तट-स्थ हञा विचारिले, आछे तर-तम ॥८३॥

किन्तु—किन्तु; **य्याँर**—कुछ भक्तों का; **य्येइ रस**—प्रेम के आदान-प्रदान का जो भी रस हो; **सेइ**—वह; **सर्व-उत्तम**—सर्वोत्तम; **तट-स्थ**—तटस्थ; **हञा**—होकर; **विचारिले**—अगर विचार किया जाए; **आछे**—हैं; **तर-तम**—निम्न और ऊँचे स्तर के।

अनुवाद

"यह सच है कि भगवान् के साथ जिस भक्त का जैसा भी सम्बन्ध है, वही उसके लिए सर्वोत्तम है। किन्तु तो भी जब हम विभिन्न विधियों का अध्ययन तटस्थ होकर करते हैं, तो हम समझ सकते हैं कि प्रेम की उच्च तथा निम्न कोटियाँ होती हैं।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर बतलाते हैं कि यह श्लोक भगवत्प्रेम की कुछ विधियों की मनमानी खोज का समर्थन नहीं करता। न ही ऐसी विधियों को सर्वोच्च माना जा सकता है। श्रील रूप गोस्वामी ने *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.२.१०१) में कहा है :

श्रुतिस्मृतिपुराणादिपञ्चरात्रविधिं विना।
ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव कल्पते॥

वे इस श्लोक में स्पष्ट कहते हैं कि मनुष्य को वैदिक साहित्य तथा अन्य गौण साहित्य को देखना चाहिए और वेदों के निष्कर्षों का अनुसरण करना चाहिए। मनोकल्पित भक्ति-प्रवृत्ति से दिव्य क्षेत्र में केवल गड़बड़ी ही मचती है। यदि गृहस्थ जीवन में अत्यधिक आसक्त व्यक्ति *श्रीमद्भागवत* या कृष्णभावनामृत को अपनी आजीविका का साधन बनाता है, तो उसका यह कार्य निश्चित रूप से अपराधपूर्ण है। न तो गुरु बनकर संसारी ग्राहकों को मन्त्र बेचने चाहिए, न ही अपनी आजीविका के लिए चेले बनाने चाहिए। ये सारे कार्य अपराधपूर्ण हैं। न ही किसी को संकीर्तन के लिए पेशेवर टोली बनाकर आजीविका चलानी चाहिए, न ही संसार में समाज, मैत्री तथा प्यार में आसक्त

रहकर भक्ति करनी चाहिए। न ही तथाकथित सामाजिक शिष्टाचार पर निर्भर रहना चाहिए। यह सब मानसिक कल्पनाएँ हैं। इनमें से किसी एक की भी तुलना शुद्ध भक्ति से नहीं की जा सकती। अनन्य भक्ति या कृष्णभावनामृत की तुलना सांसारिक कार्यों से नहीं की जा सकती। ऐसी अनेक अवैध टोलियाँ हैं, जो अपने आपको श्री चैतन्य महाप्रभु से सम्बन्धित बताती हैं—यथा आउल, बाउल, कर्ताभजा, नेडा, दरवेश, सांइ, सखीभेकी, स्मार्त, जात गोसांइ, अतिवाड़ी, चूड़ाधारी तथा गौरांग नागरी।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे लोग हैं, जो इन टोलियों के बारे में जात-गोस्वामियों की राय को प्रामाणिक समझते हैं और इन मत को श्री रूप तथा सनातन आदि छः गोस्वामियों के मत के बराबर समझते हैं। यह एक प्रकार की धोखेबाजी ही है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे अभक्त भी हैं, जो अवैध गीत रचते हैं, धन के लिए मन्दिरों की स्थापना करते हैं, वेतन पाने के लिए वे पुजारी बनकर अर्चाविग्रहों की पूजा करते हैं और जाति से ब्राह्मण होने को ही सब कुछ मान लेते हैं, किन्तु वे शुद्ध वैष्णव के महत्त्व को नहीं जानते। वास्तव में स्मार्त जाति के ब्राह्मण *सात्वत पञ्चरात्र* के नियमों के विरोधी होते हैं। फिर अनेक मायावादी हैं और वे भी हैं, जो इन्द्रिय-भोग में बुरी तरह लिप्त रहते हैं। इनमें से किसी की भी तुलना कृष्णभावनामृत के शुद्ध प्रचारक से नहीं की जा सकती। प्रत्येक कृष्णभावनाभावित व्यक्ति विभिन्न दिव्य उपकरणों का उपयोग भगवान् की सेवा में करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है। ऐसा भक्त सारे भौतिक भोगों को त्यागकर अपने गुरु और श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में पूर्ण रूप से समर्पित हो जाता है। वह आदर्श ब्रह्मचारी, संयमी गृहस्थ, नियमित वानप्रस्थ या त्रिदण्डी संन्यासी हो सकता है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। ढोंगी अध्यात्मवादियों तथा शुद्ध भक्तों का कोई मुकाबला नहीं है, न ही इस बात पर तर्क किया जा सकता है कि कोई भी व्यक्ति पूजा की अपनी विधि खोज सकता है।

इस श्लोक के तात्पर्य को समझाने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य आदि दिव्य रसों की तुलनात्मक स्थिति की व्याख्या की जाए। ये सारे रस दिव्य पद को प्राप्त हैं। शुद्ध भक्त

इनमें से किसी एक को आधार बनाकर आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करते हैं। वास्तव में इनमें से किसी रस का आश्रय तब लिया जाना चाहिए, जब कोई भौतिक आसक्ति से पूर्णतया विमुक्त हो जाए। भौतिक आसक्ति से पूर्णतया मुक्त होने पर ही भक्त के हृदय में दिव्य रस के भाव का उदय होता है। यही *स्वरूपसिद्धि* अर्थात् भगवान् के साथ अपने सनातन सम्बन्ध की पूर्णता है। यह स्वरूपसिद्धि किसी एक दिव्य रस में अवस्थित हो सकती है। सारे रस अपने में पूर्ण हैं। किन्तु निष्पक्ष अध्ययन से पता चलेगा कि दास्य रस शान्त रस से उत्तम है, सख्य रस दास्य रस से उत्तम है, वात्सल्य रस सख्य रस से उत्तम है और इन सबसे बढ़कर है माधुर्य रस। किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से ये सब एक ही धरातल पर अवस्थित हैं, क्योंकि ये सभी एक ही केन्द्रबिन्दु, कृष्ण पर आधारित हैं।

इन रसों की तुलना देवी-देवताओं की पूजा से प्राप्त होने वाले भावों से नहीं की जा सकती। कृष्ण एक हैं, किन्तु देवता अनेक हैं। वे भौतिक हैं। कृष्ण-प्रेम की तुलना विभिन्न देवताओं के प्रति भौतिक प्रेम से नहीं की जा सकती। चूँकि मायावादी भौतिक स्तर पर होते हैं, अतएव वे शिव या दुर्गा की पूजा करने का परामर्श देते हैं और कहते हैं कि काली तथा कृष्ण की पूजा एक समान है। किन्तु आध्यात्मिक स्तर पर देवता-पूजा नहीं होती। आराध्य तो केवल कृष्ण ही हैं। अतएव यद्यपि शान्त रस या दास्य रस, वात्सल्य रस या माधुर्य रस के भक्तों में कोई अन्तर नहीं होता, तो भी इन विभिन्न दिव्य स्थितियों में प्रेम की गहनता का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, यह कहा जा सकता है कि दास्य रस शान्त रस से बेहतर है, किन्तु भगवत्प्रेम दोनों में ही रहता है। इसी तरह सख्य रस, शान्त-रस तथा दास्य रस से उत्तम कहा जा सकता है। इसी प्रकार वात्सल्य रस सख्य रस से बेहतर है। और जैसाकि पहले कहा जा चुका है, माधुर्य रस वात्सल्य रस से श्रेष्ठ है।

दक्ष आचार्य दिव्य स्तर पर भक्ति के बारे में सब कुछ जानते हैं। उन्होंने भगवत्प्रेम के विविध प्रकारों का विश्लेषण किया है। दुर्भाग्यवश कुछ अनुभवहीन अवैध संसारी लोग शुद्ध प्रेम की दिव्य स्थिति को समझे बिना इस दिव्य प्रक्रिया में दोष निकालने का प्रयास करते हैं। यह आध्यात्मिक रूप से

अनुभवहीन व्यक्तियों की हठधर्मिता ही कहलायेगी। ऐसा दोषारोपण अभागे संसारी हठी व्यक्तियों का लक्षण ही है।

যথোত্তরমসৌ স্বাদ-বিশেষোল্লাস-ময়্যপি ।
রতির্বাসনয়া স্বাদ্বী ভাসতে কাপি কস্যচিৎ ॥ ৮৪ ॥

য়থোত্তরমসৌ স্বাদ-বিশেষোল্লাস-ময়্যপি ।
রতির্বাসনয়া স্বাদ্বী ভাসতে কাপি কস্যচিত্ ॥ ৮৪ ॥

য়থা উত্তরম্—एक के बाद एक; **असौ**—वह; **स्वाद-विशेष**—विशेष स्वाद; **उल्लास**—सुखद; **मयी**—होने पर; **अपि**—यद्यपि; **रतिः**—प्रेम; **वासनया**—इच्छा से; **स्वाद्वी**—मधुर; **भासते**—लगता है; **का अपि**—कोई; **कस्यचित्**—उनमें से कोई।

अनुवाद

"'एक के बाद एक रसों में अधिकाधिक प्रेम का अनुभव होता है। किन्तु सर्वोच्च स्वाद वाला प्रेम तो माधुर्य रस में ही प्रकट होता है।'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत *भक्तिरसामृतसिन्धु* (२.५.३८) का है। यह आदिलीला (४.४५) में भी आया है।

পূর্ব-পূর্ব-রসের গুণ—পরে পরে হয় ।
দুই-তিন গণনে পঞ্চ পর্যন্ত বাড়য় ॥ ৮৫ ॥

पूर्व-पूर्व-रसेर गुण—परे परे हय ।
दुइ-तिन गणने पञ्च पर्य्रन्त बाड़य ॥ ८५ ॥

पूर्व-पूर्व—पिछले प्रत्येक का; **रसेर**—रस का; **गुण**—गुण; **परे परे**—बाद के प्रत्येक रस में; **हय**—हैं; **दुइ-तिन**—दो या तीन; **गणने**—गिनती में; **पञ्च**—पाँच; **पर्य्रन्त**—तक, पर्यन्त; **बाड़य**—बढ़ता है।

अनुवाद

"एक रस से लेकर बाद के रसों तक क्रमशः बढ़ोतरी होती जाती है। दूसरे, तीसरे और अधिक से अधिक पाँचवे रस तक प्रत्येक परवर्ती रस के गुण में पूर्ववर्ती रस के गुण प्रकट होते हैं।

গুণাধিক্যে স্বাদাধিক্য বাড়ে প্রতি-রসে ।
শান্ত-দাস্য-সখ্য-বাত্সল্যের গুণ মধুরেতে বৈসে ॥ ৮৬ ॥

গুণাধিক্যে স্বাদাধিক্য বাড়ে প্রতি-রসে ।
শান্ত-দাস্য-সখ্য-বাত্সল্যের গুণ মধুরেতে বৈসে ॥ ৮৬ ॥

গুণ-আধিক্যে—দিব্য গুণের বढ़ने से; **স্বাদ-আধিক্য**—स्वाद की वृद्धि; **বাড়ে**—बढ़ती है; **প্রতি-রসে**—प्रत्येक रस में; **শান্ত**—शान्त रस; **দাস্য**—दास्य रस; **সখ্য**—सख्य रस; **বাত্সল্যের**—वात्सल्य रस के; **গুণ**—गुण; **মধুরেতে**—माधुर्य रस में; **বৈসে**—प्रकट होते हैं।

অনুবাদ

"गुणों में वृद्धि के साथ-साथ प्रत्येक रस के स्वाद में भी वृद्धि होती जाती है। अतएव शान्त रस, दास्य रस, सख्य रस तथा वात्सल्य रस के सारे गुण माधुर्य रस में प्रकट होते हैं।

আকাশাদির গুণ যেন পর-পর ভূতে ।
দুই-তিন ক্রমে বাড়ে পঞ্চ পৃথিবীতে ॥ ৮৭ ॥

আকাশাদির গুণ যেন পর-পর ভূতে ।
দুই-তিন ক্রমে বাড়ে পঞ্চ পৃথিবীতে ॥ ৮৭ ॥

আকাশ-আদির—आकाश, वायु इत्यादि के; **গুণ**—गुण; **যেন**—जैसे; **পর-পর**—एक के बाद एक; **ভূতে**—भौतिक तत्त्वों में; **দুই-তিন**—दो और तीन; **ক্রমে**—क्रम से; **বাড়ে**—बढ़ते हैं; **পঞ্চ**—सब पाँच; **পৃথিবীতে**—पृथ्वी में।

অনুবাদ

"पाँच भौतिक तत्त्वों—आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी—में गुणों की उत्तरोत्तर वृद्धि एक, दो, तथा तीन की क्रमिक विधि से होती है और अन्तिम अवस्था में पृथ्वी तत्त्व में पाँचों गुण पूर्णतया दृष्टिगोचर होते हैं।

পরিপূর্ণ-কৃষ্ণ-প্রাপ্তি এই 'প্রেমা' হৈতে ।
এই প্রেমার বশ কৃষ্ণ—কহে ভাগবতে ॥ ৮৮ ॥

পরিপূর্ণ-কৃষ্ণ-প্রাপ্তি এই 'প্রেমা' হৈতে ।
এই প্রেমার বশ কৃষ্ণ—কহে ভাগবতে ॥ ৮৮ ॥

परिपूर्ण—परिपूर्ण; **कृष्ण-प्राप्ति**—भगवान् कृष्ण के चरणकमल की प्राप्ति; **एइ**—यह; **प्रेमा**—भगवत्प्रेम; **हैते**—से; **एइ प्रेमार**—उस भगवत्प्रेम के; **वश**—नियंत्रण में; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **कहे**—कहा गया है; **भागवते**—श्रीमद्भागवत में।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की पूर्ण प्राप्ति भगवत्प्रेम से, विशेष रूप से माधुर्य रस द्वारा सम्भव हो पाती है। भगवान् कृष्ण इस स्तर के प्रेम के वश में हो जाते हैं। श्रीमद्भागवत में ऐसा कहा गया है।

तात्पर्य

माधुर्य रस के सर्वोच्च गुण की व्याख्या करने के लिए श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी भौतिक तत्त्वों—आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी—का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं। आकाश में शब्द (ध्वनि) का गुण है। इसी तरह वायु में ध्वनि तथा स्पर्श के गुण हैं। अग्नि में तीन गुण होते हैं—शब्द, स्पर्श तथा रूप। जल में चार गुण हैं—शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस (स्वाद)। और पृथ्वी में पाँचों गुण होते हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध। अब यह देखा जा सकता है कि आकाश का गुण सबमें—वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी में हैं। पृथ्वी में हमें भौतिक प्रकृति के सारे गुण मिलते हैं। यही बात माधुर्य रस पर भी लागू होती है। माधुर्य रस में शान्त, दास्य, सख्य तथा वात्सल्य के अतिरिक्त स्वयं माधुर्य प्रेम के सारे गुण पाये जाते हैं। निष्कर्ष यह है कि माधुर्य रस द्वारा भगवान् पूर्णतया तुष्ट होते हैं।

माधुर्य रस को *शृंगार रस* भी कहा जाता है। *श्रीमद्भागवत* का यह निष्कर्ष है कि भगवान् की प्रेममयी सेवा के संपूर्ण संयोग रूपी माधुर्य रस में भगवान् पूर्णतया भक्त के वश में होने के लिए राजी हो जाते हैं। माधुर्य रस की पराकाष्ठा राधारानी में देखी जाती है; अतएव हम देखते हैं कि राधा-कृष्ण की लीलाओं में कृष्ण सदैव श्रीमती राधारानी के वश में रहते हैं।

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ।
दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥८९॥

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ।
दिष्ट्या ग्रदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥८९॥

मयि—मेरी; **भक्तिः**—भक्ति; **हि**—अवश्य; **भूतानाम्**—सभी जीवों का; **अमृतत्वाय**—अमर होने के लिए; **कल्पते**—के निमित्त है; **दिष्ट्या**—सौभाग्य से; **यत्**—क्या; **आसीत्**—है; **मत्-स्नेहः**—मेरे लिए प्रेम; **भवतीनाम्**—आप सबका; **मत्-आपनः**—मेरी कृपा पाने का साधन।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण ने गोपियों से कहा, 'मेरी कृपा प्राप्त करने का साधन मेरी प्रेममयी सेवा है और सौभाग्य से तुम सब उसी में लगी हुई हो। जो जीव मेरी सेवा करते हैं, वे वैकुण्ठ जाने और ज्ञान तथा आनन्द से पूर्ण शाश्वत जीवन प्राप्त करने के पात्र हैं।'

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत के इस श्लोक (१०.८२.४४) में मानव जीवन की पूर्ति का सार दिया गया है। इस श्लोक में दो महत्त्वपूर्ण शब्द हैं— *भक्ति* तथा *अमृतत्व।* मानव जीवन का उद्देश्य शाश्वत जीवन का प्राकृतिक पद प्राप्त करना है। यह शाश्वत जीवन एकमात्र भक्ति द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

कृष्णेर प्रतिज्ञा दृढ़ सर्व-काले आछे ।
ये यैछे भजे, कृष्ण तारे भजे तैछे ॥९०॥

कृष्णेर प्रतिज्ञा दृढ़ सर्व-काले आछे ।
ये यैछे भजे, कृष्ण तारे भजे तैछे ॥९०॥

कृष्णेर—भगवान् कृष्ण की; **प्रतिज्ञा**—प्रतिज्ञा; **दृढ़**—दृढ़; **सर्व-काले**—सभी समय; **आछे**—होती है; **ये**—कोई भी; **यैछे**—जैसे; **भजे**—भजता है; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **तारे**—उसको; **भजे**—व्यवहार करते हैं; **तैछे**—हमेशा उसी प्रकार।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण ने सदा सदा के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा की है। जो कोई कृष्ण की जितनी सेवा करता है, वे उसे भगवद्भक्ति में उतनी ही सफलता प्रदान करते हैं।

तात्पर्य

यह सोचना बहुत बड़ी भूल होगी कि कोई किसी भी रूप में या किसी भी प्रकार से कृष्ण की पूजा कर सकता है और फिर भी उनकी कृपा-रूपी

फल प्राप्त कर सकता है। ऐसा निर्णय निपट भौतिकतावादी व्यक्तियों का है। ऐसे लोग सामान्यतया यह कहते हैं कि भगवान् की पूजा की आप अपनी नई विधि बना सकते हैं और किसी भी तरह की पूजा से भगवान् तक पहुँचा जा सकता है। यह सत्य है कि कर्म, ज्ञान, योग तथा तपस्या द्वारा विभिन्न फलों की प्राप्ति के लिए पृथक्-पृथक् विधियाँ हैं। इसलिए भौतिकवादी लोग कहते हैं कि इनमें से चाहे जिस विधि को अपना लिया जाए, भगवान् की कृपा तो प्राप्त होगी ही। उनका दावा है कि इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कोई किस प्रकार की विधि अपनाता है। इस सम्बन्ध में एक सामान्य उदाहरण दिया जाता है : यदि कोई किसी निश्चित स्थान को जाना चाहता है, तो वहाँ जाने के अनेक मार्ग होते हैं और इनमें से किसी भी एक मार्ग से वहाँ तक पहुँचा जा सकता है। इसी तरह ये निपट भौतिकतावादी भी कहते हैं कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कृपा प्राप्त करने की विभिन्न विधियाँ हैं। उनका कहना है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कल्पना दुर्गा, काली, शिवजी, गणेश, भगवान् राम, कृष्ण, निर्विशेष ब्रह्म या अन्य कुछ भी के रूप में की जा सकती है और जो जिस भी तरह और जिस भी रूप में चाहे, भगवन्नाम का कीर्तन किया जा सकता है। ऐसे भौतिकतावादियों का दावा है कि चूँकि अन्ततोगत्वा सभी नाम तथा रूप एक हैं, अत: इससे फल एक-सा मिलता है। वे यह भी उदाहरण देते हैं कि जिस मनुष्य के कई नाम हों, वह किसी भी एक नाम से पुकारे जाने पर उत्तर देगा। इसलिए उनका कहना है कि हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि कोई काली, दुर्गा, शिव, गणेश या अन्य किसी के नाम का जप करता है, तो परिणाम एक-सा होगा।

ऐसे दावे मानसिक तर्कवितर्क करने वालों द्वारा किये जाते हैं और उनके लिए ये निस्सन्देह, सुहावने होते हैं, किन्तु जो वास्तविक ज्ञानी हैं, वे ऐसे निष्कर्षों को स्वीकार नहीं करते, क्योंकि ये निष्कर्ष शास्त्रों के विरुद्ध हैं। कम-से-कम प्रामाणिक आचार्य ऐसे निष्कर्ष को तो नहीं स्वीकार करेंगे। कृष्ण ने *भगवद्गीता* (९.२५) में स्पष्ट कहा है :

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रता:।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥

"जो लोग देवताओं की पूजा करते हैं, वे देवताओं के बीच जन्म लेंगे, जो पितरों की पूजा करते हैं, वे पितरों के पास जायेंगे, जो भूत-प्रेत को पूजते हैं, वे भूतों-प्रेतों के बीच उत्पन्न होंगे और जो मेरी पूजा करते हैं, वे मेरे साथ रहेंगे।"

भगवद्धाम में केवल भक्तों को प्रवेश करने दिया जाता है, देवताओं के पूजकों, कर्मियों, योगियों या अन्यों को नहीं। जो व्यक्ति स्वर्गीय ग्रहों में जाना चाहता है, वह अनेक देवताओं की पूजा करता है और भौतिक प्रकृति प्रसन्न होकर ऐसे भक्तों को वांछित पद प्रदान कर सकती है। भौतिक प्रकृति हर व्यक्ति को अपना स्वभाव प्रदान करती है, जिससे वह विविध देवताओं के प्रति श्रद्धा को बढ़ाता है। किन्तु *भगवद्गीता* (७.२०) में कहा गया है कि देवताओं की पूजा उन लोगों के लिए है, जिनकी बुद्धि नष्ट हो चुकी है :

कामैस्तैस्तैर्हृत ज्ञाना: प्रपद्यन्तेऽन्य देवता: ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियता: स्वया ॥

"जिनकी बुद्धि भौतिक इच्छाओं से विकृत हो चुकी है, वे देवताओं की शरण में जाते हैं और वे अपने अपने स्वभावों के अनुसार पूजा की विधियों का पालन करते हैं।"

कोई भले ही स्वर्गलोक क्यों न चला जाए, किन्तु ऐसे वर के परिणाम सीमित होते हैं :

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥

"अल्प बुद्धि वाले लोग देवताओं की पूजा करते हैं और उनके फल सीमित तथा नश्वर होते हैं। जो लोग देवताओं को पूजते हैं, वे देवताओं के ग्रहों को जाते हैं, किन्तु मेरे भक्त अन्ततः मेरे परम धाम पहुँचते हैं।" (*भगवद्गीता* ७.२३)

स्वर्गलोक या किसी अन्य भौतिक लोक पहुँचने का अर्थ यह नहीं है कि ज्ञान तथा आनन्द से युक्त शाश्वत जीवन की प्राप्ति हो गई है। भौतिक जगत् का अन्त होने पर ये सारी भौतिक उपलब्धियाँ भी समाप्त हो जायेंगी। *भगवद्गीता* (१८.५५) में कृष्ण के कहने के अनुसार जो लोग कृष्ण की

प्रेमाभक्ति में रत होते हैं, वे ही वैकुण्ठ लोक में प्रवेश कर सकते हैं और भगवान् के पास जा सकते हैं, अन्य लोग नहीं :

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

"केवल भक्ति द्वारा मुझे, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को यथारूप में समझा जा सकता है। जब मनुष्य ऐसी भक्ति से मुझे पूरी तरह जान लेता है, तभी वह भगवद्धाम में प्रवेश कर सकता है।"

चूँकि निर्विशेषवादी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को नहीं समझ सकते, अतएव उनके लिए भगवान् के आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश कर पाना और भगवान् के पास वापस जा पाना सम्भव नहीं है। वास्तव में, विभिन्न साधनों से भिन्न-भिन्न परिणाम प्राप्त होते हैं। ऐसा नहीं है कि सारी उपलब्धियाँ एक जैसी ही हों। जो लोग धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष में रुचि रखते हैं, उनकी तुलना भगवान् की अनन्य भक्ति में रुचि रखने वालों से नहीं की जा सकती। इसीलिए *श्रीमद्भागवत* (१.१.२) में कहा गया है :

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।
श्रीमद्भागवते महामुनि कृते किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥

"भौतिक स्वार्थों से युक्त सारे धार्मिक कृत्यों का बहिष्कार करते हुए यह *भागवत पुराण* सर्वोच्च सत्य की स्थापना करता है, जो शुद्ध हृदय वाले भक्तों की समझ में आने वाला है। यह सर्वोच्च सत्य सभी जीवों के कल्याण के लिए वास्तविक सत्य को मोह (भ्रम) से अलग करता है। ऐसा सत्य तीनों कष्टों का समूल नाश करता है। महामुनि श्री व्यासदेव द्वारा संकलित यह सुन्दर *भागवत* अपने आप में भगवत्-साक्षात्कार के लिए पर्याप्त है। ज्योंही कोई व्यक्ति ध्यानपूर्वक तथा विनीत भाव से *भागवत* के सन्देश को सुनता है, त्योंही वह भगवान् के प्रति अनुरक्त हो जाता है।"

मुक्ति की इच्छा रखने वाले निर्विशेष ब्रह्म में लीन होने का प्रयास करते हैं। इसी उद्देश्य से वे धार्मिक अनुष्ठान करते हैं, किन्तु *श्रीमद्भागवत* इसे

धोखेबाजी मानता है। ऐसे लोग स्वप्न में भी भगवद्धाम वापस जाने की बात नहीं सोच सकते। धर्म अर्थ, काम तथा मोक्ष के उद्देश्य और भक्ति के उद्देश्य में बहुत अन्तर है।

देवी दुर्गा भौतिक तत्त्वों से बने इस भौतिक जगत् की अध्यक्षा हैं। सारे देवता विविध निर्देशक हैं, जो भौतिक कार्यकलापों के विभागों के संचालन में लगे हुए हैं और वे भी उसी भौतिक शक्ति के अधीन हैं। किन्तु कृष्ण की अन्तरंगा शक्तियों को इस विराट् जगत् की सृष्टि से कुछ भी लेना-देना नहीं रहता। आध्यात्मिक जगत् तथा सारे आध्यात्मिक कार्यकलाप अन्तरंगा शक्ति अर्थात् आध्यात्मिक शक्ति के निर्देशन में रहते हैं और ऐसे कार्यकलाप *योगमाया* अर्थात् आध्यात्मिक शक्ति द्वारा सम्पन्न होते हैं। यह योगमाया पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आध्यात्मिक अथवा अन्तरंगा शक्ति है। जो लोग आध्यात्मिक जगत् में उन्नति प्राप्त करने में रुचि रखते हैं और भगवान् की सेवा में लगे रहना चाहते हैं, उन्हें योगमाया के अधीन आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त होती है। जो लोग भौतिक उन्नति चाहते हैं, वे इन्द्रियतृप्ति का विकास करने के लिए धार्मिक अनुष्ठान तथा आर्थिक विकास में जुटे रहते हैं। अन्ततोगत्वा वे भगवान् के निर्विशेष पहलू में समा जाने का प्रयास करते हैं। ऐसे लोग सामान्यतया निर्विशेषवादी बन जाते हैं। वे शिवजी या देवी दुर्गा की पूजा में रुचि दिखाते हैं, किन्तु उनका फल शतप्रतिशत भौतिकतावादी होता है।

कभी-कभी गोपियों का उदाहरण सामने रखकर भक्त देवी कात्यायनी की पूजा करते हैं, किन्तु वे उन्हें योगमाया का अवतार समझते हैं। गोपियों ने कात्यायनी, योगमाया की पूजा कृष्ण को पति-रूप में प्राप्त करने के लिए की थी। इसके विपरीत *सप्त-शती* में उल्लेख है कि सुरथ नामक एक क्षत्रिय राजा तथा समाधि नामक एक धनी वैश्य ने दुर्गा के रूप में भौतिक प्रकृति की पूजा की थी, जिससे उन्हें भौतिक सिद्धि प्राप्त हो सके। जो कोई योगमाया तथा महामाया को एक समझते हुए दोनों की पूजा की खिचड़ी बनाने का प्रयास करता है, वह बुद्धिमानी का परिचय नहीं देता। सारी वस्तुएँ एक हैं, यह सोचना एक प्रकार की मूर्खता है, जो कम बुद्धि वाले लोग ही सोचते हैं। मूर्ख तथा धूर्त ही कहेंगे कि योगमाया की पूजा तथा महामाया की पूजा एक है। यह

निष्कर्ष मनोकल्पना की उपज मात्र है और इसमें व्यावहारिकता नहीं है। भौतिक जगत् में कभी-कभी अत्यन्त व्यर्थ की वस्तुओं को भी ऊँची उपाधि दे दी जाती है। बंगाल में यह किसी अन्धे बच्चे का नाम पद्मलोचन रख देना कहलाता है। अन्धे बालक को पद्मलोचन कहना मूर्खता होगी और ऐसा करने का कोई अर्थ नहीं होता।

आध्यात्मिक जगत् में भगवान् सदैव अपने नाम, यश, रूप, गुण तथा लीलाओं से अभिन्न होते हैं। किन्तु भौतिक जगत् में ऐसी अभिन्नता असम्भव है, जहाँ व्यक्ति का नाम स्वयं व्यक्ति से भिन्न होता है। भगवान् के अनेक पवित्र नाम हैं यथा परमात्मा, ब्रह्म तथा स्रष्टा; किन्तु जो व्यक्ति स्रष्टा के रूप में भगवान् की पूजा करता है, वह पाँच दिव्य रसों के अन्तर्गत भक्त तथा भगवान् के सम्बन्ध को नहीं समझ सकता, न ही वह कृष्ण तत्त्व को समझ सकता है। कोई भी व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को मात्र निर्विशेष ब्रह्म के रूप में जानकर उनके छः ऐश्वर्यों को नहीं समझ सकता।

परम सत्य की निर्विशेष अनुभूति अवश्य ही दिव्य है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि जिसने यह अनुभूति प्राप्त कर ली है, वह भगवान् के सच्चिदानन्द स्वरूप को समझ सकता है। इसी तरह प्रत्येक जीव के हृदय में परम सत्य के पूर्ण विस्तार के रूप में विराजमान परमात्मा की अनुभूति भी परम सत्य की अपूर्ण जानकारी है। यहाँ तक कि भगवान् नारायण का भक्त भी वास्तव में कृष्ण के दिव्य आकर्षक स्वरूप को नहीं समझ सकता। निस्सन्देह, भगवान् के दिव्य सर्वाकर्षक स्वरूप से अनुरक्त कृष्ण-भक्त नारायण को भी अधिक महत्त्व नहीं देता। जब कभी गोपियों ने कृष्ण को नारायण रूप में देखा, तो वे उनके प्रति अधिक आकृष्ट नहीं हुईं। गोपियों ने कृष्ण को कभी भी रुक्मिणीरमण कहकर नहीं पुकारा। वृन्दावन में कृष्ण-भक्त उन्हें राधारमण, नन्दनन्दन तथा यशोदानन्दन के नाम से पुकारते हैं, किन्तु वसुदेवनन्दन या देवकीनन्दन के नाम से नहीं। यद्यपि भौतिक विचार से नारायण, रुक्मिणी-रमण तथा कृष्ण एक हैं, किन्तु आध्यात्मिक जगत् में कृष्ण के स्थान पर रुक्मणी-रमण या नारायण का नाम प्रयोग नहीं किया जा सकता। यदि कोई मूर्खतावश ऐसा करता है, तो भगवान् के प्रति उसका रस दूषित हो जाता है और वह

रसाभास कहलाता है। उन्नत भक्त, जिसे भगवान् के दिव्य स्वरूप की अनुभूति हो चुकी है, कभी भी एक नाम के स्थान पर दूसरे नाम का प्रयोग करके रसाभास की स्थिति उत्पन्न करने की भूल नहीं करता। कलियुग के प्रभाव के कारण दिखावे और उदारता के नाम पर रसाभास का ही बोलबाला है। शुद्ध भक्त ऐसे पागलपन की सराहना नहीं करते।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥९१॥

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ ९१ ॥

ये—वे; **यथा**—जैसे; **माम्**—मेरी; **प्रपद्यन्ते**—शरण में आते हैं; **तान्**—उनको; **तथा एव**—उसी अनुपात में; **भजामि**—अपनी कृपा प्रदान करता हूँ; **अहम्**—मैं; **मम**—मेरे; **वर्त्म**—मार्ग; **अनुवर्तन्ते**—का अनुकरण करते हैं; **मनुष्याः**—मनुष्य; **पार्थ**—हे अर्जुन; **सर्वशः**—सभी तरह।

अनुवाद

"[भगवद्गीता (४.११) में भगवान् कृष्ण के अनुसार :] 'जिस भाव से सभी लोग मेरी शरण में आते हैं, उसी के अनुरूप मैं उन्हें फल प्रदान करता हूँ। हे पृथा-पुत्र, हर व्यक्ति सभी प्रकार से मेरे पथ का अनुसरण करता है।'

এই 'প্রেমে'র অনুরূপ না পারে ভজিতে ।
অতএব 'ঋণী' হয়—কহে ভাগবতে ॥৯২॥

এइ 'प्रेमे'र अनुरूप ना पारे भजिते ।
अतएव 'ऋणी' हय—कहे भागवते ॥ ९२ ॥

एइ—इस; **प्रेमेर**—भगवत्-प्रेम के; **अनुरूप**—अनुसार; **ना**—नहीं; **पारे**—दे सकते; **भजिते**—प्रतिदान देना; **अतएव**—अतएव; **ऋणी**—ऋणी; **हय**—हो जाते हैं; **कहे**—कहा गया है; **भागवते**—*श्रीमद्भागवत* में।

अनुवाद

" श्रीमद्भागवत (१०.३२.२२) में कहा गया है कि भगवान् कृष्ण

माधुर्य रस में भक्ति का आदान-प्रदान समान अनुपात में नहीं कर पाते, अतएव वे ऐसे भक्तों के सदैव ऋणी रहते हैं।

न पारयेऽहं निरवद्य-संयुजां
स्व-साधु-कृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या माभजन्दुर्जय-गेह-शृङ्खलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥९३॥

न पारयेऽहं निरवद्य-संयुजां
स्व-साधु-कृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या माभजन्दुर्जय-गेह-शृङ्खलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥९३॥

न—नहीं; **पारये**—सकता हूँ; **अहम्**—मैं; **निरवद्य**—बिना कपट के; **संयुजाम्**—मिलन; **स्व-साधु-कृत्यम्**—तुम्हारी अपनी निष्कपट गतिविधियाँ; **विबुध-आयुषा अपि**—देवता की जीवन अवधि में भी; **वः**—तुम; **या**—जिन्होंने; **मा**—मेरी; **अभजन्**—पूजा की है; **दुर्जय**—कठिनता से जीते जाने वाला; **गेह**—गृहस्थ जीवन; **शृङ्खलाः**—जंजीर; **संवृश्च्य**—काटकर; **तत्**—वह; **वः**—तुम्हारी; **प्रतियातु**—पुरस्कार हो; **साधुना**—पवित्र गतिविधियों से।

अनुवाद

"जब गोपियाँ कृष्ण से रासलीला में उनकी अनुपस्थिति के कारण असन्तुष्ट होकर विह्वल थीं, तभी कृष्ण वापस आ गये और उन्होंने उनसे कहा, 'हे गोपियों, हमारा मिलन निस्सन्देह समस्त भौतिक कल्मष से मुक्त है। मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं तुम सबके ऋण को अनेक जन्मों में भी नहीं चुका सकूँगा, क्योंकि तुम लोगों ने मुझे ढूँढ़ने के लिए अपने पारिवारिक बन्धनों को तोड़ डाला है। अतएव मैं ऋण चुकाने में असमर्थ हूँ। फलतः तुम लोग इस सम्बन्ध में किये गये अपने नेक कार्यों से सन्तुष्ट हो जाओ।'

যদ্যপি কৃষ্ণ-সৌন্দর্য—মাধুর্যের ধুর্য ।
ব্রজ-দেবীর সঙ্গে তাঁর বাড়য়ে মাধুর্য ॥৯৪॥

यद्यपि कृष्ण-सौन्दर्य—माधुर्येर धुर्य ।
व्रज-देवीर सङ्गे ताँर बाड़ये माधुर्य ॥ ९४॥

यद्यपि—यद्यपि; **कृष्ण-सौन्दर्य**—भगवान् कृष्ण का सौंदर्य; **माधुर्येर**—मधुरता; **धुर्य**—सर्वोत्तम; **व्रज-देवीर**—गोपियों की; **सङ्गे**—संगति में; **ताँर**—उनकी; **बाड़ये**—बढ़ जाती है; **माधुर्य**—मधुरता।

अनुवाद

"यद्यपि कृष्ण का अप्रतिम सौन्दर्य भगवत्प्रेम का सर्वोच्च माधुर्य है, किन्तु जब वे गोपियों के संग में होते हैं, तब उनका माधुर्य असीम रूप से बढ़ जाता है। फलस्वरूप गोपियों के साथ कृष्ण द्वारा प्रेम का आदान-प्रदान भगवत्प्रेम की चरम पूर्णता है।

तात्पर्य

भगवान् के माधुर्य रस में कृष्ण तथा उनके भक्तों में पूरी घनिष्ठता रहती है। अन्य रसों में भगवान् तथा भक्त इतनी पूर्णता से दिव्य आनन्द का भोग नहीं करते। अगले श्लोक में, जो *श्रीमद्भागवत* (१०.३३.६) से है, इस श्लोक की पूरी व्याख्या हो जाती है।

তত্রাতিশুশুভে তাভির্ভগবান্দেবকী-সুতঃ ।
মধ্যে মণীনাং হৈমানাং মহা-মরকতো যথা ॥৯৫॥

तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान्देवकी-सुतः ।
मध्ये मणीनां हैमानां महा-मरकतो यथा ॥ ९५ ॥

तत्र—वहाँ; **अति-शुशुभे**—अत्यन्त सुन्दर थे; **ताभिः**—उनसे; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **देवकी-सुतः**—देवकी पुत्र; **मध्ये**—के मध्य में; **मणीनाम्**—अमूल्य मणियों का; **हैमानाम्**—सोने में जड़ा; **महा-मरकतः**—मरकट नामक मणि; **यथा**—जैसे।

अनुवाद

"'यद्यपि देवकी-पुत्र भगवान् समस्त सौन्दर्य के आगार हैं, किन्तु जब वे गोपियों के बीच होते हैं, तब वे और भी अधिक सुन्दर लगते हैं, क्योंकि वे सोने तथा अन्य मणियों से घिरे हुए मरकत मणि जैसे लगते हैं।'"

প্রভু কহে,—এই 'সাধ্যাবধি' সুনিশ্চয় ।
কৃপা করি' কহ, যদি আগে কিছু হয় ॥৯৬॥

প্রভু কহে,—এই 'সাধ্যাবধি' সুনিশ্চয় ।
কৃপা করি' কহ, যদি আগে কিছু হয় ॥ ৯৬ ॥

প্রভু কহে—শ্রী চৈতন্য মহাপ্রভু ने कहा; **এই**—यह; **সাধ্য-অবধি**—पूर्णता की चरमसीमा; **সু-নিশ্চয়**—निश्चित रूप से; **কৃপা করি'**—मुझ पर कृपा करके; **কহ**—कहो; **যদি**—यदि; **আগে**—आगे; **কিছু হয়**—कुछ है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "यह निश्चय ही पूर्णता की सीमा है, किन्तु आप मुझ पर कृपा करें और यदि कुछ और हो तो उसे कहें।"

রায় কহে,—ইহার আগে পুছে হেন জনে ।
এত-দিন নাহি জানি, আছয়ে ভুবনে ॥৯৭॥

রায় কহে,—ইহার আগে পুছে হেন জনে ।
এত-দিন নাহি জানি, আছয়ে ভুবনে ॥ ৯৭ ॥

রায় কহে—रामानन्द राय ने उत्तर दिया; **ইহার আগে**—इस बिन्दु से आगे; **পুছে**—पूछता है; **হেন**—ऐसा; **জনে**—एक व्यक्ति; **এত-দিন**—आज तक; **নাহি জানি**—मैं नहीं जानता था; **আছয়ে**—है; **ভুবনে**—इस भौतिक जगत् में।

अनुवाद

रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "आज तक मैं इस भौतिक संसार में ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं जानता था, जो भक्ति की इस पूर्ण अवस्था के आगे क्या है, इसके बारे में पूछ सके।

ইঁহার মধ্যে রাধার প্রেম—'সাধ্য-শিরোমণি' ।
যাঁহার মহিমা সর্ব-শাস্ত্রেতে বাখানি ॥৯৮॥

ইঁহার মধ্যে রাধার প্রেম—'সাধ্য-শিরোমণি' ।
যাঁহার মহিমা সর্ব-শাস্ত্রেতে বাখানি ॥ ৯৮ ॥

ইঁহার মধ্যে—गोपियों के प्रेम व्यवहार में; **রাধার প্রেম**—श्रीमती राधारानी का भगवत्प्रेम;

साध्य-शिरोमणि—सर्वोच्च पूर्णता; **याँहार**—जिसकी; **महिमा**—महिमा; **सर्व-शास्त्रेते**—प्रत्येक शास्त्र में; **वाखानि**—वर्णन।

अनुवाद

रामानन्द राय कहते गये, "गोपियों के प्रेम व्यापार में से कृष्ण के प्रति श्रीमती राधारानी का प्रेम सर्वोपरि है। निस्सन्देह, श्रीमती राधारानी की महिमा का बखान सभी प्रामाणिक शास्त्रों में उच्च स्तर पर हुआ है।

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा ।
सर्व-गोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्त-वल्लभा ॥९९॥

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा ।
सर्व-गोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्त-वल्लभा ॥ ९९ ॥

यथा—जैसे; **राधा**—श्रीमती राधारानी; **प्रिया**—अत्यन्त प्रिय; **विष्णोः**—भगवान् कृष्ण को; **तस्याः**—उनके; **कुण्डम्**—स्नान की जगह (राधाकुण्ड); **प्रियम्**—अत्यन्त प्रिय; **तथा**—वैसे ही; **सर्व-गोपीषु**—सभी गोपियों में; **सा**—वह (राधारानी); **एव**—निश्चित रूप से; **एका**—अकेली; **विष्णोः**—भगवान् कृष्ण को; **अत्यन्त-वल्लभा**—अत्यन्त प्रिय है।

अनुवाद

"'जिस तरह श्रीमती राधारानी श्रीकृष्ण को परम प्रिय हैं, उसी तरह उनका स्नान-स्थान राधाकुण्ड भी उन्हें प्रिय है। सारी गोपियों में श्रीमती राधारानी सर्वोच्च हैं और कृष्ण को अत्यन्त प्रिय हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *पद्मपुराण* से लिया गया है और श्रील रूप गोस्वामी कृत *लघु भागवतामृत* (२.१.४५) में समाविष्ट है। यह आदिलीला, चतुर्थ अध्याय, श्लोक २१५ एवं मध्यलीला, अष्टादश अध्याय, श्लोक ८ में भी दृष्टिगत होता है।

अनयाराधितो नूनं भगवान्हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः ॥१००॥

अनयाराधितो नूनं भगवान्हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः ॥ १०० ॥

अनया—उसके द्वारा; **आराधितः**—पूजित; **नूनम्**—निस्सन्देह; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **हरिः**—कृष्ण; **ईश्वरः**—भगवान्; **यत्**—जिससे; **नः**—हमें; **विहाय**—त्यागकर; **गोविन्दः**—भगवान् श्रीकृष्ण; **प्रीतः**—सन्तुष्ट; **याम्**—जिसको; **अनयत्**—लाये; **रहः**—एकान्त स्थान।

अनुवाद

"[गोपियों ने परस्पर बातें करते हुए कहा :]'हे सखियों, जिस गोपी को कृष्ण अपने साथ एकान्त स्थल में ले गये हैं, उसने भगवान् की पूजा दूसरे सब की अपेक्षा अधिक की होगी।'"

तात्पर्य

राधा नाम इस श्लोक के *अनयाराधितः* शब्द से (*भागवत* १०.३०.२८) बना है, जिसका अर्थ है, "उनके द्वारा भगवान् की पूजा की जाती है।" कभी-कभी *श्रीमद्भागवत* के आलोचकों को उस ग्रन्थ में राधारानी का पवित्र नाम नहीं मिलता, किन्तु उस रहस्य का खुलासा यहाँ *आराधितः* शब्द से होता है, जिससे *राधा* नाम आया है। निस्सन्देह राधारानी का नाम प्रत्यक्ष रूप से अन्य पुराणों में मिलता है। इस गोपी द्वारा की गई कृष्ण की पूजा सर्वोपरि है, अतएव उनका नाम राधा अर्थात् "सर्वोच्च आराधिका" है।

प्रभु कहे—आगे कह, शुनिते पाइ सुखे ।
अपूर्वामृत-नदी बहे तोमार मुखे ॥१०१॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **आगे**—आगे; **कह**—कृपया कहो; **शुनिते**—सुनने से; **पाइ**—मैं पाता हूँ; **सुखे**—सुख; **अपूर्व-अमृत**—अपूर्व अमृत; **नदी**—नदी; **बहे**—बहती है; **तोमार मुखे**—आपके मुख से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "बोलते जाइये। मुझे आपकी बातें सुनकर परम सुख हो रहा है, क्योंकि आपके मुख से अद्वितीय अमृत की नदी बह रही है।

চুরি করি' রাধাকে নিল গোপী-গণের ডরে ।
অন্যাপেক্ষা হৈলে প্রেমের গাঢ়তা না স্ফুরে ॥১০২॥

चुरि करि' राधाके निल गोपी-गणेर डरे ।
अन्यापेक्षा हैले प्रेमेर गाढ़ता ना स्फुरे ॥ १०२॥

चुरि करि'—चुराकर; **राधाके**—श्रीमती राधारानी को; **निल**—ले गये; **गोपी-गणेर**—गोपियों के; **डरे**—डर से; **अन्य-अपेक्षा**—अन्यों पर निर्भर; **हैले**—यदि है; **प्रेमेर**—प्रेम की; **गाढ़ता**—गहराई; **ना**—नहीं; **स्फुरे**—प्रकट होती है।

अनुवाद

"श्रीकृष्ण ने रासनृत्य के समय अन्य गोपियों की उपस्थिति के कारण श्रीमती राधारानी से प्रेम का आदान-प्रदान नहीं किया। अन्यों पर आश्रित होने के कारण राधा तथा कृष्ण के प्रेम की प्रगाढ़ता प्रकट नहीं हो पाई। इसीलिए वे उन्हें चुरा ले गये।

तात्पर्य

अन्य गोपियों के भय से भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमती राधारानी को एकान्त स्थान में ले गये। इस सम्बन्ध में *कंसारिरपि* (इस अध्याय का श्लोक १०६) श्लोक जयदेव गोस्वामी के *गति गोविन्द* से उद्धृत किया जायेगा।

রাধা লাগি' গোপীরে যদি সাক্ষাৎকরে ত্যাগ ।
তবে জানি,—রাধায় কৃষ্ণের গাঢ়-অনুরাগ ॥১০৩॥

राधा लागि' गोपीरे यदि साक्षात्करे त्याग ।
तबे जानि,—राधाय कृष्णेर गाढ़-अनुराग ॥ १०३॥

राधा लागि'—श्रीमती राधारानी के लिए; **गोपीरे**—गोपियाँ; **यदि**—यदि; **साक्षात्**—साक्षात्; **करे**—करते हैं; **त्याग**—त्याग; **तबे**—तब; **जानि**—हम समझ सकते हैं; **राधाय**—श्रीमती राधारानी में; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण का; **गाढ़**—गाढ़; **अनुराग**—प्रेम।

अनुवाद

"यदि भगवान् कृष्ण ने राधारानी के लिए अन्य गोपियों का साथ त्याग दिया, तो हम यह समझ सकते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण में उनके लिए प्रगाढ़ स्नेह है।"

রায় কহে,——তবে শুন প্রেমের মহিমা ।
ত্রি-জগতে রাধা-প্রেমের নাহিক উপমা ॥ ১০৪ ॥

রায় কহে,——তবে শুন প্রেমের মহিমা ।
ত্রি-জগতে রাধা-প্রেমের নাহিক উপমা ॥ ১০৪ ॥

রায় কহে—रामानन्द राय ने उत्तर दिया; **তবে**—तब; **শুন**—सुनो; **প্রেমের**—उस प्रेम की; **মহিমা**—महिमा; **ত্রি-জগতে**—तीनों जगतों में; **রাধা-প্রেমের**—श्रीमती राधारानी के प्रेमाचार की; **নাহিক**—नहीं है; **উপমা**—उपमा।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे कहा, "अतएव आप मुझसे श्रीमती राधारानी के प्रेम की महिमा सुनें। तीनों लोकों में उसकी तुलना के योग्य अन्य कोई नहीं है।

গোপী-গণের রাস-নৃত্য-মণ্ডলী ছাড়িয়া ।
রাধা চাহি' বনে ফিরে বিলাপ করিয়া ॥ ১০৫ ॥

গোপী-গণের রাস-নৃত্য-মণ্ডলী ছাড়িয়া ।
রাধা চাহি' বনে ফিরে বিলাপ করিয়া ॥ ১০৫ ॥

গোপী-গণের—गोपियों की; **রাস-নৃত্য**—रास-नृत्य की; **মণ্ডলী**—मण्डली; **ছাড়িয়া**—छोड़कर; **রাধা**—श्रीमती राधारानी; **চাহি'**—चाहते हुए; **বনে**—वन में; **ফিরে**—घूमती है; **বিলাপ**—विलाप; **করিয়া**—करते हुए।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी ने जब यह देखा कि उनके साथ अन्य गोपियों जैसा व्यवहार हो रहा है, तो उन्होंने चाल चली और रासनृत्य के मण्डल (वृत्त) को छोड़ दिया। श्रीमती राधारानी को न पाकर कृष्ण दुःखी हुए और विलाप करते हुए उनकी खोज में सारे वन में घूमने लगे।

কংসারিরপি সংসার-বাসনা-বদ্ধ-শৃঙ্খলাম্ ।
রাধামাধায় হৃদয়ে তত্যাজ ব্রজ-সুন্দরীঃ ॥ ১০৬ ॥

কংসারিরপি সংসার-বাসনা-বদ্ধ-শৃঙ্খলাম্ ।
রাধামাধায় হৃদয়ে তত্যাজ ব্রজ-সুন্দরীঃ ॥ ১০৬ ॥

कंस-अरिः—कंस के शत्रु, कृष्ण; **अपि**—भी; **संसार-वासना**—रासलीला का आनन्द लेने के इच्छुक; **बद्ध-शृङ्खलाम्**—ऐसे कार्यकलापों की ओर पूर्णरूपेण आकृष्ट होकर; **राधाम्**—श्रीमती राधारानी को; **आधाय**—लेकर; **हृदये**—हृदय में; **तत्याज**—एक ओर चले गये; **व्रज-सुन्दरीः**—अन्य सुन्दर गोपियों को।

अनुवाद

"'कंस के शत्रु भगवान् कृष्ण ने श्रीमती राधारानी को अपने हृदय में बसा लिया, क्योंकि वे उनके साथ नृत्य करना चाहते थे। इस तरह उन्होंने रासनृत्य के क्षेत्र को तथा व्रज की अन्य सुन्दरियों का साथ छोड़ दिया।

इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिकाम्
अनङ्ग-बाण-व्रण-खिन्न-मानसः ।
कृतानुतापः स कलिन्द-नन्दिनी
तटान्त-कुञ्जे विषसाद माधवः ॥१०७॥

इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिकाम्
अनङ्ग-बाण-व्रण-खिन्न-मानसः ।
कृतानुतापः स कलिन्द-नन्दिनी
तटान्त-कुञ्जे विषसाद माधवः ॥१०७॥

इतः ततः—इधर उधर; **ताम्**—उनको; **अनुसृत्य**—ढूंढकर; **राधिकाम्**—श्रीमती राधारानी; **अनङ्ग**—कामदेव के; **बाण-व्रण**—बाण के घाव के; **खिन्न-मानसः**—जिसका हृदय घायल हो गया हो; **कृत-अनुतापः**—दुर्व्यवहार पर पछताते हुए; **सः**—वे (भगवान् कृष्ण); **कलिन्द-नन्दिनी**—यमुना नदी के; **तट-अन्त**—तट पर; **कुञ्जे**—कुंजों में; **विषसाद**—खेद करने लगे; **माधवः**—भगवान् कृष्ण।

अनुवाद

"'कामदेव के बाणों से विद्ध होकर तथा राधारानी के साथ किये गये दुर्व्यवहार से दुःखी होकर माधव, भगवान् कृष्ण, श्रीमती राधारानी को यमुना नदी के किनारे-किनारे खोजने लगे। किन्तु जब वे उन्हें नहीं खोज सके, तो वे वृन्दावन के कुंजों में प्रवेश करके विलाप करने लगे।'

तात्पर्य

उपर्युक्त दोनों श्लोक जयदेव गोस्वामी कृत *गीत गोविन्द* (३.१-२) से लिये गये हैं।

এই দুই-শ্লোকের অর্থ বিচারিলে জানি ।
বিচারিতে উঠে যেন অমৃতের খনি ॥ ১০৮ ॥

এइ দুइ-শ্লোকের অর্থ বিচারিলে জানি ।
বিচারিতে উঠে যেন অমৃতের খনি ॥ ১০৮ ॥

এइ—ये; **দুइ**—दोनों; **শ্লোকের**—श्लोकों का; **অর্থ**—अर्थ; **বিচারিলে**—विचारने पर; **জানি**—मैं समझ सकता हूँ; **বিচারিতে**—विचार करते समय; **উঠে**—उठता है; **যেন**—की तरह; **অমৃতের**—अमृत की; **খনি**—खान।

अनुवाद

"केवल इन्हीं दो श्लोकों पर विचार करने से समझा जा सकता है कि ऐसे प्रेम-व्यापारों में कितना अमृत है। यह तो वैसा ही है जैसे अमृत की खान को खुला छोड़ दिया जाए।

শত-কোটি গোপী-সঙ্গে রাস-বিলাস ।
তার মধ্যে এক-মূর্ত্যে রহে রাধা-পাশ ॥ ১০৯ ॥

শত-কোটি গোপী-সঙ্গে রাস-বিলাস ।
তার মধ্যে এক-মূর্ত্যে রহে রাধা-পাশ ॥ ১০৯ ॥

শত-কোটি—लाखों; **গোপী-সঙ্গে**—गोपियों के साथ; **রাস-বিলাস**—रासलीला में नाचते हुए; **তার মধ্যে**—उनके बीच; **এক-মূর্ত্যে**—उनके दिव्य रूपों में से एक; **রহে**—रहते हैं; **রাধা-পাশ**—श्रीमती राधारानी के पास।

अनुवाद

"यद्यपि रासनृत्य के समय श्रीकृष्ण लाखों गोपियों के बीच में थे, किन्तु तो भी उन्होंने अपने आपको अनेकों में से एक दिव्य रूप में श्रीमती राधारानी की बगल में रखा।

সাধারণ-প্রেমে দেখি সর্বত্র 'সমতা' ।
রাধার কুটিল-প্রেমে হইল 'বামতা' ॥ ১১০ ॥

সাধারণ-প্রেমে দেখি সর্বত্র 'সমতা' ।
রাধার কুটিল-প্রেমে হইল 'বামতা' ॥ ১১০ ॥

साधारण-प्रेमे—भगवान् के साधारण प्रेम में; **देखि**—हम देखते हैं; **सर्वत्र**—हर स्थान पर; **समता**—समता; **राधार**—श्रीमती राधारानी के; **कुटिल-प्रेमे**—ईश्वर के कुटिल प्रेम में; **हइल**—था; **वामता**—विरोधी तत्त्व।

अनुवाद

"यद्यपि भगवान् कृष्ण अपने सामान्य व्यवहार में सबके प्रति समभाव रखते हैं, किन्तु श्रीमती राधारानी के कुटिल प्रेमभाव के कारण विरोधी तत्त्व उपस्थित हो गये।

अहेरिव गतिः प्रेम्णः स्वभाव-कुटिला भवेत् ।
अतो हेतोरहेतोश्च यूनोर्मान उदञ्चति ॥१११॥

अहेरिव गतिः प्रेम्णः स्वभाव-कुटिला भवेत् ।
अतो हेतोरहेतोश्च यूनोर्मान उदञ्चति ॥१११॥

अहेः—साँप की; **इव**—तरह; **गतिः**—चाल; **प्रेम्णः**—प्रेमाचार की; **स्वभाव**—स्वभाव से; **कुटिला**—कुटिल; **भवेत्**—होती है; **अतः**—अतः; **हेतोः**—किस कारण से; **अहेतोः**—कारण की अनुपरिस्थिति से; **च**—और; **यूनोः**—युवा दम्पति का; **मानः**—क्रोध; **उदञ्चति**—प्रकट हो जाता है।

अनुवाद

"'तरुण युवक तथा तरुण युवती के मध्य प्रेम की प्रगति साँप की गति जैसी होती है। इसके फलस्वरूप तरुण युगलों में दो प्रकार का क्रोध उत्पन्न होता है—एक तो हेतु सहित क्रोध और दूसरे हेतु रहित क्रोध।'

तात्पर्य

रासनृत्य के समय प्रत्येक दो गोपियों के बीच कृष्ण का एक रूप था। किन्तु श्रीमती राधारानी के बगल में केवल एक कृष्ण थे। इतना होने पर भी श्रीमती राधारानी कृष्ण से असहमति प्रकट कर रही थी। यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत *उज्ज्वल नीलमणि* (शृंगार-भेद-कथन १०२) से लिया गया है।

क्रोध करि' रास छाड़ि' गेला मान करि' ।
ताँरे ना देखिया व्याकुल हैल श्री-हरि ॥११२॥

क्रोध करि' रास छाड़ि' गेला मान करि' ।
ताँरे ना देखिया व्याकुल हैल श्री-हरि ॥११२॥

क्रोध करि'—क्रोध करके; **रास छाड़ि'**—रास-नृत्य छोड़कर; **गेला**—चली गईं; **मान करि'**—बुरा मानकर; **ताँरे**—श्रीमती राधारानी को; **ना देखिया**—न देखकर; **व्याकुल**—अत्यन्त व्याकुल; **हैल**—हो गये; **श्री-हरि**—भगवान् कृष्ण।

अनुवाद

"जब श्रीमती राधारानी बुरा मान गईं और क्रुद्ध होकर रासनृत्य से चली गईं, तो उन्हें न देखकर श्रीकृष्ण अत्यन्त व्याकुल हो उठे।

सम्यञ्चार वासना कृष्णेर रास-लीला ।
रास-लीला-वासनाते राधिका शृङ्खला ॥ ११३॥

सम्यक्सार वासना कृष्णेर रास-लीला ।
रास-लीला-वासनाते राधिका शृङ्खला ॥ ११३॥

सम्यक्-सार—पूर्ण और आवश्यक; **वासना**—इच्छा; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण की; **रास-लीला**—रासलीला में नृत्य; **रास-लीला-वासनाते**—की इच्छा से; **राधिका**—श्रीमती राधारानी; **शृङ्खला**—बांधने वाली कड़ी।

अनुवाद

"रासलीला मण्डल में भगवान् कृष्ण की इच्छा सम्यक् रूप से पूर्ण है, किन्तु उस इच्छा को बाँधने वाली कड़ी श्रीमती राधारानी हैं।

ताँहा विनु रास-लीला नाहि भाय चित्ते ।
मण्डली छाड़िया गेला राधा अन्वेषिते ॥ ११४॥

ताँहा विनु रास-लीला नाहि भाय चित्ते ।
मण्डली छाड़िया गेला राधा अन्वेषिते ॥ ११४॥

ताँहा विनु—उनके (राधारानी के) बिना; **रास-लीला**—रासलीला; **नाहि**—नहीं; **भाय**—शोभा देती; **चित्ते**—हृदय में; **मण्डली छाड़िया**—रासलीला का वृत्त छोड़कर; **गेला**—चले गये; **राधा**—श्रीमती राधारानी की; **अन्वेषिते**—खोज में।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी के बिना कृष्ण के हृदय में रासनृत्य में आनन्द नहीं रहता। अतएव उन्होंने भी रासनृत्य मण्डल को छोड़ दिया और वे राधा की खोज में निकल गये।

ইতস্ততঃ ভ্রমি' কাহাঁ রাধা না পাঞা ।
বিষাদ করেন কাম-বাণে খিন্ন হঞা ॥ ১১৫ ॥

ইতস্ততঃ ভ্রমি' কাহাঁ রাধা না পাঞা ।
বিষাদ করেন কাম-বাণে খিন্ন হঞা ॥ ১১৫ ॥

ইতঃ-ততঃ—इधर उधर; **ভ্রমি'**—घूमकर; **কাহাঁ**—कहीं; **রাধা**—श्रीमती राधारानी को; **না**—न; **পাঞা**—पाकर; **বিষাদ**—दुःख; **করেন**—करते हैं; **কাম-বাণে**—कामदेव के बाण से; **খিন্ন**—घायल; **হঞা**—होकर।

अनुवाद

"जब कृष्ण श्रीमती राधारानी की खोज में निकल गये, तो वे इधर-उधर घूमते रहे। किन्तु उन्हें न पाकर वे कामदेव के बाण से खिन्न होकर विलाप करने लगे।

শত-কোটি-গোপীতে নহে কাম-নির্বাপণ ।
তাহাতেই অনুমানি শ্রী-রাধিকার গুণ ॥ ১১৬ ॥

শত-কোটি-গোপীতে নহে কাম-নির্বাপণ ।
তাহাতেই অনুমানি শ্রী-রাধিকার গুণ ॥ ১১৬ ॥

শত-কোটি—लाखों; **গোপীতে**—गोपियों के बीच; **নহে**—नहीं हुई; **কাম-নির্বাপণ**—काम-वासना की तुष्टि; **তাহাতেই**—उसी से; **অনুমানি**—हम अनुमान लगा सकते हैं; **শ্রী-রাধিকার গুণ**—श्रीमती राधारानी के दिव्य गुणों का।

अनुवाद

"चूँकि कृष्ण की काम-वासना लाखों गोपियों के बीच में भी पूरी नहीं हो सकी और इस प्रकार वे श्रीमती राधारानी की खोज कर रहे थे, अतएव हम अनुमान लगा सकते हैं कि राधारानी में कितने दिव्य गुण थे।"

প্রভু কহে—যে লাগি' আইলাম তোমা-স্থানে ।
সেই সব তত্ত্ব-বস্তু হৈল মোর জ্ঞানে ॥ ১১৭ ॥

প্রভু কহে—যে লাগি' আইলাম তোমা-স্থানে ।
সেই সব তত্ত্ব-বস্তু হৈল মোর জ্ঞানে ॥ ১১৭ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **ये लागि'**—इसके कारण; **आइलाम**—मैं आया हूँ; **तोमा-स्थाने**—आपके स्थान पर; **सेइ सब**—वे सब; **तत्त्व-वस्तु**—सत्य की वस्तुएँ; **हैल**—थीं; **मोर**—मेरी; **ज्ञाने**—समझ में।

अनुवाद

यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से कहा, "मैं जिसके लिए आपके निवासस्थान पर आया हूँ, वह तत्त्व-वस्तु अब मेरी समझ में आ चुकी है।

এবে সে জানিলুঁ সাধ্য-সাধন-নির্ণয় ।
আগে আর আছে কিছু, শুনিতে মন হয় ॥ ১১৮॥

এবে সে জানিলুঁ সাধ্য-সাধন-নির্ণয় ।
আগে আর আছে কিছু, শুনিতে মন হয় ॥ ১১৮॥

এবে—अब; **সে**—वह; **জানিলুঁ**—मैं समझ गया हूँ; **সাধ্য**—परम उद्देश्य; **সাধন**—और प्रक्रिया का; **নির্ণয়**—रहस्य; **আগে**—आगे; **আর**—और; **আছে**—है; **কিছু**—कुछ; **শুনিতে**—सुनने के लिए; **মন**—मन; **হয়**—है।

अनुवाद

"अब जाकर मैं जीवन के दिव्य लक्ष्य को और उसे प्राप्त करने की विधि को समझ पाया हूँ। इतने पर भी मैं सोचता हूँ कि अभी और कुछ बाकी है, जिसे पाने के लिए मेरा मन इच्छा रखता है।

'কৃষ্ণের স্বরূপ' কহ 'রাধার স্বরূপ' ।
'রস' কোন্তত্ত্ব, 'প্রেম'—কোন্তত্ত্ব-রূপ ॥ ১১৯॥

'কৃষ্ণের স্বরূপ' কহ 'রাধার স্বরূপ' ।
'রস' কোন্তত্ত্ব, 'প্রেম'—কোন্তত্ত্ব-রূপ ॥ ১১৯॥

কৃষ্ণের—भगवान् कृष्ण का; **স্বরূপ**—दिव्य स्वरूप; **কহ**—कहो; **রাধার**—श्रीमती राधारानी का; **স্বরূপ**—दिव्य स्वरूप; **রস**—रस; **কোন্**—क्या; **তত্ত্ব**—वह सत्य; **প্রেম**—भगवत्प्रेम; **কোন্**—क्या; **তত্ত্ব-রূপ**—वास्तविक रूप।

अनुवाद

"कृपया कृष्ण तथा श्रीमती राधारानी के दिव्य स्वरूप का वर्णन करें। इसके साथ दिव्य रस तथा भगवत्प्रेम का दिव्य स्वरूप भी बतलायें।

कृपा करि' एइ तत्त्व कह त' आमारे ।
तोमा-विना केह इहा निरूपिते नारे ॥ १२० ॥

कृपा करि' एइ तत्त्व कह त' आमारे ।
तोमा-विना केह इहा निरूपिते नारे ॥ १२० ॥

कृपा करि'—अपनी दया दिखाकर; **एइ तत्त्व**—यह सब सत्य; **कह**—कहो; **त'**—निश्चित रूप से; **आमारे**—मुझे; **तोमा-विना**—आपके सिवाय; **केह**—कोई; **इहा**—यह; **निरूपिते**—जानने के लिए; **नारे**—समर्थ नहीं।

अनुवाद

"कृपा करके मुझे इन सारे तत्त्वों को समझा दें। आपके अतिरिक्त इनको कोई और नहीं समझा सकता।"

राय कहे,—इहा आमि किछुइ ना जानि ।
तुमि येइ कहाओ, सेइ कहि आमि वाणी ॥ १२१ ॥

राय कहे,—इहा आमि किछुइ ना जानि ।
तुमि येइ कहाओ, सेइ कहि आमि वाणी ॥ १२१ ॥

राय कहे—रामानन्द राय ने कहा; **इहा**—यह; **आमि**—मैं; **किछुइ**—कुछ; **ना**—नहीं; **जानि**—जानता; **तुमि**—आप; **येइ**—जो कुछ; **कहाओ**—मुझ से कहलवाते हो; **सेइ**—वही; **कहि**—कहता हूँ; **आमि**—मैं; **वाणी**—वाणी।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "मैं इसके विषय में कुछ भी नहीं जानता। मैं तो वही शब्द कह पाता हूँ, जिसे आप मुझसे बुलवाते हैं।

तोमार शिक्षाय पड़ि येन शुक-पाठ ।
साक्षातीश्वर तुमि, के बुझे तोमार नाट ॥ १२२ ॥

तोमार शिक्षाय पड़ि ग्रेन शुक-पाठ ।
साक्षातीश्वर तुमि, के बुझे तोमार नाट ॥ १२२॥

तोमार शिक्षाय—आपके आदेश से; **पड़ि**—मैं पढ़ता हूँ; **ग्रेन**—की भाँति; **शुक-पाठ**—तोते के पाठ; **साक्षात्**—साक्षात्; **ईश्वर**—पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; **तुमि**—आपको; **के**—कौन; **बुझे**—समझ सकता है; **तोमार**—आपके; **नाट**—नाटकीय प्रदर्शन।

अनुवाद

"मैं तो आपके द्वारा दी गई शिक्षाओं को तोते की तरह केवल दोहराता हूँ। आप स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। आपके नाटकीय कृत्यों को भला कौन समझ सकता है?

हृदये प्रेरण कर, जिह्वाय कहाओ वाणी ।
कि कहिये भाल-मन्द, किछुइ ना जानि ॥ १२३॥
हृदये प्रेरण कर, जिह्वाय कहाओ वाणी ।
कि कहिये भाल-मन्द, किछुइ ना जानि ॥ १२३॥

हृदये—हृदय में; **प्रेरण**—प्रेरणा; **कर**—आप देते हैं; **जिह्वाय**—जिह्वा पर; **कहाओ**—आप कहलवाते हो; **वाणी**—वचन; **कि**—जो कुछ; **कहिये**—मैं बोलता हूँ; **भाल-मन्द**—भला बुरा; **किछुइ**—कुछ; **ना**—नहीं; **जानि**—मैं जानता हूँ।

अनुवाद

"आप मेरे हृदय के भीतर से मुझे प्रेरित करते हैं और जीभ से कहलवाते हैं। मैं यह नहीं जानता कि मैं अच्छा बोल रहा हूँ या बुरा।"

प्रभु कहे,—मायावादी आमि त' सन्न्यासी ।
भक्ति-तत्त्व नाहि जानि, मायावादे भासि ॥ १२४॥
प्रभु कहे,—मायावादी आमि त' सन्न्यासी ।
भक्ति-तत्त्व नाहि जानि, मायावादे भासि ॥ १२४॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **मायावादी**—मायावादी पुरुष; **आमि**—मैं; **त'**—निश्चित रूप से; **सन्न्यासी**—संन्यासी; **भक्ति-तत्त्व**—दिव्य प्रेमभक्ति का तत्त्व; **नाहि**—नहीं; **जानि**—मैं जानता; **मायावादे**—निर्विशेषवाद के दर्शन में; **भासि**—मैं तैरता हूँ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं तो मायावादी संन्यासी हूँ और मैं यह भी नहीं जानता कि भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति है क्या। मैं तो केवल मायावादी दर्शन के सागर में तैरता रहता हूँ।

সার্বভৌম-সঙ্গে মোর মন নির্মল হইল ।
'কৃষ্ণ-ভক্তি-তত্ত্ব কহ,' তাঁহারে পুছিল ॥ ১২৫ ॥

সার্বভৌম-সঙ্গে মোর মন নির্মল হইল ।
'কৃষ্ণ-ভক্তি-তত্ত্ব কহ,' তাঁহারে পুছিল ॥ ১২৫ ॥

सार्वभौम-सङ्गे—सार्वभौम भट्टाचार्य की संगति में; **मोर**—मेरा; **मन**—मन; **निर्मल**—निर्मल; **हइल**—हो गया है; **कृष्ण-भक्ति-तत्त्व**—कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति का रहस्य; **कह**—कृपया कहो; **ताँहारे**—उसे; **पुछिल**—मैं पूछता हूँ।

अनुवाद

"सार्वभौम भट्टाचार्य की संगति करने से मेरा मन निर्मल हुआ है। इसीलिए मैंने उनसे कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति के तत्त्व के विषय में पूछताछ की।

তেঁহো কহে—আমি নাহি জানি কৃষ্ণ-কথা ।
সবে রামানন্দ জানে, তেঁহো নাহি এথা ॥ ১২৬ ॥

তেঁহো কহে—আমি নাহি জানি কৃষ্ণ-কথা ।
সবে রামানন্দ জানে, তেঁহো নাহি এথা ॥ ১২৬ ॥

तेंहो कहे—उन्होंने उत्तर दिया; **आमि**—मैं; **नाहि**—नहीं; **जानि**—जानता; **कृष्ण-कथा**—कृष्ण कथा; **सबे**—सभी; **रामानन्द**—रामानन्द राय; **जाने**—जानता है; **तेंहो**—वह; **नाहि**—नहीं; **एथा**—यहाँ।

अनुवाद

"सार्वभौम भट्टाचार्य ने मुझसे कहा, 'वास्तव में मैं भगवान् कृष्ण की कथा के विषय में नहीं जानता। रामानन्द राय ही सब कुछ जानता है, किन्तु वह यहाँ उपस्थित नहीं है।'"

তোমার ঠাঞি আইলাঙ তোমার মহিমা শুনিয়া ।
তুমি মোরে স্তুতি কর 'সন্ন্যাসী' জানিয়া ॥ ১২৭॥

তোমার ঠাঞি আইলাঙ তোমার মহিমা শুনিয়া ।
তুমি মোরে স্তুতি কর 'সন্ন্যাসী' জানিয়া ॥ ১২৭॥

তোমার ঠাঞি—आपके पास; **আইলাঙ**—मैं आया हूँ; **তোমার**—आपकी; **মহিমা**—महिमा; **শুনিয়া**—सुनकर; **তুমি**—आप; **মোরে**—मेरी; **স্তুতি**—प्रशंसा; **কর**—करते हो; **সন্ন্যাসী**—संन्यासी; **জানিয়া**—जानकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "मैं आपकी महिमा सुनकर आपके यहाँ आया हूँ। किन्तु आप मुझे संन्यासी जानकर मेरी प्रशंसा कर रहे हैं।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर बतलाते हैं कि संसारी व्यक्ति को भौतिक ऐश्वर्य से धनी होते हुए भी यह जानना चाहिए कि उच्च भक्तों का दिव्य ऐश्वर्य संसारी व्यक्ति के भौतिक ऐश्वर्य से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। भौतिक ऐश्वर्य से युक्त संसारी व्यक्ति को एक दिव्य भक्त के समक्ष गर्वित नहीं होना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अपनी भौतिक मर्यादा, ऐश्वर्य, शिक्षा और सौन्दर्य के बल पर किसी दिव्य भक्त के पास जाता है और भगवान् के उन्नत भक्त का आदर नहीं करता, तो वैष्णव भक्त ऐसे भौतिकता से गर्वित व्यक्ति का सम्मान तो कर सकता है, किन्तु हो सकता है कि वह उसे दिव्य ज्ञान न दे। निस्सन्देह, वह भक्त उसे अब्राह्मण या शूद्र के रूप में देखता है। ऐसा गर्वित व्यक्ति कृष्ण-तत्त्व को नहीं समझ सकता। घमंडी व्यक्ति दिव्य जीवन में धोखा खाता है और मनुष्य का शरीर पाकर भी नरक में जा गिरेगा। श्री चैतन्य महाप्रभु अपने व्यक्तिगत आचरण से सिखा रहे हैं कि एक वैष्णव के समक्ष किस प्रकार विनम्र और विनीत होना चाहिए, भले ही वह उच्च पद को प्राप्त क्यों न हो। जगत् गुरु एवं आचार्य स्वरूप श्री चैतन्य महाप्रभु की यही शिक्षा है।

কিবা বিপ্র, কিবা ন্যাসী, শূদ্র কেনে নয় ।
যেই কৃষ্ণ-তত্ত্ব-বেত্তা, সেই 'গুরু' হয় ॥ ১২৮॥

किबा विप्र, किबा न्यासी, शूद्र केने नय ।
येइ कृष्ण-तत्त्व-वेत्ता, सेइ 'गुरु' हय ॥ १२८ ॥

किबा—क्या; **विप्र**—एक ब्राह्मण; **किबा**—क्या; **न्यासी**—संन्यासी; **शूद्र**—शूद्र; **केने**—क्यों; **नय**—नहीं; **येइ**—जो कोई भी; **कृष्ण-तत्त्व-वेत्ता**—कृष्ण तत्त्व को जानने वाला हो; **सेइ**—वही; **गुरु**—आध्यात्मिक गुरु; **हय**—होता है।

अनुवाद

"कोई चाहे ब्राह्मण हो अथवा संन्यासी या शूद्र हो—यदि वह कृष्ण-तत्त्व जानता है, तो गुरु बन सकता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक कृष्णभावनामृत आन्दोलन के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में बतलाया है कि किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि ब्राह्मण-कुल में जन्म लेकर तथा संन्यासी के उच्च पद पर रहते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए शूद्र जाति में जन्मे रामानन्द राय से उपदेश ग्रहण करना अनुचित था। इस बात को स्पष्ट करने के लिए ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय को बताया कि कृष्णभावना का ज्ञान जाति से अधिक महत्त्वपूर्ण है। *वर्णाश्रम-धर्म* प्रणाली में ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों के विविध कर्तव्य होते हैं। वास्तव में ब्राह्मण को अन्य सभी वर्णों या जातियों का गुरु माना जाता है; किन्तु जहाँ तक कृष्णभावनामृत का सम्बन्ध है, कोई भी व्यक्ति गुरु बनने के लिए सक्षम होता है, क्योंकि कृष्णभावनामृत का ज्ञान आत्मा के स्तर पर होता है। कृष्णभावनामृत का प्रसार करने के लिए केवल आत्म-ज्ञान से अवगत होने की आवश्यकता होती है। फिर चाहे वह ब्राह्मण हो या क्षत्रिय, वैश्य हो या शूद्र अथवा संन्यासी या गृहस्थ, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यदि वह इस विज्ञान को समझता है, तो वह गुरु बन सकता है।

हरिभक्ति-विलास में कहा गया है कि यदि उपयुक्त ब्राह्मण उपलब्ध हो, तो अब्राह्मण से दीक्षा नहीं लेनी चाहिए। यह उपदेश उनके लिए है, जो सांसारिक सामाजिक व्यवस्था पर अत्यधिक आश्रित रहते हैं और सांसारिक जीवन बिताना चाहते हैं। यदि कोई कृष्णभावनामृत के तत्त्व को समझता है

और जीवन की पूर्णता के लिए दिव्य ज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक है, तो वह किसी भी सामाजिक स्तर के गुरु को स्वीकार कर सकता है, बशर्ते कि वह गुरु कृष्ण-विज्ञान (कृष्ण-तत्त्व) को पूरी तरह जानता हो। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर यह भी कहते हैं कि यदि कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी है और यदि वह कृष्ण-विज्ञान को जानता है, तो वह *वर्त्म-प्रदर्शक गुरु, दीक्षागुरु* अथवा *शिक्षागुरु* बन सकता है। आध्यात्मिक जीवन के विषय में सर्वप्रथम जानकारी देने वाले को *वर्त्म-प्रदर्शक गुरु* कहा जाता है। जो गुरु शास्त्रों के नियमानुसार दीक्षा देता है, वह *दीक्षागुरु* कहलाता है और जो ऊपर उठने के लिए शिक्षा देता है, वह *शिक्षागुरु* कहलाता है। वास्तव में गुरु की योग्यता उसके कृष्ण-तत्त्व के ज्ञान पर आधारित होती है। फिर चाहे वह ब्राह्मण हो अथवा क्षत्रिय, संन्यासी या शूद्र हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दिया गया यह आदेश शास्त्रों के आदेश के विरुद्ध नहीं है। *पद्म-पुराण* में कहा गया है :

न शूद्राः भगवद्भक्तास्तेऽपि भागवतोत्तमाः।
सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्ता जनार्दने॥

जो कृष्ण के विषय में आध्यात्मिक ज्ञान में वास्तव में उन्नत है, वह शूद्र-कुल में जन्म होने पर भी शूद्र नहीं होता। किन्तु एक *विप्र* या ब्राह्मण अपने छः ब्राह्मण कर्मों (पठन, पाठन, यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह) तथा वैदिक स्तोत्रों में भी पटु क्यों न हो, किन्तु यदि वह वैष्णव नहीं है, तो वह गुरु नहीं बन सकता। किन्तु यदि कोई चण्डाल परिवार में जन्म लेकर भी कृष्णभावनामृत में दक्ष हो, तो वह गुरु बन सकता है। ये शास्त्रों के आदेश हैं और इन्हीं आदेशों का दृढ़ता से पालन करते हुए श्री विश्वम्भर नामक गृहस्थ के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु को ईश्वरपुरी नामक संन्यासी गुरु ने दीक्षा दी थी। इसी प्रकार श्री नित्यानन्द प्रभु को माधवेन्द्र पुरी नामक संन्यासी ने दीक्षा दी थी। किन्तु कुछ लोगों का कहना है कि उन्हें लक्ष्मीपति तीर्थ ने दीक्षा दी। इसी तरह अद्वैत आचार्य ने गृहस्थ होते हुए भी माधवेन्द्र पुरी से दीक्षा ली और ब्राह्मण-कुल में जन्मे रसिकानन्द ने श्री श्यामानन्द प्रभु से दीक्षा ली, जो ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न नहीं थे। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जहाँ जन्मजात ब्राह्मण ने ऐसे

व्यक्ति से दीक्षा ग्रहण की, जिनका जन्म ब्राह्मण-कुल में नहीं था। *श्रीमद्भागवत* (७.११.३५) में ब्राह्मण के लक्षण इस प्रकार बतलाये गये हैं :

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्॥

यदि शूद्र-कुल में जन्मा कोई व्यक्ति गुरु के समस्त गुणों से युक्त हो, तो उसका न केवल ब्राह्मण के रूप में स्वीकार करना चाहिए, अपितु योग्य गुरु के रूप में भी स्वीकार करना चाहिए। यही आदेश श्री चैतन्य महाप्रभु का भी है। इसीलिए श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने सारे वैष्णवों के लिए विधिवत् जनेऊ-संस्कार का सूत्रपात किया।

कभी-कभी *भजनानन्दी* वैष्णव का *सावित्र संस्कार* (जनेऊ धारण करना) नहीं हुआ रहता, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इस पद्धति को प्रचार-कार्य के लिए प्रयोग में लाया जाए। वैष्णव दो प्रकार के होते हैं— *भजनानन्दी* तथा *गोष्ठ्यानन्दी* । भजनानन्दी की रुचि प्रचार-कार्य में नहीं होती, किन्तु गोष्ठ्यानन्दी लोगों के लाभ के लिए कृष्णभावना के प्रचार-कार्य में तथा वैष्णवों की संख्या बढ़ाने में सदैव रुचि रखता है। वैष्णव को ब्राह्मण-पद से ऊपर माना जाता है। प्रचारक के रूप में उसे ब्राह्मण की मान्यता मिलनी चाहिए, अन्यथा लोगों को उसके वैष्णव-पद के विषय में गलतफहमी हो सकती है। किन्तु वैष्णव ब्राह्मण का चुनाव उसके जन्म के आधार पर नहीं, अपितु उसके गुणों के आधार पर किया जाता है। दुर्भाग्यवश, जो बुद्धिमान नहीं हैं, वे ब्राह्मण तथा वैष्णव के अन्तर को नहीं समझ पाते। वे इस भ्रम में रहते हैं कि ब्राह्मण हुए बिना कोई गुरु नहीं बन सकता। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस श्लोक में कहा है :

किबा विप्र, किबा न्यासी, शूद्र केने नय।
येइ कृष्णतत्त्ववेत्ता, सेइ 'गुरु' हय॥

यदि कोई गुरु बन जाता है, तो वह स्वत: ब्राह्मण हो जाता है। कभी-कभी जाति-गुरु के लोग कहते हैं— *ये कृष्ण-तत्त्व वेत्ता सेइ गुरु हय* का अर्थ यह है कि जो ब्राह्मण नहीं है, वह *शिक्षागुरु* या *वर्त्म-प्रदर्शक गुरु* तो बन सकता है, किन्तु *दीक्षागुरु* नहीं बन सकता। ऐसे जाति-गुरुओं के अनुसार जन्म तथा कुल को सर्वोपरि माना जाता है। किन्तु वैष्णवों को यह वंश-परम्परा का

विचार मान्य नहीं है। *गुरु* शब्द वर्त्म-प्रदर्शक गुरु, शिक्षागुरु तथा दीक्षागुरु पर समान रूप से लागू होता है। जब तक हम श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा स्थापित नियम को स्वीकार नहीं करते, तब तक यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन सारे विश्व में नहीं फैल सकता। श्री चैतन्य महाप्रभु की आन्तरिक इच्छा थी—*पृथिवीते आछे यत नगरादि-ग्राम सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम।* श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार सारे विश्व में किया जाना चाहिए। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि लोग उनकी शिक्षाओं को ग्रहण करके शूद्र या चण्डाल बने रहें। ज्योंही कोई शुद्ध वैष्णव के रूप में प्रशिक्षित हो जाए, उसका प्रामाणिक ब्राह्मण के रूप में स्वीकार करना चाहिए। इस श्लोक में श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों का यही सार है।

'सन्न्यासी' बलिया मोरे ना करिह वञ्चन ।
कृष्ण-राधा-तत्त्व कहि' पूर्ण कर मन ॥ १२९॥

'सन्न्यासी' बलिया मोरे ना करिह वञ्चन ।
कृष्ण-राधा-तत्त्व कहि' पूर्ण कर मन ॥ १२९ ॥

सन्न्यासी—संन्यासी; **बलिया**—ऐसा समझकर; **मोरे**—मुझे; **ना करिह**—न करो; **वञ्चन**—कपट; **कृष्ण-राधा-तत्त्व**—राधा-कृष्ण का तत्त्व; **कहि'**—वर्णन करके; **पूर्ण**—तुष्ट ; **कर**—करो; **मन**—मेरा मन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "आप मुझे विद्वान संन्यासी समझकर ठगने की चेष्टा न करें। कृपया आप राधा तथा कृष्ण के तत्त्व का वर्णन करके मेरे मन को तुष्ट करें।"

यद्यपि राय—प्रेमी, महा-भागवते ।
ताँर मन कृष्ण-माया नारे आच्छादिते ॥ १३०॥
तथापि प्रभुर इच्छा—परम प्रबल ।
जानिलेह रायेर मन हैल टलमल ॥ १३१॥

यद्यपि राय—प्रेमी, महा-भागवते ।
ताँर मन कृष्ण-माया नारे आच्छादिते ॥ १३०॥

तथापि प्रभुर इच्छा—परम प्रबल ।
जानिलेह रायेर मन हैल टलमल ॥ १३१ ॥

यद्यपि—यद्यपि; **राय**—रामानन्द राय; **प्रेमी**—कृष्ण के महान् प्रेमी; **महा-भागवते**—उच्च कोटि के भक्त; **ताँर**—उनका; **मन**—मन; **कृष्ण-माया**—कृष्ण की माया; **नारे**—नहीं समर्थ; **आच्छादिते**—आच्छादित करना; **तथापि**—तथापि; **प्रभुर इच्छा**—भगवान् की इच्छा; **परम प्रबल**—परम बलवान्; **जानिलेह**—यद्यपि इसका पता था; **रायेर मन**—रामानन्द राय का मन; **हैल**—था; **टलमल**—विचलित।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय भगवान् के महान् भक्त थे तथा भगवत्-प्रेमी थे और यद्यपि उनका मन कृष्ण की माया से कभी आच्छादित नहीं किया जा सकता था और वे महाप्रभु के दृढ़ और गम्भीर मन की बात समझ सकते थे, किन्तु फिर भी रामानन्द का मन कुछ-कुछ विचलित हो उठा।

तात्पर्य

पूर्ण भक्त सदा पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर की इच्छाओं के अनुरूप कार्य करता है। किन्तु भौतिकतावादी व्यक्ति माया की लहरों में बह जाता है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने कहा है—*मायार वशे, याच्छ भेसे, खाच्छ हाबुडुबु, भाई।* भौतिक शक्ति के चंगुल में रहने वाला व्यक्ति सदैव माया की लहरों में बह जाता है। दूसरे शब्दों में, भौतिक जगत् में मनुष्य माया का दास रहता है। जबकि आध्यात्मिक शक्ति में रहना वाला मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का दास होता है। यद्यपि रामानन्द राय जानते थे कि श्री चैतन्य महाप्रभु से कुछ छिपा नहीं है, फिर भी वे उस विषय पर महाप्रभु की इच्छा के कारण आगे बोलने लगे।

राय कहे,—"आमि—नट, तुमि—सूत्र-धार ।
येइ मत नाचाओ, तैछे चाहि नाचिबार ॥ १३२ ॥

राय कहे—रामानन्द राय ने उत्तर दिया; **आमि**—मैं; **नट**—नर्तक; **तुमि**—आप; **सूत्र-धार**—धागा खींचने वाले; **येइ**—जिस; **मत**—तरीके से; **नाचाओ**—आप नचाते हो; **तैछे**—वैसे; **चाहि**—चाहता हूँ; **नाचिबार**—नाचना।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय ने कहा, "मैं तो केवल नाचने वाली कठपुतली हूँ, और आप रस्सी खींचने वाले हैं। आप मुझे जिस तरह नचायेंगे, मैं उसी तरह नाचूँगा।

मोर जिह्वा—वीणा-यन्त्र, तुमि—वीणा-धारी ।
तोमार मने येइ उठे, ताहाइ उच्चारि ॥ १३३॥

मोर जिह्वा—वीणा-यन्त्र, तुमि—वीणा-धारी ।
तोमार मने येइ उठे, ताहाइ उच्चारि ॥ १३३॥

मोर जिह्वा—मेरी जिह्वा; **वीणा-यन्त्र**—वीणा वाद्य; **तुमि**—आप; **वीणा-धारी**—वीणा वादक; **तोमार मने**—आपके मन में; **येइ उठे**—जो कुछ आता है; **ताहाइ**—वही; **उच्चारि**—मैं बताता हूँ।

अनुवाद

"हे प्रभु, मेरी जीभ वीणा के समान है, और आप इस वीणा के वादक हैं। अतएव जो आपके मन में उठता है, मैं उसी की ध्वनि उत्पन्न करता हूँ।"

परम ईश्वर कृष्ण—स्वयं भगवान् ।
सर्व-अवतारी, सर्व-कारण-प्रधान ॥ १३४॥

परम ईश्वर कृष्ण—स्वयं भगवान् ।
सर्व-अवतारी, सर्व-कारण-प्रधान ॥ १३४॥

परम—परम; **ईश्वर**—ईश्वर; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **स्वयम्**—स्वयं; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **सर्व-अवतारी**—सभी अवतारों के स्रोत; **सर्व-कारण-प्रधान**—सभी कारणों के कारण।

अनुवाद

फिर रामानन्द राय कृष्ण-तत्त्व पर बोलने लगे। उन्होंने कहा, "कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। वे स्वयं आदि ईश्वर हैं, समस्त अवतारों के उद्गम तथा समस्त कारणों के कारण हैं।

অনন্ত বৈকুণ্ঠ, আর অনন্ত অবতার ।
অনন্ত ব্রহ্মাণ্ড ইহাঁ,—সবার আধার ॥ ১৩৫ ॥

अनन्त वैकुण्ठ, आर अनन्त अवतार ।
अनन्त ब्रह्माण्ड इहाँ,—सबार आधार ॥ १३५ ॥

अनन्त वैकुण्ठ—असंख्य वैकुण्ठ ग्रह; **आर**—और; **अनन्त अवतार**—अनन्त अवतार; **अनन्त ब्रह्माण्ड**—आनन्त ब्रह्माण्ड; **इहाँ**—इस भौतिक जगत् में; **सबार**—उन सब के; **आधार**—आधार।

अनुवाद

"वैकुण्ठ ग्रहों की संख्या अनन्त है और अवतार भी असंख्य हैं। भौतिक जगत् में भी असंख्य ब्रह्माण्ड हैं और कृष्ण उन सबके परम आधार हैं।

সচ্চিদানন্দ-তনু, ব্রজেন্দ্র-নন্দন ।
সর্বৈশ্বর্য-সর্বশক্তি-সর্বরস-পূর্ণ ॥ ১৩৬ ॥

सच्चिदानन्द-तनु, व्रजेन्द्र-नन्दन ।
सर्वैश्वर्य-सर्वशक्ति-सर्वरस-पूर्ण ॥ १३६ ॥

सत्-चित्-आनन्द-तनु—कृष्ण का शरीर सत्-चित्त आनन्द है; **व्रजेन्द्र-नन्दन**—महाराज नन्द के पुत्र; **सर्व-ऐश्वर्य**—सभी ऐश्वर्य; **सर्व-शक्ति**—सभी शक्तियों से पूर्ण; **सर्व-रस-पूर्ण**—सभी रसों से पूर्ण।

अनुवाद

"श्रीकृष्ण का दिव्य देह सनातन है और आनन्द तथा ज्ञान से पूर्ण है। वे नन्द महाराज के पुत्र हैं। वे समस्त ऐश्वर्यों, शक्तियों तथा दिव्य रसों से पूर्ण हैं।

ঈশ্বরঃ পরমঃ কৃষ্ণঃ সচ্চিদানন্দ-বিগ্রহঃ ।
অনাদিরাদির্গোবিন্দঃ সর্ব-কারণ-কারণম্ ॥ ১৩৭ ॥

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द-विग्रहः ।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्व-कारण-कारणम् ॥ १३७ ॥

ईश्वरः—नियन्ता; **परमः**—परम; **कृष्णः**—भगवान् कृष्ण; **सत्**—शाश्वत अस्तित्व;

चित्—परम ज्ञान; **आनन्द**—आनन्द; **विग्रहः**—विग्रह; **अनादिः**—अनादि; **आदिः**—प्रत्येक वस्तु के स्रोत; **गोविन्दः**—गोविन्द नामक; **सर्व**—सभी; **कारण**—कारणों के; **कारणम्**—मूल कारण हैं।

अनुवाद

"'गोविन्द के नाम से विख्यात श्रीकृष्ण परम नियन्ता हैं। उनका शरीर शाश्वत, आनन्दपूर्ण तथा आध्यात्मिक है। वे सबके उद्गम हैं। समस्त कारणों के मूल कारण होने के कारण उनका कोई अन्य उद्गम नहीं है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *ब्रह्म-संहिता* (५.१) का है।

वृन्दावने 'अप्राकृत नवीन मदन' ।
काम-गायत्री काम-बीजे याँर उपासन ॥ १३८॥

वृन्दावने 'अप्राकृत नवीन मदन' ।
काम-गायत्री काम-बीजे याँर उपासन ॥ १३८॥

वृन्दावने—वृन्दावन में; **अप्राकृत**—आध्यात्मिक; **नवीन**—नवीन; **मदन**—कामदेव; **काम-गायत्री**—कामनाओं के मंत्रों से; **काम-बीजे**—*क्लीम्* नामक कामनाओं के आध्यात्मिक बीज से; **याँर**—जिनकी; **उपासन**—पूजा।

अनुवाद

"वृन्दावन के आध्यात्मिक क्षेत्र में कृष्ण चिरनवीन आध्यात्मिक कामदेव हैं। उनकी पूजा आध्यात्मिक बीज क्लीम् के साथ कामगायत्री मन्त्र का उच्चारण करके की जाती है।

तात्पर्य

ब्रह्म-संहिता (५.५६) में वृन्दावन का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

श्रियः कान्ताः कान्तः परमपुरुषः कल्पतरवो
द्रुमा भूमिश्चिन्तामणिगणमयी तोयममृतम्।
कथा गानं नाट्यं गमनमपि वंशी प्रिय-सखी
चिदानन्दं ज्योतिः परमपि तदास्वाद्यमपि च॥
स यत्र क्षीराब्धिः स्रवति सुरभीभ्यश्च सुमहान्
निमेषार्द्धाख्यो वा व्रजति न हि यत्रापि समयः।

भजे श्वेतद्वीपं तमहमिह गोलोकमिति यं
विदन्तस्ते सन्तः क्षितिविरलचाराः कतिपये॥

वृन्दावन का आध्यात्मिक क्षेत्र सदैव आध्यात्मिक रहता है। वहाँ पर लक्ष्मी तथा गोपियाँ सदैव विद्यमान रहती हैं। वे कृष्ण को प्रिय हैं और वे सब भी कृष्ण के समान आध्यात्मिक हैं। वृन्दावन में कृष्ण परम पुरुष हैं और वे समस्त गोपियों के तथा लक्ष्मीयों के पति हैं। वृन्दावन के वृक्ष कल्पवृक्ष होते हैं। वहाँ की भूमि चिन्तामणि से बनी हुई है, और जल अमृत है। सारे शब्द संगीत की ध्वनियाँ और सारी गतियाँ नृत्य होती हैं। वंशी भगवान् की नित्य संगिनी होती है। गोलोक वृन्दावन सूर्य के समान स्वतः तेजवान और दिव्य आनन्द से पूर्ण होता है। जीवन की पूर्णता इस आध्यात्मिक लोक का आस्वादन करने में है; अतएव हर एक को चाहिए कि इसके ज्ञान के विषय में ज्ञान का अनुशीलन करे। वृन्दावन की आध्यात्मिक गौवें सदैव आध्यात्मिक दूध देने वाली हैं। वहाँ एक भी क्षण व्यर्थ नहीं जाता—दूसरे शब्दों में, वहाँ भूत, वर्तमान तथा भविष्य नहीं होता। समय का एक कण भी व्यर्थ नहीं जाता। इस भौतिक जगत् में भक्त उस दिव्य धाम की पूजा गोलोक वृन्दावन के रूप में करते हैं। स्वयं ब्रह्माजी ने कहा है, "मैं उस आध्यात्मिक लोक की पूजा करना चाहता हूँ, जहाँ कृष्ण विद्यमान हैं।" इस दिव्य वृन्दावन की प्रशंसा उन लोगों द्वारा नहीं की जाती, जो भक्त या स्वरूपसिद्ध नहीं हैं, क्योंकि यह वृन्दावन धाम पूरी तरह आध्यात्मिक है। वहाँ पर भगवान् की लीलाएँ भी आध्यात्मिक हैं। उनमें से कोई भी लीला भौतिक नहीं है। श्रील नरोत्तम दास ठाकुर की प्रार्थना के अनुसार (*प्रार्थना* १)—

आर कबे निताइ-चाँदेर करुणा करिबे।
संसार-वासना मोर कबे तुच्छ ह'बे॥

"मुझ पर नित्यानन्द प्रभु कब कृपा करेंगे, जिससे कि मैं भौतिक आनन्द की तुच्छता का अनुभव कर सकूँ?"

विषय-छाड़िया कबे शुद्ध ह'बे मन।
कबे हाम हेरब श्रीवृन्दावन॥

"मेरा मन भौतिक मल से कब शुद्ध होगा, ताकि मुझे आध्यात्मिक वृन्दावन की उपस्थिति का अनुभव हो सके?"

रूप-रघुनाथ-पदे हइबे आकुति।
कबे हाम बुझब से युगल-पिरीति॥

"कब मैं गोस्वामियों के उपदेशों के प्रति आकृष्ट हो सकूँगा, जिससे मैं यह समझ पाऊँ कि राधा तथा कृष्ण क्या हैं और वृन्दावन क्या है?"

इन श्लोकों से सूचित होता है कि यदि कोई वृन्दावन को समझना चाहता है, तो उसे पहले समस्त भौतिक इच्छाओं से शुद्ध होना पड़ता है एवं सकाम कर्म तथा तार्किक ज्ञान के आकर्षण से मुक्त होतना पड़ता है।

अप्राकृत नवीन मदन में *अप्राकृत* शब्द भौतिक विचार से सर्वथा विरुद्ध विचार का सूचक है। मायावादी इसे शून्य या निर्विशेष मानते हैं, किन्तु ऐसा नहीं है। भौतिक जगत् की प्रत्येक वस्तु जड़ है, किन्तु आध्यात्मिक जगत् की प्रत्येक वस्तु चेतन है। भोग की इच्छा कृष्ण तथा उनके अंशों अर्थात् जीवों में समान रूप में पाई जाती है। आध्यात्मिक जगत् में ऐसी इच्छाएँ भी आध्यात्मिक होती हैं। ऐसी इच्छाओं को किसी को भूलकर भी भौतिक नहीं समझना चाहिए। यदि इस भौतिक जगत् में कोई व्यक्ति यौन सुख के प्रति उन्मुख है और उसका भोग करता है, तो यह भोग क्षणिक होता है। कुछ ही मिनट के बाद उसका भोग समाप्त हो जाता है, किन्तु आध्यात्मिक जगत् में यही भोग कभी न समाप्त होने वाला होता है। उसका निरन्तर भोग होता रहता है। आध्यात्मिक जगत् में ऐसी कामवासना प्रत्येक नवीन विशिष्टता के साथ अधिकाधिक आस्वाद्य लगती है। किन्तु भौतिक जगत् में कामवासना कुछ ही मिनटों में स्वादरहित हो जाती है, और यह कभी भी स्थायी नहीं होती। चूँकि कृष्ण अत्यधिक काम-उन्मुख प्रतीत होते हैं, इसलिए आध्यात्मिक जगत् में उन्हें नवीन कामदेव कहा गया है। किन्तु ऐसी इच्छा में कोई भौतिक उच्छृंखलता नहीं रहती।

गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्री त्वं ततः स्मृताः—जो कोई गायत्री मन्त्र का जप करता है, वह क्रमशः भौतिक बन्धन से छूट जाता है। दूसरे शब्दों में, जो

भवबन्धन से छुड़ाये, वही *गायत्री* है। गायत्री मन्त्र की व्याख्या मध्यलीला (२१.१२५) में उपलब्ध है :

काम-गायत्री-मन्त्र-रूप, हय कृष्णेर स्वरूप,
सार्ध-चब्बिश अक्षर तार हय।
से अक्षर 'चन्द्र' हय, कृष्णे करि' उदय
त्रिजगत् कैला काममय॥

कामगायत्री मन्त्र वैदिक स्तुति के समान है, किन्तु यह साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् है। कामगायत्री तथा कृष्ण में कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही २४ १/२ दिव्य अक्षरों से बने हैं (देखें मध्य. २१.१२५-२९)। अक्षरों द्वारा अंकित यह मन्त्र भी कृष्ण है, और यह मन्त्र चन्द्रमा के समान उदय होता है। इसके कारण मानव-समाज में तथा सारे जीवों में इच्छा का विकृत प्रतिबिम्ब पड़ता है। *क्लीं कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्*— इस मन्त्र में कृष्ण को कामदेव, पुष्पबाण तथा अनंग कहा गया है। कामदेव मदनमोहन हैं, जो कृष्ण के साथ हमारे सम्बन्ध को स्थापित करने वाले अर्चाविग्रह हैं। *पुष्पबाण* (अर्थात् फूलों का बाण धारण करने वाले) गोविन्द या भगवान् हैं, जो हमारी भक्ति को स्वीकार करते हैं। *अनङ्ग* गोपीजन वल्लभ हैं, जो समस्त गोपियों को तुष्ट करते हैं और जीवन के चरम लक्ष्य हैं। यह *कामगायत्री* (*क्लीं कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्ग प्रचोदयात्*) इसी भौतिक जगत् से जरा भी सम्बन्धित नहीं है। आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नति होने पर मनुष्य अपनी शुद्ध इन्द्रियों से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा कर सकता है और भगवान् की इच्छाओं को पूरा कर सकता है।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

"सदैव मेरा चिन्तन करो और मेरे भक्त बनो। मेरी पूजा करो और मुझे ही नमस्कार करो। इस प्रकार तुम निश्चित रूप से मेरे पास आ सकोगे। मैं तुम्हें यह वचन देता हूँ, क्योंकि तुम मेरे परम प्रिय मित्र हो।" (*भगवद्गीता* १८.६५)

ब्रह्म-संहिता (५.२७-२८) में कहा गया है :

अथ वेणु निनादस्य त्रयीमूर्तिमयी गतिः ।
स्फुरन्ति प्रविवेशाशु मुखाब्जानि स्वयंभुवः ॥
गायत्रीं गायतस्तस्माद् अधिगत्य सरोजजः ।
संस्कृतश्चादिगुरुणा द्विजतामगमत्ततः ॥
त्रय्या प्रबुद्धोऽथ विधिर्विज्ञाततत्त्वसागरः ।
तुष्टाव वेदसारेण स्तोत्रेणानेन केशवम् ॥

"तब वेदमाता गायत्री श्रीकृष्ण की वंशी की दिव्य ध्वनि से प्रकट होकर स्वयंभू ब्रह्मा के कमलमुख में उनके आठ कानों से प्रविष्ट हुई। इस प्रकार कमल से उत्पन्न ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण की वंशी के संगीत से उत्पन्न गायत्री मन्त्र को प्राप्त किया। इस तरह उन्हें द्विज का पद प्राप्त हुआ, क्योंकि उन्होंने परम आदि गुरु साक्षात् भगवान् से दीक्षा ग्रहण की। तीन वेदों से युक्त उस गायत्री के स्मरण द्वारा प्रकाशित होकर ब्रह्माजी सत्य के समुद्र से अवगत हुए। तब उन्होंने स्तोत्र द्वारा समस्त वेदों के सार श्रीकृष्ण की पूजा की।"

कृष्ण की वंशी की ध्वनि वैदिक स्तोत्रों की उद्गम है। कमलासीन ब्रह्माजी ने कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनी, जिससे वे गायत्री मन्त्र द्वारा दीक्षित हो गये।

पुरुष, योषित्, किवा स्थावर-जङ्गम ।
सर्व-चित्ताकर्षक, साक्षात्मन्मथ-मदन ॥ १३९॥

पुरुष, योषित्, किबा स्थावर-जङ्गम ।
सर्व-चित्ताकर्षक, साक्षात्मन्मथ-मदन ॥ १३९ ॥

पुरुष—पुरुष; **योषित्**—नारी; **किबा**—सब; **स्थावर-जङ्गम**—चर-अचर; **सर्व**—सबका; **चित्त-आकर्षक**—चित्त आकर्षित करने वाले; **साक्षात्**—साक्षात्; **मन्मथ-मदन**—कामदेव।

अनुवाद

"कृष्ण नाम का ही अर्थ यह होता है कि वे कामदेव को भी आकृष्ट करने वाले हैं। अतएव वे सबके लिए—स्त्री तथा पुरुष, चर तथा अचर जीवों के लिए आकर्षक हैं। निस्सन्देह, कृष्ण सर्वचित्ताकर्षक के रूप में सर्वविदित हैं।

तात्पर्य

जिस तरह भौतिक जगत् में अनेक खगोल-मण्डल हैं, जो तारे या ग्रह कहलाते हैं, उसी तरह आध्यात्मिक जगत् में अनेक दिव्य ग्रह हैं, जो वैकुण्ठ लोक कहलाते हैं। किन्तु आध्यात्मिक ब्रह्माण्ड भौतिक ब्रह्माण्डों के गुच्छ से बहुत ही दूरी पर है। भौतिक विज्ञानी इस ब्रह्माण्ड समूह में नक्षत्रों तथा ग्रहों की संख्या का अनुमान तक नहीं लगा सकते। वे अन्तरिक्ष यानों द्वारा अन्य नक्षत्रों तक यात्रा करने में भी अक्षम हैं। *भगवद्गीता* (८.२०) के अनुसार एक आध्यात्मिक जगत् भी है :

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात् सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥

"एक अन्य अव्यक्त प्रकृति भी है, जो शाश्वत है और इस व्यक्त तथा अव्यक्त पदार्थ से परे है। यह सर्वोपरि है और इसका नाश कभी नहीं होता। जब इस संसार की प्रत्येक वस्तु का नाश हो जाता है, तब भी वह उसी तरह बनी रहती है।"

इस तरह से एक अन्य प्रकृति भी है, जो भौतिक प्रकृति से श्रेष्ठ है। *भाव* या *स्वभाव* शब्द प्रकृति के लिए आये हैं। आध्यात्मिक प्रकृति शाश्वत है। सारे भौतिक ब्रह्माण्डों के विनष्ट हो जाने पर भी आध्यात्मिक जगत् के ग्रह जैसे का तैसे बने रहते हैं। वे उसी तरह बने रहते हैं, जिस तरह भौतिक शरीर के विनष्ट होने के बाद आत्मा का आस्तित्व बना रहता है। आध्यात्मिक जगत् *अप्राकृत* अर्थात् प्रतिपदार्थ या प्राकृतिक जगत् का विपरीत कहलाता है। इस दिव्य आध्यात्मिक जगत् का सर्वोच्च ग्रह गोलोक वृन्दावन कहलाता है। यह स्वयं भगवान् कृष्ण का धाम है। भगवान् कृष्ण भी पूर्णरूपेण आध्यात्मिक हैं। यहाँ कृष्ण *अप्राकृत मदन* के रूप में जाने जाते हैं। मदन नाम कामदेव का सूचक है, किन्तु कृष्ण आध्यात्मिक मदन हैं। उनका शरीर इस भौतिक ब्रह्माण्ड के मदन के समान भौतिक नहीं है। कृष्ण का शरीर पूर्णतया आध्यात्मिक—*सच्चिदानन्द-विग्रह* है। इसीलिए वे अप्राकृत मदन कहलाते हैं, वे मन्मथ मदन भी कहलाते हैं, जिसका अर्थ यह है कि वे मदन को भी आकृष्ट करने वाले हैं। कभी-कभी निपट भौतिकतावादी व्यक्ति कृष्ण की लीलाओं एवं उनके

आकर्षक गुणों का गलत अर्थ लगाते हैं और उन पर अनैतिकता का लांछन लगाते हैं, क्योंकि वे गोपियों के साथ नृत्य करते थे। किन्तु लोग ऐसा दोषारोपण इसलिये करते हैं, क्योंकि वे नहीं जानते कि कृष्ण तो इस भौतिक जगत् से परे हैं। उनका शरीर *सच्चिदानन्द विग्रह* है—अर्थात् पूर्णतया आध्यात्मिक है। उनके शरीर में लेशमात्र भी भौतिक कल्मष नहीं पाया जाता। उनके शरीर को हाड़-मांस का पुतला नहीं मानना चाहिए। मायावादी दार्शनिक कृष्ण के शरीर को भौतिक मानते हैं, किन्तु यह अत्यन्त घृणित, स्थूल भौतिक धारणा है। जिस प्रकार कृष्ण पूर्णतया आध्यात्मिक है, उसी तरह गोपियाँ भी आध्यात्मिक हैं, जिसकी पुष्टि *ब्रह्म-संहिता* (५.३७) से होती है :

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभि: ।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

"मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जो अपने धाम गोलोक में राधा के साथ निवास करते हैं, जो उनकी आध्यात्मिक छवि के सदृश हैं और जो ह्लादिनी शक्ति स्वरूपा हैं। उनके साथ श्रीमती राधा की विश्वासपात्र सखियाँ हैं, जो उनके (राधारानी के) स्वरूप के विस्तार हैं और जो सदैव आनन्दमय आध्यात्मिक रस से आप्लावित रहती हैं।"

गोपियाँ भी उन्हीं के समान आध्यात्मिक गुणों वाली (*निजरूपतया*) हैं, क्योंकि वे कृष्ण की आनन्ददायिनी ह्लादिनी शक्ति की अंश हैं। कृष्ण और गोपियों को भौतिक पदार्थ से या भौतिक धारणा से कोई वास्ता नहीं है। इस भौतिक जगत् में जीव भौतिक शरीर के भीतर बन्दी बना हुआ है और अज्ञानवश वह अपने आपको यह शरीर समझता है। इसलिए यहाँ पुरुष तथा स्त्री के बीच काम-वासनाओं का भोग सर्वथा भौतिक है। भौतिकतावादी मनुष्य की कामेच्छाओं की तुलना कृष्ण की दिव्य कामेच्छाओं से नहीं की जा सकती। जब तक मनुष्य आत्म-विज्ञान में समुन्नत नहीं होता, तब तक वह कृष्ण तथा गोपियों के बीच की कामेच्छाओं को नहीं समझ सकता। *चैतन्य-चरितामृत* में गोपियों की कामेच्छाओं की तुलना स्वर्ण से की गई है, किन्तु भौतिकतावादी

व्यक्ति की कामेच्छाओं की तुलना लोहे से की गई है। सोने और लोहे में किसी भी अवस्था में कोई समानता नहीं बताइ जा सकती है। सारे जीव, चाहे चर हों या अचर, कृष्ण के अंश हैं; अतएव उनमें भी मूलत: उन जैसी ही कामेच्छा पाई जाती है। किन्तु जब इस कामेच्छा को पदार्थ के माध्यम से व्यक्त किया जाता है, तो वह घृणित बन जाती है। जब जीव आध्यात्मिक रूप से उन्नत होता है और भौतिक बन्धन से मुक्त हो जाता है, तब वह कृष्ण को सही ढंग से समझ सकता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (४.९) में कहा गया है :

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वत: ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

"हे अर्जुन, जो मेरे प्राकट्य तथा मेरे कार्यों के दिव्य स्वभाव को जानता है, वह शरीर त्यागने के बाद इस भौतिक जगत् में फिर से शरीर धारण नहीं करता, अपितु मेरे सनातन धाम को प्राप्त करता है।"

जब मनुष्य कृष्ण के शरीर को तथा उनकी कामेच्छाओं को समझ लेता है, तब उसे तुरन्त मुक्ति प्राप्त हो जाती है। भौतिक शरीर के भीतर बन्दी बना हुआ बद्ध आत्मा कृष्ण को नहीं समझ सकता। *भगवद्गीता* (७.३) में कहा गया है :

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वत: ॥

"हजारों व्यक्तियों में से कोई एक व्यक्ति सिद्धि के लिए प्रयास करता है और जिन्हें सिद्धि प्राप्त हो चुकी है, उनमें से मुश्किल से कोई एक मुझे सही-सही जान पाता है।"

सिद्धये शब्द मुक्ति का सूचक है। मनुष्य भौतिक बन्धन से छूटने पर ही कृष्ण को समझ सकता है। जब कोई व्यक्ति कृष्ण को यथारूप में (*तत्त्वत:*) समझ लेता है, तब वह भौतिक शरीर में रहते हुए भी आध्यात्मिक जगत् में रहता है। इस विज्ञान को वही समझ सकता है, जो वास्तव में आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत है।

श्रील रूप गोस्वामी ने अपने *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.२.१८७) में कहा है :

ईहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा।
निखिलास्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्तः स उच्यते॥

जब कोई व्यक्ति इस भौतिक जगत् में प्रेम तथा भक्तिपूर्वक कृष्ण की सेवा करना चाहता है, तो वह इस भौतिक जगत् में कर्म करते हुए भी मुक्त हो जाता है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (१४.२६) से होती है :

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

"जो पूरी तरह भक्ति में लगा रहता है, जो किसी भी परिस्थिति में अपनी स्थिति से नहीं भटकता, वह तुरन्त भौतिक प्रकृति के गुणों को पार कर जाता है और ब्रह्म-पद को प्राप्त होता है।"

भगवान् की प्रेमाभक्ति में लगे रहने मात्र से ही मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (१८.५४) में कहा गया है—*ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।* जो मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान में अत्यन्त उन्नत है और जिसने *ब्रह्मभूत* अवस्था प्राप्त कर ली है, वह न तो शोक करता है न किसी भौतिक वस्तु के लिए लालायित रहता है। यही आत्म-साक्षात्कार की अवस्था है।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर *ब्रह्मभूत* अवस्था के दो विभाग मानते हैं—*स्वरूपगत* तथा *वस्तुगत।* जब कोई कृष्ण को वास्तव में समझ जाता है, किन्तु फिर भी कोई भौतिक सम्बन्ध बनाये रखता है, तो वह अपने *स्वरूप* (मूल चेतना) में स्थित बतलाया जाता है। जब यह स्वरूप (मूल चेतना) पूर्णतया आध्यात्मिक होता है, तो इसे कृष्णभावनामृत कहा जाता है। जो ऐसी चेतना को प्राप्त होता है, वह वास्तव में वृन्दावन में रहता है। वह चाहे जहाँ रहे, भौतिक स्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जब कृष्ण की कृपा से कोई मनुष्य इस प्रकार उन्नत हो जाता है, तो वह भौतिक शरीर तथा मन से पूर्णतया शुद्ध हो जाता है और तब वह वास्तव में वृन्दावन में रहता है। यह अवस्था *वस्तुगत* है।

मनुष्य को चेतना की *स्वरूपगत* अवस्था में अपने आध्यात्मिक कार्य सम्पन्न करने चाहिए। उसे *चिन्मयी गायत्री* मन्त्र—आध्यात्मिक मन्त्रों—का भी

जप करना चाहिए— *ॐ नमो भगवते वासुदेवाय* या *क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन वल्लभाय स्वाहा।* तथा *क्लीं कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्।* ये कामगायत्री या कामबीज मन्त्र हैं। मनुष्य को चाहिए कि प्रामाणिक गुरु से दीक्षा ले और इन कामगायत्री या कामबीज दिव्य मन्त्रों से कृष्ण की पूजा करे।

जैसाकि कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने पिछले श्लोक में तथा इस श्लोक में बतलाया है (*चैतन्य-चरितामृत, मध्य* ८.१३८-१३९) :

वृन्दावनेऽप्राकृत नवीन मदन।
कामगायत्री कामबीजे याँर उपासन॥
पुरुष, योषित, किबा स्थावर-जङ्गम।
सर्व-चित्ताकर्षक, साक्षात् मन्मथ-मदन॥

जो व्यक्ति पूर्णतया शुद्ध है और गुरु द्वारा दीक्षित है, वह इस कामबीज के साथ कामगायत्री मन्त्र के जप द्वारा पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् कृष्ण की आराधना करता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (१८.६५) में भी इसकी पुष्टि की गई है, भगवान् की दिव्य पूजा करनी चाहिए, जिससे वह सर्व-आकर्षक कृष्ण द्वारा आकर्षित होने योग्य बन सके :

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

"सदैव मेरा चिन्तन करो और मेरे भक्त बनो। मेरी पूजा करो और मुझे ही नमस्कार करो। इस तरह तुम निश्चित रूप से मेरे पास आओगे। मैं तुम्हें यह वचन देता हूँ, क्योंकि तुम मेरे अत्यन्त प्रिय मित्र हो।"

चूँकि हर जीव कृष्ण का अंश है, इसलिए कृष्ण स्वाभाविक रूप से आकर्षक हैं। भौतिक आवरण के कारण कृष्ण के प्रति मनुष्य के आकर्षण में रुकावट आ जाती है। सामान्यतया इस भौतिक जगत् में व्यक्ति कृष्ण की ओर आकृष्ट नहीं होता, किन्तु भौतिक बन्धन से मुक्त होते ही वह स्वाभाविक रूप से आकृष्ट हो जाता है। इसीलिए इस श्लोक में कृष्ण को *सर्वचित्ताकर्षक* कहा गया है, जिसका अर्थ है, "प्रत्येक व्यक्ति स्वभावतः कृष्ण द्वारा आकृष्ट होता है।" यह आकर्षण हर एक के हृदय के भीतर रहता है और जब हृदय निर्मल

हो जाता है, तब यह आकर्षण प्रकट हो जाता है (*चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणम्*)।

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमान-मुखाम्बुजः ।
पीताम्बर-धरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथ-मन्मथः ॥ १४० ॥

तासाम्आविरभूत्शौरिःस्मयमान-मुखाम्बुजः ।
पीताम्बर-धरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथ-मन्मथः ॥ १४० ॥

तासाम्—उनमें से; **आविरभूत्**—प्रकट हुए; **शौरिः**—भगवान् कृष्ण; **स्मयमान**—मुस्कुराते हुए; **मुख-अम्बुजः**—कमल मुख; **पीत-अम्बर-धरः**—पीताम्बर धारी; **स्रग्वी**—पुष्प माला से सुशोभित; **साक्षात्**—साक्षात्; **मन्मथ**—कामदेव के; **मन्मथः**—कामदेव।

अनुवाद

"'जब कृष्ण रासलीला नृत्य छोड़कर चले गये, तब गोपियाँ अत्यन्त खिन्न हो गईं; किन्तु जब वे शोकमग्न थीं तो कृष्ण पीताम्बर धारण किये पुनः प्रकट हो गये। फूलों की माला पहने तथा मृदु मुस्कान करते वे कामदेव को भी आकृष्ट करने वाले थे। इस तरह कृष्ण गोपियों के बीच प्रकट हो गये।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.३२.२) से है।

नाना-भक्तের রসামৃত নানা-বিধ হয় ।
সেই সব রসামৃতের 'বিষয়' 'আশ্রয়' ॥ ১৪১ ॥

নানা-ভক্তের রসামৃত নানা-বিধ হয় ।
সেই সব রসামৃতের 'বিষয়' 'আশ্রয়' ॥ ১৪১ ॥

নানা-ভক্তের—নানা प्रकार के भक्तों के; **রস-অমৃত**—भक्ति अमृत अथवा दिव्य रस; **নানা-বিধ**—विभिन्न प्रकार के; **হয়**—हैं; **সেই সব**—ये सब; **রস-অমৃতের**—भक्ति अमृत के; **বিষয়**—विषय; **আশ্রয়**—आश्रय।

अनुवाद

"हर भक्त का कृष्ण के साथ एक विशेष प्रकार का दिव्य रस होता

है। किन्तु इन सारे दिव्य सम्बन्धों में भक्त पूजक (आश्रय) होता है और कृष्ण पूज्य (विषय) होते हैं।

अखिल-रसामृत-मूर्तिः
प्रसृमर-रुचि-रुद्ध-तारका-पालिः ।
कलित-श्यामा-ललितो
राधा-प्रेयान्विधुर्जयति ॥ १४२॥

अखिल-रसामृत-मूर्तिः
प्रसृमर-रुचि-रुद्ध-तारका-पालिः ।
कलित-श्यामा-ललितो
राधा-प्रेयान्विधुर्जयति ॥ १४२॥

अखिल-रस-अमृत-मूर्तिः—सर्व आनन्द के स्रोत, जिनमें भक्ति के सभी रस अर्थात् शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य रस सम्मिलित हैं; **प्रसृमर**—प्रसार करके; **रुचि**—अपनी शारीरिक ज्योति से; **रुद्ध**—जिन्होंने वशीभूत किया है; **तारका**—तारका नामक गोपी को; **पालिः**—पालि नामक गोपी को; **कलित**—जिन्होंने मन हर लिये हैं; **श्यामा**—श्यामा नामक गोपी को; **ललितः**—और ललिता नामक गोपी को; **राधा-प्रेयान्**—जो श्रीमती राधारानी को अत्यन्त प्रिय हैं; **विधुः**—पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् कृष्ण की; **जयति**—जय हो।

अनुवाद

"'पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की जय हो! उन्होंने निरन्तर बढ़ने वाले अपने आकर्षक लक्षणों के कारण तारका तथा पाली नामक गोपियों को जीत लिया है और श्यामा तथा ललिता के मनों को हर लिया है। वे श्रीमती राधारानी के सर्वाधिक आकर्षक प्रेमी हैं और समस्त रसों में भक्तों के लिए आनन्द के आगार हैं।'

तात्पर्य

प्रत्येक व्यक्ति में एक विशेष रस होता है, जिससे वह कृष्ण से प्रेम करता है, और उनकी सेवा करता है। हर प्रकार के भक्त के लिए कृष्ण सर्वाधिक आकर्षक मूर्ति हैं। इसीलिए वे सभी प्रकार के भक्तों के लिए *अखिल रसामृत-मूर्ति* कहलाते हैं, भले ही वह भक्त शान्त रस में हो, या दास्य, सख्य, माधुर्य या वात्सल्य रस में।

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत *भक्तिरसामृत सिन्धु* का पहला श्लोक है।

शृङ्गार-रसराज-मय-मूर्ति-धर ।
अतएव आत्म-पर्यन्त-सर्व-चित्त-हर ॥ १४३॥

शृङ्गार-रसराज-मय-मूर्ति-धर ।
अतएव आत्म-पर्य्यन्त-सर्व-चित्त-हर ॥ १४३॥

शृङ्गार-रस-राज-मय—रसों के राजा, माधुर्य रस से युक्त; **मूर्ति-धर**—सभी आनन्द के मूर्तिमान आगार कृष्ण; **अतएव**—इसलिये; **आत्म-पर्य्यन्त**—स्वयं का भी; **सर्व**—सब; **चित्त**—हृदयों के; **हर**—आकर्षक।

अनुवाद

"कृष्ण सारे रसों में भक्तों के लिए सर्व-आकर्षक हैं, क्योंकि वे माधुर्य रस के मूर्तिमान स्वरूप हैं। कृष्ण न केवल समस्त भक्तों के लिए, अपितु स्वयं के लिए भी आकर्षक हैं।

विश्वेषामनुरञ्जनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवर-
श्रेणी-श्यामल-कोमलैरुपनयन्नङ्गैरनङ्गोत्सवम् ।
स्वच्छन्दं व्रज-सुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः
शृङ्गारः सखि मूर्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीड़ति ॥ १४४॥

विश्वेषामनुरञ्जनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवर-
श्रेणी-श्यामल-कोमलैरुपनयन्नङ्गैरनङ्गोत्सवम् ।
स्वच्छन्दं व्रज-सुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः
शृङ्गारः सखि मूर्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीड़ति ॥ १४४॥

विश्वेषाम्—सभी गोपियों का; **अनुरञ्जनेन**—आनन्दित करके; **जनयन्**—उत्पन्न करके; **आनन्दम्**—आनन्द; **इन्दीवर-श्रेणी**—नीलकमलों की पंक्ति के समान; **श्यामल**—श्यामल; **कोमलैः**—और कोमल; **उपनयन्**—लाकर; **अङ्गैः**—अपने अंगों से; **अनङ्ग-उत्सवम्**—कामदेव के उत्सव हेतु; **स्वच्छन्दम्**—बिना अवरोध के; **व्रज-सुन्दरीभिः**—व्रज की युवा गोपियों से; **अभितः**—दोनों ओर; **प्रति-अङ्गम्**—प्रत्येक अंग; **आलिङ्गितः**—आलिंगन करके; **शृङ्गारः**—शृंगारिक प्रेम; **सखि**—हे सखी; **मूर्ति-मान्**—मूर्तिमान; **इव**—की तरह; **मधौ**—वसंत ऋतु में; **मुग्धः**—मुग्ध होकर; **हरिः**—भगवान् हरि; **क्रीड़ति**—खेलते हैं।

अनुवाद

"'हे सखियों, जरा देखो न, श्रीकृष्ण किस तरह वसन्त ऋतु का आनन्द लूट रहे हैं! गोपियाँ उनके सारे अंगों का आलिंगन कर रही हैं, जिससे वे शृंगार प्रेम के मूर्तिमान स्वरूप लगते हैं। वे अपनी दिव्य लीलाओं से सारी गोपियों तथा अखिल सृष्टि को जीवन प्रदान करते हैं। उनके मृदु श्यामल हाथ तथा पाँव नीले कमलों के समान हैं, जिनसे उन्होंने कामदेव के लिए उत्सव की सृष्टि कर दी है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *गीतगोविन्द* (१.११) का है।

लक्ष्मी-कान्तादि अवतारेर हरे मन ।
लक्ष्मी-आदि नारी-गणेर करे आकर्षण ॥ १४५ ॥

लक्ष्मी-कान्तादि अवतारेर हरे मन ।
लक्ष्मी-आदि नारी-गणेर करे आकर्षण ॥ १४५ ॥

लक्ष्मी-कान्त-आदि—लक्ष्मी-पति नारायण के; **अवतारेर**—अवतार का; **हरे**—वे हरते हैं; **मन**—मन; **लक्ष्मी**—लक्ष्मी; **आदि**—आदि; **नारी-गणेर**—सारी स्त्रियों को; **करे**—करते हैं; **आकर्षण**—आकर्षण।

अनुवाद

"वे संकर्षण के अवतार तथा लक्ष्मी-पति नारायण को भी आकर्षित करने वाले हैं। वे न केवल नारायण को अपितु नारायण की प्रेयसी लक्ष्मी समेत समस्त स्त्रियों को आकर्षित करते हैं।

द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा
मयोपनीता भुवि धर्म-गुप्तये ।
कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्
हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे ॥ १४६ ॥

द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा
मयोपनीता भुवि धर्म-गुप्तये ।

कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्
हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे ॥ १४६ ॥

द्विज-आत्म-जाः—ब्राह्मणों के पुत्र; **मे**—मेरे द्वारा; **युवयोः**—तुम दोनों का; **दिदृक्षुणा**—दर्शनाभिलाषी; **मया**—मेरे द्वारा; **उपनीताः**—लाया गया; **भुवि**—जगत् में; **धर्म-गुप्तये**—धर्म की रक्षा के लिए; **कला**—सभी शक्तियों सहित; **अवतीर्णौ**—जो अवतरित हुए; **अवनेः**—जगत् में; **भर-असुरान्**—असुरों का भार; **हत्वा**—हत्या करके; **इह**—इस आध्यात्मिक जगत् में; **भूयः**—पुनः; **त्वरया**—अति शीघ्र; **इतम्**—लौट आयें; **अन्ति**—निकट; **मे**—मेरे।

अनुवाद

"[कृष्ण तथा अर्जुन को सम्बोधित करते हुए महाविष्णु (महापुरुष) ने कहा :] 'मैं आप दोनों को देखना चाहता था, इसलिए मैं ब्राह्मण-पुत्रों को यहाँ ले आया हूँ। आप दोनों इस भौतिक जगत् में धर्म की स्थापना करने के लिए अपनी-अपनी समस्त शक्तियों समेत प्रकट हुए हैं। आप कृपया सारे असुरों का वध करने के बाद तुरन्त आध्यात्मिक जगत् में लौट जायें।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.८९.५८) का है, जिसमें ब्राह्मण-पुत्रों की खोज करते हुए अर्जुन को कृष्ण भौतिक ब्रह्माण्ड से परे ले जाने की चेष्टा करते हैं।

भगवान् महाविष्णु इस भौतिक जगत् से परे स्थित हैं। वे भी कृष्ण के स्वरूप से आकृष्ट हुए थे। वास्तव में महाविष्णु ने द्वारका से ब्राह्मण के पुत्रों को चुरा लिया था, जिससे कृष्ण तथा अर्जुन उन्हें मिलने आयें। यह श्लोक यह दिखाने के लिए उद्धृत किया गया है कि कृष्ण इतने आकर्षक हैं कि महाविष्णु भी उनसे आकर्षित थे।

কস্যানুভাবোঽস্য ন দেব বিদ্মহে
তবাঙ্ঘ্রি-রেণু-স্পরশাধিকারঃ ।
যদ্বাঞ্ছয়া শ্রীর্ললনাচরত্তপো
বিহায় কামান্সু-চিরং ধৃত-ব্রতা ॥ ১৪৭ ॥

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे
तवाङ्घ्रि-रेणु-स्परशाधिकारः ।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो
विहाय कामान्सु-चिरं धृत-व्रता ॥ १४७॥

कस्य—किसका; **अनुभावः**—परिणाम; **अस्य**—कालिय नाग का; **न**—नहीं; **देव**—मेरे प्रभु; **विद्महे**—हम जानते हैं; **तव अङ्घ्रि**—आपके चरणकमल की; **रेणु**—धूलि, रज; **स्परश**—स्पर्श के लिए; **अधिकारः**—अधिकार; **यत्**—जो; **वाञ्छया**—चाहने से; **श्रीः**—लक्ष्मी देवी; **ललना**—सर्वश्रेष्ठ नारी; **अचरत्**—किया; **तपः**—तप; **विहाय**—त्यागकर; **कामान्**—सारी इच्छाएँ; **सु-चिरम्**—लम्बे समय तक; **धृत**—नियम पालन; **व्रता**—व्रत के रूप में।

अनुवाद

"'हे प्रभु! हम नहीं जानते कि किस तरह कालिय नाग को आपके चरणकमलों की धूल स्पर्श करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके लिए लक्ष्मीजी ने अन्य सारी इच्छाएँ त्यागकर तथा दृढ़ व्रत धारण करके शताब्दियों तक तपस्या की थी। निस्सन्देह, हम नहीं जानतीं कि इस कालिय नाग को ऐसा अवसर किस तरह प्राप्त हुआ।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.१६.३६) का है जिसे कालिय नाग की पत्नियों ने कहा था।

आपन-माधुर्ये हरे आपनार मन ।
आपना आपनि चाहे करिते आलिङ्गन ॥१४८॥

आपन-माधुर्ये हरे आपनार मन ।
आपना आपनि चाहे करिते आलिङ्गन ॥ १४८॥

आपन—अपनी; **माधुर्ये**—मधुरता से; **हरे**—हरते हैं; **आपनार**—अपना ही; **मन**—मन; **आपना**—स्वयं; **आपनि**—वे; **चाहे**—चाहते हैं; **करिते**—करना; **आलिङ्गन**—आलिंगन।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण की मधुरता इतनी आकर्षक है कि वह स्वयं उन्हीं के मन को चुरा लेती है। इस तरह वे स्वयं अपने आपको भी आलिंगन करना चाहते हैं।

অপরিকলিত-পূর্বঃ কশ্চমত্কার-কারী
স্ফুরতি মম গরীয়ানেষ মাধুর্য-পূরঃ ।
অয়মহমপি হন্ত প্রেক্ষ্য যং লুব্ধ-চেতাঃ
স-রভসমুপভোক্তুং কাময়ে রাধিকেব ॥১৪৯॥

अपरिकलित-पूर्वः कश्चमत्कार-कारी
स्फुरति मम गरीयानेष माधुर्य-पूरः ।
अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य यं लुब्ध-चेताः
स-रभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेव ॥ १४९ ॥

अपरिकलित-पूर्वः—पहले कभी अनुभव नहीं किया गया; **कः**—कौन; **चमत्कार-कारी**—चमत्कार करके; **स्फुरति**—प्रकट करता है; **मम**—मेरा; **गरीयान्**—अधिक श्रेष्ठ; **एषः**—यह; **माधुर्य-पूरः**—मधुरता का आधिक्य; **अयम्**—यह; **अहम्**—मैं; **अपि**—भी; **हन्त**—हाय; **प्रेक्ष्य**—देखकर; **यम्**—जिसको; **लुब्ध-चेताः**—मेरा मन मुग्ध हो गया; **स-रभसम्**—तीव्रता से; **उपभोक्तुम्**—भोग करने के लिए; **कामये**—लालसा; **राधिका इव**—श्रीमती राधारानी की भाँति।

अनुवाद

"'द्वारका के महल के रत्नजटित खंभों में अपनी ही परछाई देखकर कृष्ण ने यह कहते हुए उसे आलिंगन करना चाहा, "हाय, मैंने इसके पूर्व इतना सुन्दर व्यक्ति नहीं देखा। यह कौन है? इसे देखकर ही मैं श्रीमती राधारानी के समान इसका आलिंगन करने को उत्सुक हो रहा हूँ।"'"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत *ललित-माधव* (८.३४) से लिया गया है।

এই ত' সঙ্ক্ষেপে কহিল কৃষ্ণের স্বরূপ ।
এবে সঙ্ক্ষেপে কহি শুন রাধা-তত্ত্ব-রূপ ॥১৫০॥

एइ त' सङ्क्षेपे कहिल कृष्णेर स्वरूप ।
एबे सङ्क्षेपे कहि शुन राधा-तत्त्व-रूप ॥ १५० ॥

एइ त'—इस प्रकार; **सङ्क्षेपे**—संक्षेप में; **कहिल**—मैंने कहा है; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण का; **स्वरूप**—स्वरूप; **एबे**—अब; **सङ्क्षेपे**—संक्षेप में; **कहि**—मैं कहूँगा; **शुन**—कृपया सुनो; **राधा**—श्रीमती राधारानी की; **तत्त्व-रूप**—वास्तविक स्थिति।

अनुवाद

तब श्री रामानन्द राय ने कहा, "इस तरह मैंने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के आदि स्वरूप को संक्षेप में कहा है। अब मैं श्रीमती राधारानी की स्थिति का वर्णन करूँगा।

कृष्णेर अनन्त-शक्ति, ताते तिन——प्रधान ।
'चिच्छक्ति', 'माया-शक्ति', 'जीव-शक्ति'-नाम ॥ १५१॥

कृष्णेर अनन्त-शक्ति, ताते तिन——प्रधान ।
'चिच्छक्ति', 'माया-शक्ति', 'जीव-शक्ति'-नाम ॥ १५१॥

कृष्णेर—भगवान् कृष्ण की; **अनन्त-शक्ति**—अनन्त शक्तियाँ; **ताते**—उसमें; **तिन**—तीन; **प्रधान**—प्रधान; **चित्-शक्ति**—आध्यात्मिक (*चित्*) शक्ति; **माया-शक्ति**—माया शक्ति; **जीव-शक्ति**—तटस्था शक्ति अथवा जीव; **नाम**—नामक।

अनुवाद

"श्रीकृष्ण की अनन्त शक्तियाँ हैं, जिन्हें तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है। ये हैं—आध्यात्मिक शक्ति, भौतिक शक्ति तथा तटस्था शक्ति जो जीवों के नाम से विख्यात है।

'अन्तरङ्गा', 'बहिरङ्गा', 'तटस्था' कहि यारे ।
अन्तरङ्गा 'स्वरूप-शक्ति'——सबार उपरे ॥ १५२॥

'अन्तरङ्गा', 'बहिरङ्गा', 'तटस्था' कहि यारे ।
अन्तरङ्गा 'स्वरूप-शक्ति'——सबार उपरे ॥ १५२॥

अन्तरङ्गा—अन्तरंगा; **बहिरङ्गा**—बहिरंगा; **तट-स्था**—तटस्था; **कहि**—हम कहते हैं; **यारे**—जिनको; **अन्तरङ्गा**—अन्तरंगा शक्ति; **स्वरूप-शक्ति**—स्वरूप शक्ति; **सबार उपरे**—सबसे ऊपर।

अनुवाद

"दूसरे शब्दों में, अन्तरंगा, बहिरंगा तथा तटस्था—ये सब भगवान् की शक्तियाँ हैं, किन्तु अन्तरंगा शक्ति भगवान् की निजी शक्ति है और अन्य दो से श्रेष्ठ है।

বিষ্ণু-শক্তিঃ পরা প্রোক্তা ক্ষেত্রজ্ঞাখ্যা তথা পরা ।
অবিদ্যা-কর্ম-সংজ্ঞান্যা তৃতীয়া শক্তিরিষ্যতে ॥ ১৫৩ ॥

বিষ্ণু-শক্তিঃ পরা প্রোক্তা ক্ষেত্রজ্ঞাখ্যা তথা পরা ।
অবিদ্যা-কর্ম-সংজ্ঞান্যা তৃতীয়া শক্তিরিষ্যতে ॥ ১৫৩ ॥

বিষ্ণু-শক্তিঃ—বিষ্ণু শক্তি; **পরা**—আধ্যাত্মিক; **প্রোক্তা**—কহী গই হৈ; **ক্ষেত্রজ্ঞ-আখ্যা**—ক্ষেত্রজ্ঞা নামক; **তথা**—তথা; **পরা**—পরা; **অবিদ্যা**—অজ্ঞান; **কর্ম**—সকাম কর্ম; **সংজ্ঞা**—সংজ্ঞা; **অন্যা**—অন্য; **তৃতীয়া**—তীসরী; **শক্তিঃ**—শক্তি; **ইষ্যতে**—ইস তরহ জানী জাতী হৈ।

অনুবাদ

"'ভগবান্ বিষ্ণু কী আদি শক্তি শ্রেষ্ঠ অর্থাৎ আধ্যাত্মিক হৈ। জীব বাস্তব মেঁ ইসী শ্রেষ্ঠ শক্তি সে সম্বন্ধিত হৈ; কিন্তু এক অন্য শক্তি ভী হৈ, জো ভৌতিক শক্তি কহলাতী হৈ। যহ তীসরী শক্তি অজ্ঞান সে ভরী হৈ।'

তাৎপর্য

যহ শ্লোক *বিষ্ণু-পুরাণ* (৬.৭.৬১) কা হৈ।

সচ্চিদানন্দ-ময় কৃষ্ণের স্বরূপ ।
অতএব স্বরূপ-শক্তি হয় তিন রূপ ॥ ১৫৪ ॥

সচ্চিদানন্দ-ময় কৃষ্ণের স্বরূপ ।
অতএব স্বরূপ-শক্তি হয় তিন রূপ ॥ ১৫৪ ॥

সত্-চিত্-আনন্দ-ময়—সত্ চিত আনন্দময়; **কৃষ্ণের**—ভগবান্ কৃষ্ণ কা; **স্বরূপ**—বাস্তবিক দিব্য রূপ; **অতএব**—অতএব; **স্বরূপ-শক্তি**—উনকী আধ্যাত্মিক নিজী শক্তি; **হয়**—হৈ; **তিন রূপ**—তীন রূপ।

অনুবাদ

"মূলতঃ ভগবান্ কৃষ্ণ সচ্চিদানন্দ-বিগ্রহ অর্থাৎ শাশ্বততা, জ্ঞান তথা আনন্দ কে দিব্য রূপ হৈঁ, অতএব উনকী নিজী শক্তি—অন্তরংগা শক্তি—কে তীন বিবিধ রূপ হৈঁ।

আনন্দাংশে 'হ্লাদিনী', সদংশে 'সন্ধিনী' ।
চিদংশে 'সম্বিৎ', যারে জ্ঞান করি' মানি ॥ ১৫৫ ॥

आनन्दांशे 'ह्लादिनी', सदंशे 'सन्धिनी' ।
चिदंशे 'सम्वित्', ग्यारे ज्ञान करि' मानि ॥ १५५ ॥

आनन्द-अंशे—आनन्द में; **ह्लादिनी**—ह्लादिनी शक्ति; **सत्-अंशे**—शाश्वत रूप में; **सन्धिनी**—सन्धिनी (सर्जनात्मक) शक्ति; **चित्-अंशे**—ज्ञान रूप में; **सम्वित्**—*सम्वित्* शक्ति; **ग्यारे**—जो; **ज्ञान**—ज्ञान; **करि'**—मानकर; **मानि**—मैं स्वीकार करता हूँ।

अनुवाद

"ह्लादिनी उनका आनन्द पक्ष है, सन्धिनी उनका शाश्वतता पक्ष है और सम्वित् ज्ञान पक्ष है।

ह्लादिनी सन्धिनी सम्वित्त्वय्येका सर्व-संश्रये ।
ह्लाद-ताप-करी मिश्रा त्वयि नो गुण-वर्जिते ॥ १५६ ॥
ह्लादिनी सन्धिनी सम्वित्त्वय्येका सर्व-संश्रये ।
ह्लाद-ताप-करी मिश्रा त्वयि नो गुण-वर्जिते ॥ १५६ ॥

ह्लादिनी—ह्लादिनी, जो आनन्द का सृजन करती है; **सन्धिनी**—आस्तित्व शक्ति; **सम्वित्**—ज्ञान की शक्ति; **त्वयि**—आपकी; **एका**—मुख्य आन्तरिक शक्ति; **सर्व-संश्रये**—आप सब शक्तियों के आगार हैं; **ह्लाद**—आनन्द; **ताप-करी**—दुःख पीड़ा का सर्जन करने वाली; **मिश्रा**—मिश्रित; **त्वयि**—आपको; **न उ**—कभी नहीं; **गुण-वर्जिते**—आप, पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

"'हे प्रभु, आप समस्त दिव्य शक्तियों के दिव्य आगार हैं। आपकी ह्लादिनी (आनन्द देने वाली शक्ति), सन्धिनी (अस्तित्व शक्ति) तथा सम्वित् (ज्ञान शक्ति) शक्तियाँ वास्तव में आपकी एक ही अन्तरंगा शक्ति हैं। बद्ध आत्मा, आध्यात्मिक होते हुए भी कभी हर्ष का अनुभव करता है, तो कभी पीड़ा का और कभी हर्ष और पीड़ा दोनों के मिश्रण का। ऐसा पदार्थ का स्पर्श होने से होता है। किन्तु आप समस्त भौतिक गुणों से परे हैं; अतएव ये गुण आप में नहीं पाये जाते। आपकी परा आध्यात्मिक शक्ति पूर्णतया दिव्य है। आपके लिए सापेक्ष हर्ष, पीड़ा या हर्षमिश्रित पीड़ा जैसी कोई वस्तु नहीं होती।'

तात्पर्य

यह श्लोक *विष्णु पुराण* (१.१२.६९) का है।

कृष्णके आह्लादे, ता'ते नाम—'ह्लादिनी' ।
सेइ शक्ति-द्वारे सुख आस्वादे आपनि ॥ १५७॥

कृष्णके आह्लादे, ता'ते नाम—'ह्लादिनी' ।
सेइ शक्ति-द्वारे सुख आस्वादे आपनि ॥ १५७॥

कृष्णके—कृष्ण को; **आह्लादे**—आनन्द देती है; **ता'ते**—अतएव; **नाम**—नाम; **ह्लादिनी**—ह्लादिनी शक्ति; **सेइ शक्ति**—उसी शक्ति; **द्वारे**—द्वारा; **सुख**—सुख; **आस्वादे**—आस्वादन करते हैं; **आपनि**—भगवान् कृष्ण स्वयं।

अनुवाद

"ह्लादिनी शक्ति कृष्ण को दिव्य आनन्द प्रदान करती है। इसी ह्लादिनी शक्ति के माध्यम से कृष्ण समस्त आध्यात्मिक आनन्द का स्वयं आस्वादन करते हैं।

सुख-रूप कृष्ण करे सुख आस्वादन ।
भक्त-गणे सुख दिते 'ह्लादिनी'—कारण ॥ १५८॥

सुख-रूप कृष्ण करे सुख आस्वादन ।
भक्त-गणे सुख दिते 'ह्लादिनी'—कारण ॥ १५८॥

सुख-रूप—सुख की मूर्ति; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **करे**—करते हैं; **सुख**—सुख; **आस्वादन**—आस्वादन; **भक्त-गणे**—भक्तों को; **सुख**—सुख; **दिते**—देने के लिए; **ह्लादिनी**—ह्लादिनी शक्ति; **कारण**—कारण।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण मूर्तिमान सुख होते हुए भी सभी प्रकार के दिव्य सुख का आस्वादन करते हैं। उनके शुद्ध भक्तों द्वारा आस्वादन किया गया सुख भी उनकी ह्लादिनी शक्ति से प्रकट होता है।

ह्लादिनीर सार अंश, तार 'प्रेम' नाम ।
आनन्द-चिन्मय-रस प्रेमेर आख्यान ॥ १५९॥

ह्लादिनीर सार अंश, तार 'प्रेम' नाम ।
आनन्द-चिन्मय-रस प्रेमेर आख्यान ॥ १५९ ॥

ह्लादिनीर—ह्लादिनी शक्ति का; **सार**—सार; **अंश**—भाग; **तार**—इसका; **प्रेम**—भगवत्प्रेम; **नाम**—नाम; **आनन्द**—आनन्द; **चित्-मय-रस**—आध्यात्मिक रस का स्तर; **प्रेमेर**—भगवत्प्रेम की; **आख्यान**—व्याख्या।

अनुवाद

"इस ह्लादिनी शक्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश भगवत्प्रेम है। फलस्वरूप भगवत्प्रेम की व्याख्या भी आनन्द से पूर्ण दिव्य रस है।

प्रेमेर परम-सार 'महाभाव' जानि ।
सेइ महाभाव-रूपा राधा-ठाकुराणी ॥ १६० ॥
प्रेमेर परम-सार 'महाभाव' जानि ।
सेइ महाभाव-रूपा राधा-ठाकुराणी ॥ १६० ॥

प्रेमेर—भगवत्प्रेम का; **परम-सार**—परम सार; **महा-भाव**—दिव्य आनन्द जिसका नाम 'महाभाव' है; **जानि**—हम जानते हैं; **सेइ**—वह; **महा-भाव-रूपा**—महाभाव दिव्य आनन्द का स्वरूप; **राधा-ठाकुराणी**—श्रीमती राधारानी।

अनुवाद

"भगवत्प्रेम का सार अंश महाभाव अर्थात् दिव्य आह्लाद कहलाता है और इस महाभाव का प्रतिनिधित्व करने वाली हैं श्रीमती राधारानी।

तयोरप्युभयोर्मध्ये राधिका सर्वथाधिका ।
महाभाव-स्वरूपेयं गुणैरतिवरीयसी ॥ १६१ ॥
तयोरप्युभयोर्मध्ये राधिका सर्वथाधिका ।
महाभाव-स्वरूपेयं गुणैरतिवरीयसी ॥ १६१ ॥

तयोः—उनका; **अपि**—तभी; **उभयोः**—दोनों (चन्द्रावली तथा राधारानी); **मध्ये**—मध्य में; **राधिका**—श्रीमती राधारानी; **सर्वथा**—सबसे; **अधिका**—अधिक; **महा-भाव-स्वरूपा**—महाभाव स्वरूपा; **इयम्**—यह; **गुणैः**—सद्गुणों से युक्त; **अतिवरीयसी**—सर्वोत्तम।

अनुवाद

"'वृन्दावन की गोपियों में श्रीमती राधारानी तथा एक अन्य गोपी

प्रमुख मानी जाती हैं। किन्तु जब हम गोपियों की परस्पर तुलना करते हैं, तो ऐसा लगता है कि श्रीमती राधारानी सबसे महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि उनके असली स्वरूप से सर्वोत्तम प्रेमभाव व्यक्त होता है। अन्य गोपियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला प्रेमभाव श्रीमती राधारानी के प्रेमभाव की बराबरी नहीं कर सकता।'

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत *उज्ज्वल नीलमणि* (४.३) से लिया गया है।

प्रेमेर 'स्वरूप-देह'—प्रेम-विभावित ।
कृष्णेर प्रेयसी-श्रेष्ठा जगते विदित ॥ १६२॥

प्रेमेर 'स्वरूप-देह'—प्रेम-विभावित ।
कृष्णेर प्रेयसी-श्रेष्ठा जगते विदित ॥ १६२॥

प्रेमेर—भगवत्प्रेम; **स्वरूप-देह**—वास्तविक शरीर; **प्रेम**—भगवत्प्रेम से; **विभावित**—प्रभावित; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण की; **प्रेयसी**—प्रिय सखियों में; **श्रेष्ठा**—श्रेष्ठ; **जगते**—सारे जगत् में; **विदित**—प्रसिद्ध हैं।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी का शरीर भगवत्प्रेम का वास्तविक रूपान्तर है। वे कृष्ण की सर्वाधिक प्रिय संगिनी हैं, जो सारे जगत् में सुप्रसिद्ध हैं।

आनन्द-चिन्मय-रस-प्रतिभाविताभिस्
ताभिर्य एव निज-रूपतया कलाभिः ।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्म-भूतो
गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥ १६३॥

आनन्द-चिन्मय-रस-प्रतिभाविताभिस्
ताभिर्य्य एव निज-रूपतया कलाभिः ।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्म-भूतो
गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि ॥ १६३॥

आनन्द—आनन्द; **चित्**—ज्ञान; **मय**—युक्त; **रस**—रस; **प्रति**—प्रतिक्षण; **भाविताभिः**—जिसमें डूबे रहते हैं; **ताभिः**—उनसे; **यः**—जो; **एव**—अवश्य; **निज-रूपतया**—अपने निजी रूप से; **कलाभिः**—जो उनकी ह्लादिनी शक्ति की कलाओं के अंग हैं; **गोलोके**—गोलोक वृन्दावन में; **एव**—निस्सन्देह; **निवसति**—निवास करते हैं; **अखिल-आत्म**—सबके आत्मा; **भूतः**—जो हैं; **गोविन्दम्**—भगवान् गोविन्द; **आदि-पुरुषम्**—आदि पुरुष; **तम्**—उनकी; **अहम्**—मैं; **भजामि**—पूजा करता हूँ।

अनुवाद

"'मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जो अपने गोलोक-धाम में राधा के साथ निवास करते हैं। ये राधा उनके आध्यात्मिक स्वरूप के समान हैं, और आनन्ददायिनी ह्लादिनी-शक्ति स्वरूपा हैं। उनकी अन्तरंग सखियाँ उनके स्वरूप के विस्तार रूप हैं, और सदैव आनन्दमय रस से परिव्याप्त रहती हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *ब्रह्म-संहिता* (५.३७) से लिया गया है।

সেই মহাভাব হয় 'চিন্তামণি-সার' ।
কৃষ্ণ-বাঞ্ছা পূর্ণ করে এই কার্য তাঁর ॥ ১৬৪॥

सेइ महाभाव हय 'चिन्तामणि-सार' ।
कृष्ण-वाञ्छा पूर्ण करे एइ कार्य्य ताँर ॥ १६४॥

सेइ—वह; **महा-भाव**—परम आनन्द; **हय**—है; **चिन्तामणि-सार**—आध्यात्मिक जीवन का सार; **कृष्ण-वाञ्छा**—भगवान् कृष्ण की सभी इच्छाएँ; **पूर्ण करे**—पूर्ण करता है; **एइ**—यह; **कार्य्य**—कार्य; **ताँर**—उनका।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी का वह महाभाव ही आध्यात्मिक जीवन का सार है। उनका एकमात्र कार्य कृष्ण की समस्त इच्छाओं को पूर्ण करना रहता है।

'মহাভাব-চিন্তামণি' রাধার স্বরূপ ।
ললিতাদি সখী—তাঁর কায়-ব্যূহ-রূপ ॥ ১৬৫॥

'महाभाव-चिन्तामणि' राधार स्वरूप ।
ललितादि सखी—ताँर काय-व्यूह-रूप ॥ १६५ ॥

महा-भाव—सर्वोच्च आध्यात्मिक आनन्द; **चिन्ता-मणि**—पारस पत्थर; **राधार स्वरूप**—श्रीमती राधारानी का दिव्य रूप; **ललिता-आदि सखी**—ललिता आदि सखियाँ; **ताँर काय-व्यूह-रूप**—उनके दिव्य शरीर की विस्तार।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी सर्वोत्तम आध्यात्मिक मणि हैं और अन्य गोपियाँ—यथा ललिता, विशाखा आदि—उनके आध्यात्मिक शरीर के विस्तार रूप हैं।

राधा-प्रति कृष्ण-स्नेह—सुगन्धि उद्वर्तन ।
ता'ते अति सुगन्धि देह—उज्ज्वल-वरण ॥ १६६ ॥

राधा-प्रति कृष्ण-स्नेह—सुगन्धि उद्वर्तन ।
ता'ते अति सुगन्धि देह—उज्ज्वल-वरण ॥ १६६ ॥

राधा-प्रति—श्रीमती राधारानी के प्रति; **कृष्ण-स्नेह**—भगवान् कृष्ण का प्रेम; **सु-गन्धि उद्वर्तन**—सुगन्धित लेप; **ता'ते**—उसमें; **अति**—अत्यन्त; **सु-गन्धि**—सुगन्धित; **देह**—शरीर; **उज्ज्वल**—चमकदार; **वरण**—कान्ति।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी का दिव्य शरीर उज्ज्वल कान्ति वाला है, तथा समस्त दिव्य सुगन्धियों से पूर्ण है। उनके प्रति कृष्ण का स्नेह सुगन्धित उबटन के समान है।

तात्पर्य

सुगन्धि उद्वर्तन अनेक सुगन्धित पदार्थों तथा सुगन्धित तेलों से बने उबटन का सूचक है। इस उबटन को सारे शरीर में लगाने से शरीर का मैल तथा पसीना मिट जाता है। श्रीमती राधारानी का शरीर स्वत: सुगन्धित है, किन्तु जब कृष्ण-स्नेह रूपी उबटन से उनके शरीर का लेप किया जाता है, तो उनका शरीर दुगुना सुगन्धित तथा उज्ज्वल कान्ति से युक्त हो जाता है। कृष्णदास कविराज गोस्वामी श्रीमती राधारानी के दिव्य शरीर का वर्णन यहीं से प्रारम्भ करते हैं। श्लोक १६५-१८१ का यह विवरण श्री रघुनाथ दास गोस्वामी कृत *प्रेमाम्भोज-*

मरन्द नामक पुस्तक पर आधारित है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने मूल संस्कृत का अनुवाद दिया है, जो इस प्रकार है :

"कृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम दिव्य भाव से पूर्ण है। यह उज्ज्वल मणि की तरह प्रतीत होता है। ऐसे दिव्य मणि से प्रकाशित राधारानी का शरीर सुगन्धि तथा कुमकुम से सज्जित किया जाता है। प्रातःकाल उनके शरीर को करुणा के अमृत से नहलाया जाता है, दोपहर के बाद यौवन के अमृत से, और सन्ध्या-समय साक्षात् कान्ति के अमृत से नहलाया जाता है। इस तरह स्नान करने से उनका शरीर चिन्तामणि रत्न की तरह उज्ज्वल हो जाता है। वे विविध प्रकार के रेशमी वस्त्र पहनती हैं, जिनमें से एक है उनकी सहज लज्जा।

"साक्षात् सौन्दर्य रूपी लाल कुमकुम और माधुर्य रस रूपी श्याम कस्तूरी से सजाने पर उनका सौन्दर्य और भी निखर उठता है। इस तरह उनका शरीर विविध रंगों से सजाया जाता है। उनके आभूषण मानो विविध भावों के लक्षण हों यथा—कम्पन, अश्रु, हर्ष, स्तम्भित होना, स्वेद, गद् गद् वाणी, शारीरिक लालिमा, उन्माद तथा आलस्य। इस तरह उनका सारा शरीर इन नौ मणियों से अलंकृत रहता है। इस पर भी उनके शरीर का सौन्दर्य उनके दिव्य गुणों के कारण बढ़ जाता है, जो उनके शरीर पर फूलों की माला के रूप में रहते है। कृष्ण के प्रति प्रेम का भाव *धीर* तथा *अधीर* कहलाता है। ऐसा भाव श्रीमती राधारानी के शरीर की ओढ़नी है, जिसे कपूर से सुसज्जित किया जाता है। कृष्ण के प्रति उनका दिव्य क्रोध मानो उनके सिर के केश की सजावट के रूप में मूर्तिमान हुआ है, और उनका सौभाग्य रूपी तिलक उनके सुन्दर मस्तक पर सुशोभित है। श्रीमती राधारानी के कान के झुमके कृष्ण के पवित्र नाम हैं तथा उन नामों का और यश का श्रवण हैं। उनके अधर कृष्ण के प्रेम भाव रूपी ताम्बूल के कारण सदैव लाल रहते हैं। उनकी आँखों में लगा काजल कृष्ण-प्रेम के कारण उत्पन्न उनकी चालाकी है। कृष्ण के साथ उनका हास-परिहास और मृदु हास्य वह कपूर है, जिससे वे सुगन्धित बनी रहती हैं। वे अपने कमरे में गर्व की सुगन्धि के सहित सोती हैं, और जब वे बिस्तर पर लेटती हैं, तब उनके प्रेममय भावावेश की दिव्य विविधता उनके विरह रूपी हार के मध्य लाकेट के समान है। उनके दिव्य स्तन कृष्ण के प्रति स्नेह तथा रोष रूपी

साड़ी से ढके रहते हैं। उनके पास *कच्छपीवीणा* नामक एक वाद्य है, जो यश तथा सौभाग्य तुल्य है और यह अन्य गोपियों के मुखों तथा स्तनों को वास्तव में सुखाने वाला है। वे हमेशा अपने दोनों हाथ अपनी गोपी सखी के कन्धे पर रखती हैं, जो उनके यौवनपूर्ण सौन्दर्य के समान है और वे अनेक दिव्य गुणों से सम्पन्न होते हुए भी कृष्ण रूपी कामदेव से पीड़ित रहती हैं। इस तरह वे पराजित हो जाती हैं। श्रील रघुनाथदास गोस्वामी अपने मुँह में तिनका दबाकर श्रीमती राधारानी को सादर नमस्कार करते हैं। वे स्तुति करते हैं, "हे गान्धर्विका, श्रीमती राधारानी, जिस प्रकार भगवान् कृष्ण किसी शरणागत आत्मा को कभी नहीं ठुकराते, उसी प्रकार कृपया आप भी मुझे नहीं ठुकरायें।" यही *प्रेमाम्भोज-मरन्द* का अनुवाद-सार है, जिसे कविराज गोस्वामी ने उद्धृत किया है।

कारुण्यामृत-धाराय स्नान प्रथम ।
तारुण्यामृत-धाराय स्नान मध्यम ॥ १६७॥

कारुण्यामृत-धाराय स्नान प्रथम ।
तारुण्यामृत-धाराय स्नान मध्यम ॥ १६७॥

कारुण्य-अमृत—दया के अमृत की; **धाराय**—धारा में; **स्नान**—स्नान; **प्रथम**—प्रथम; **तारुण्य-अमृत**—युवावस्था का अमृत; **धाराय**—धारा में; **स्नान**—स्नान; **मध्यम**—मध्य में।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी पहला स्नान करुणा रूपी अमृत की धारा में करती हैं, और दूसरा स्नान युवावस्था के अमृत में करती हैं।

तात्पर्य

श्रीमती राधारानी सर्वप्रथम अपने शरीर में कृष्ण के स्नेह का उबटन लगाती हैं। तब वे करुणा रूपी जल में स्नान करती हैं। पौगण्ड अवस्था (५-१० वर्ष की अवस्था) पार करने पर श्रीमती राधारानी सर्वप्रथम करुणा के रूप में प्रकट होती हैं। दूसरा स्नान दोपहर के समय *तारुण्यामृत* अर्थात् युवावस्था के अमृत में किया जाता है। यह उनकी नवीन तरुणावस्था की वास्तविक अभिव्यक्ति है।

लावण्यामृत-धाराय तदुपरि स्नान ।
निज-लज्जा-श्याम-पट्टसाटि-परिधान ॥ १६८॥

लावण्यामृत-धाराय तदुपरि स्नान ।
निज-लज्जा-श्याम-पट्टसाटि-परिधान ॥ १६८ ॥

लावण्य-अमृत-धाराय—शारीरिक चमक के अमृत की धारा; **तत्-उपरि**—उसके ऊपर; **स्नान**—स्नान; **निज**—निजी; **लज्जा**—लज्जा; **श्याम**—श्याम वर्ण का; **पट्ट**—रेशमी; **साटि**—वस्त्र; **परिधान**—पहनकर।

अनुवाद

"दोपहर के स्नान के बाद श्रीमती राधारानी शारीरिक कान्ति के अमृत से पुन: स्नान करती हैं और तब लज्जा रूपी वस्त्र धारण करती हैं, जो उनकी काली रेशमी साड़ी होती है।

तात्पर्य

दूसरे स्नानों के अतिरिक्त दोपहर के बाद किया जाने वाला स्नान पूर्ण सौन्दर्य के अमृत में किया जाता है। यह अमृत सौन्दर्य तथा कान्ति के निजी गुणों को बताने वाला है। इस तरह विभिन्न प्रकार के जलों में तीन स्नान किये जाते हैं। तत्पश्चात् श्रीमती राधारानी दो प्रकार के वस्त्र पहनती हैं—अधोवस्त्र तथा ऊपरी वस्त्र। ऊपरी वस्त्र गुलाबी रंग का है, जो कृष्ण के प्रति उनकी अनुरक्ति और आकर्षण है, और अधोवस्त्र जो काले रंग की रेशमी साड़ी है, जो उनकी लज्जा है।

कृष्ण-अनुराग द्वितीय अरुण-वसन ।
प्रणय-मान-कञ्चुलिकाय वक्ष आच्छादन ॥ १६९ ॥

कृष्ण-अनुराग द्वितीय अरुण-वसन ।
प्रणय-मान-कञ्चुलिकाय वक्ष आच्छादन ॥ १६९ ॥

कृष्ण-अनुराग—कृष्ण के लिए आकर्षण; **द्वितीय**—दूसरा; **अरुण-वसन**—गुलाबी वस्त्र; **प्रणय**—प्रेम के; **मान**—और क्रोध; **कञ्चुलिकाय**—छोटे ब्लाउज से; **वक्ष**—वक्ष; **आच्छादन**—ढंकना।

अनुवाद

"कृष्ण के प्रति श्रीमती राधारानी का स्नेह उनका ऊपरी वस्त्र है, जिसका रंग गुलाबी है। वे अपने स्तनों को एक दूसरे वस्त्र से ढकती हैं, जो कृष्ण के प्रति स्नेह तथा रोष से युक्त होता है।

সৌন্দর্য—কুঙ্কুম, সখী-প্রণয়—চন্দন ।
স্মিত-কান্তি—কর্পূর, তিনে—অঙ্গে বিলেপন ॥ ১৭০ ॥

সৌন্দর্য্য—কুঙ্কুম, সখী-প্রণয়—চন্দন ।
স্মিত-কান্তি—কর্পূর, তিনে—অঙ্গে বিলেপন ॥ ১৭০ ॥

সৌন্দর্য্য—উসकी व्यक्तिगत सुन्दरता; **कुङ्कुम**—कुंकुम; **सखी-प्रणय**—अपनी सखियों के लिए उनका प्रेम; **चन्दन**—चन्दन का लेप; **स्मित-कान्ति**—उनकी मुस्कान की मधुरता; **कर्पूर**—कपूर; **तिने**—इन तीन वस्तुओं से; **अङ्गे**—शरीर पर; **विलेपन**—लेप।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी के निजी सौन्दर्य की उपमा कुंकुम नामक लाल चूर्ण से की जाती है। अपनी सखियों के प्रति उनका स्नेह चन्दन-लेप की तरह है, और उनकी हँसी की मधुरता कपूर के समान है। इन सबको मिलाकर उनके शरीर पर लेप किया जाता है।

কৃষ্ণের উজ্জ্বল-রস—মৃগমদ-ভর ।
সেই মৃগমদে বিচিত্রিত কলেবর ॥ ১৭১ ॥

কৃষ্ণের উজ্জ্বল-রস—মৃগমদ-ভর ।
সেই মৃগমদে বিচিত্রিত কলেবর ॥ ১৭১ ॥

कृष्णेर उज्ज्वल-रस—मृगमद-भर ।
सेइ मृगमदे विचित्रित कलेवर ॥ १७१ ॥

कृष्णेर—भगवान् कृष्ण का; **उज्ज्वल-रस**—माधुर्य रस; **मृग-मद**—कस्तूरी का; **भर**—प्रचुर; **सेइ**—वह; **मृग-मदे**—कस्तूरी की सुगन्ध से बना; **विचित्रित**—सुशोभित; **कलेवर**—उनका सारा शरीर।

अनुवाद

"कृष्ण के प्रति माधुर्य प्रेम मानो कस्तूरी की प्रचुरता है। इसी कस्तूरी से राधारानी का सम्पूर्ण शरीर सजाया जाता है।

প্রচ্ছন্ন-মান বাম্য—ধম্মিল্ল-বিন্যাস ।
'ধীরাধীরাত্মক' গুণ—অঙ্গে পট-বাস ॥ ১৭২ ॥

প্রচ্ছন্ন-মান বাম্য—ধম্মিল্ল-বিন্যাস ।
'ধীরাধীরাত্মক' গুণ—অঙ্গে পট-বাস ॥ ১৭২ ॥

प्रच्छन्न—ढका हुआ; **मान**—क्रोध; **वाम्य**—निपुणता; **धम्मिल्ल**—बालों के गुच्छों को; **विन्यास**—संवारना; **धीर-अधीर-आत्मक**—द्वेषपूर्ण क्रोध जो कभी अभिव्यक्त किया जाता है और कभी दबा लिया जाता है; **गुण**—गुण; **अङ्गे**—शरीर पर; **पट-वास**—रेशमी कपड़े से ढकना।

अनुवाद

प्रच्छन्न मान तथा ढका हुआ क्रोध उनके केश विन्यास हैं। ईर्ष्या के कारण उत्पन्न क्रोध का गुण उनके शरीर पर पड़े रेशमी वस्त्र का आवरण है।

राग-ताम्बूल-रागे अधर उज्ज्वल ।
प्रेम-कौटिल्य——नेत्र-युगले कज्जल ॥ १७३॥

राग-ताम्बूल-रागे अधर उज्ज्वल ।
प्रेम-कौटिल्य——नेत्र-युगले कज्जल ॥ १७३॥

राग—प्रेम का; **ताम्बूल**—पान सूपारी के; **रागे**—लाल रंग से; **अधर**—होंठ; **उज्ज्वल**—चमकदार; **प्रेम-कौटिल्य**—प्रेम-व्यवहार में कपट; **नेत्र-युगले**—दोनों आँखों पर; **कज्जल**—काजल।

अनुवाद

"कृष्ण के प्रति उनकी अनुरक्ति उनके चमकीले होठों पर पान का लाल रंग है। उनकी प्रेम-कुटिलता उनकी आँखों में लगा काजल है।

'सुदीप्त-सात्त्विक' भाव, हर्षादि 'सञ्चारी' ।
एइ सब भाव-भूषण सब-अङ्गे भरि' ॥ १७४॥

'सुदीप्त-सात्त्विक' भाव, हर्षादि 'सञ्चारी' ।
एइ सब भाव-भूषण सब-अङ्गे भरि' ॥ १७४॥

सु-उद्दीप्त-सात्त्विक भाव—दीप्तिमान सात्त्विक भाव; **हर्ष-आदि**—हर्ष आदि; **सञ्चारी**—निरन्तर उपस्थित भावावेश; **एइ सब**—ये सब; **भाव**—भाव; **भूषण**—आभूषण; **सब**—सब; **अङ्गे**—शरीर; **भरि'**—भरकर।

अनुवाद

"उनके शरीर में सजे हुए गहने दीप्तिवान सात्त्विक भाव हैं, और इन

स्थायी भावों में हर्ष प्रमुख है। ये सारे भाव उनके पूरे शरीर में गहनों के समान हैं।

'किल-किञ्चितादि'-भाव-विंशति-भूषित ।
गुण-श्रेणी-पुष्पमाला सर्वाङ्गे पूरित ॥ १७५॥

'किल-किञ्चितादि'-भाव-विंशति-भूषित ।
गुण-श्रेणी-पुष्पमाला सर्वाङ्गे पूरित ॥ १७५॥

किल-किञ्चित-आदि—किलकिंचित आदि; **भाव**—भाव से; **विंशति**—बीस; **भूषित**—विभूषित; **गुण-श्रेणी**—उनके आकर्षक गुण; **पुष्प-माला**—पुष्पमाला की भाँति; **सर्व-अङ्गे**—सारे शरीर पर; **पूरित**—पूर्णरूपेण।

अनुवाद

"किलकिंचित से प्रारम्भ होने वाले बीस प्रकार के भाव-लक्षणों से उनका शरीर विभूषित है। उनके दिव्य गुणों से उनके सारे शरीर पर लटक रही फूल की माला बनी है।

तात्पर्य

किलकिंचित आदि बीस विभिन्न भावों का वर्णन इस प्रकार है—*भाव* (भाव), *हाव* (चेष्टा) तथा *हेला* (उपेक्षा) शरीर से सम्बन्धित होते हैं। आत्मा से सम्बन्धित भाव *शोभा* (सौन्दर्य), *कान्ति* (कान्ति), *दीप्ति* (प्रभा), *माधुर्य* (मधुरता), *प्रगल्भता* (अक्खड़पन), *औदार्य* (उदारता) तथा *धैर्य* (धीरज) हैं और स्वभाव से सम्बन्धित भाव हैं—*लीला* (लीला), *विलास* (आनन्दभोग), *विच्छित्ति* (सम्बन्ध तोड़ना) तथा *विभ्रम* (भ्रमित होना)। *किलकिंचित, मोट्टायित* तथा *कुट्टमित* भी ऐसे ही भाव हैं।

फूल की माला श्रीमती राधारानी के गुणों को प्रदर्शित करती है। यह माला तीन भागों में बँटी है—मानसिक, मौखिक तथा शारीरिक। उनके क्षमा तथा करुणा के गुण मानसिक हैं। उनकी कर्णप्रिय सुमधुर बातें मौखिक हैं और आयु, सौन्दर्य, कान्ति तथा लावण्य—ये उनके शारीरिक गुण हैं।

सौभाग्य-तिलक चारु-ललाटे उज्ज्वल ।
प्रेम-वैचित्त्य——रत्न, हृदय——तरल ॥ १७६॥

सौभाग्य-तिलक चारु-ललाटे उज्ज्वल ।
प्रेम-वैचित्त्य—रत्न, हृदय—तरल ॥ १७६ ॥

सौभाग्य-तिलक—सौभाग्य का तिलक; **चारु**—सुन्दर; **ललाटे**—ललाट पर; **उज्ज्वल**—उज्जवल; **प्रेम**—भगवत्प्रेम की; **वैचित्त्य**—विविधता; **रत्न**—रत्न; **हृदय**—हृदय; **तरल**—लाकेट।

अनुवाद

"उनके सुन्दर चौड़े मस्तक पर सौभाग्य का तिलक है। उनके विविध प्रेम-व्यवहार मणि हैं और उनका हृदय लाकेट है।

मध्य-वयस, सखी-स्कन्धे कर-न्यास ।
कृष्णलीला-मनोवृत्ति-सखी आश-पाश ॥ १७७ ॥
मध्य-वयस, सखी-स्कन्धे कर-न्यास ।
कृष्णलीला-मनोवृत्ति-सखी आश-पाश ॥ १७७ ॥

मध्य-वयस—किशोरावस्था; **सखी**—सखी के; **स्कन्धे**—कन्धे पर; **कर**—हाथ; **न्यास**—रखकर; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण की; **लीला**—लीलाएँ; **मनः**—मन की; **वृत्ति**—गतिविधियाँ; **सखी**—गोपियाँ; **आश-पाश**—इधर उधर।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी की गोपी सखियाँ उनकी मानसिक क्रियाएँ हैं, जो कृष्ण-लीलाओं पर ही केन्द्रित रहती हैं। वे अपना हाथ युवावस्था की प्रतीक अपनी सखी के कन्धे पर रखती हैं।

तात्पर्य

राधारानी की आठ सखियाँ कृष्ण-लीला से सम्बन्धित आनन्द की विविध प्रकार हैं। श्रीकृष्ण की इन लीलाओं के साथ के अन्य कार्यकलाप गोपिकाओं की सहायिकाओं की सूचक हैं।

निजाङ्ग-सौरभालये गर्व-पर्यङ्क ।
ता'ते वसि' आछे, सदा चिन्ते कृष्ण-सङ्ग ॥ १७८ ॥
निजाङ्ग-सौरभालये गर्व-पर्य्यङ्क ।
ता'ते वसि' आछे, सदा चिन्ते कृष्ण-सङ्ग ॥ १७८ ॥

निज-अङ्ग—उनका शरीर; **सौरभ-आलये**—सुगन्ध के धाम में; **गर्व**—गर्व; **पर्य्यङ्क**—सेज; **ता'ते**—उस पर; **वसि'**—बैठकर; **आछे**—है; **सदा**—सदा; **चिन्ते**—सोचती हैं; **कृष्ण-सङ्ग**—कृष्ण की संगति।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी की सेज साक्षात् गर्व है, जो उनकी शारीरिक सुगन्धि के धाम में स्थित है। वे सदैव उसमें आसीन होकर कृष्ण के संग के विषय में सोचती रहती हैं।

कृष्ण-नाम-गुण-यश——अवतंस काणे ।
कृष्ण-नाम-गुण-यश-प्रवाह-वचने ॥ १७९॥
कृष्ण-नाम-गुण-यश——अवतंस काणे ।
कृष्ण-नाम-गुण-यश-प्रवाह-वचने ॥ १७९॥

कृष्ण—भगवान् कृष्ण का; **नाम**—पावन नाम; **गुण**—गुण; **यश**—यश; **अवतंस**—आभूषण; **काणे**—कान पर; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण का; **नाम**—पावन नाम; **गुण**—गुण; **यश**—यश; **प्रवाह**—तरंगें; **वचने**—उनकी बातचीत में।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी के कान की बालियाँ भगवान् कृष्ण के नाम, यश तथा गुणों की प्रतीक हैं। भगवान् कृष्ण के नाम, यश तथा गुणों की महिमा उनकी वाणी को आप्लावित किये रहती है।

कृष्णके कराय श्याम-रस-मधु पान ।
निरन्तर पूर्ण करे कृष्णेर सर्व-काम ॥ १८०॥
कृष्णके कराय श्याम-रस-मधु पान ।
निरन्तर पूर्ण करे कृष्णेर सर्व-काम ॥ १८०॥

कृष्णके—कृष्ण को; **कराय**—वे प्रेरणा देती हैं; **श्याम-रस**—माधुर्य-प्रेम रस की; **मधु**—शहद; **पान**—पीना; **निरन्तर**—निरन्तर; **पूर्ण**—पूर्ण; **करे**—करती हैं; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण की; **सर्व-काम**—सब प्रकार की कामुक इच्छाएँ।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी कृष्ण को माधुर्य रस का मधु पीने के लिए प्रेरित

करती रहती हैं। फलतः वे कृष्ण की सारी काम-वासनाओं को पूरा करने में लगी रहती हैं।

कृष्णेर विशुद्ध-प्रेम-रत्नेर आकर ।
अनुपम-गुणगण-पूर्ण कलेवर ॥ १८१ ॥

कृष्णेर विशुद्ध-प्रेम-रत्नेर आकर ।
अनुपम-गुणगण-पूर्ण कलेवर ॥ १८१ ॥

कृष्णेर—भगवान् कृष्ण का; **विशुद्ध-प्रेम**—शुद्ध दिव्य प्रेम का; **रत्नेर**—अमूल्य रत्न की; **आकर**—खान; **अनुपम**—अनुपम; **गुण-गण**—गुण; **पूर्ण**—पूर्ण; **कलेवर**—दिव्य शरीर।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी कृष्ण-प्रेम रूपी अमूल्य मणियों से पूर्ण खान के सदृश हैं। उनका दिव्य शरीर अद्वितीय आध्यात्मिक गुणों से पूर्ण है।

का कृष्णस्य प्रणय-जनि-भूः श्रीमती राधिकैका
कास्य प्रेयस्यनुपम-गुणा राधिकैका न चान्या ।
जैह्म्यं केशे दृशि तरलता निष्ठुरत्वं कुचेऽस्या
वाञ्छा-पूर्त्यै प्रभवति हरे राधिकैका न चान्या ॥ १८२ ॥

का कृष्णस्य प्रणय-जनि-भूः श्रीमती राधिकैका
कास्य प्रेयस्यनुपम-गुणा राधिकैका न चान्या ।
जैह्म्यं केशे दृशि तरलता निष्ठुरत्वं कुचेऽस्या
वाञ्छा-पूर्त्यै प्रभवति हरे राधिकैका न चान्या ॥ १८२ ॥

का—कौन; **कृष्णस्य**—भगवान् कृष्ण का; **प्रणय-जनि-भूः**—कृष्ण-प्रेम का जन्मस्थान; **श्रीमती**—सर्व सुन्दरी; **राधिका**—श्रीमती राधारानी; **एका**—अकेली; **का**—कौन; **अस्य**—उनकी; **प्रेयसी**—अत्यन्त प्रिय प्रेयसी; **अनुपम-गुणा**—अत्यन्त गुणों वाली; **राधिका**—श्रीमती राधारानी; **एका**—अकेली; **न**—नहीं; **च**—भी; **अन्या**—अन्य कोई; **जैह्म्यम्**—कपट; **केशे**—बालों में; **दृशि**—नेत्रों में; **तरलता**—अस्थिरता; **निष्ठुरत्वम्**—निष्ठुरता; **कुचे**—स्तनों में; **अस्याः**—उनके; **वाञ्छा**—इच्छाओं की; **पूर्त्यै**—पूर्ति के लिए; **प्रभवति**—प्रकट करती हैं; **हरेः**—भगवान् कृष्ण के; **राधिका**—श्रीमती राधारानी; **एका**—अकेली; **न**—नहीं; **च अन्या**—और कोई।

अनुवाद

"'यदि कोई पूछे कि कृष्ण-प्रेम का उद्गम कहाँ है, तो उत्तर होगा एकमात्र श्रीमती राधारानी में। कृष्ण का सर्वाधिक प्रिय मित्र कौन है? पुन: उत्तर होगा एकमात्र श्रीमती राधारानी। अन्य कोई नहीं। श्रीमती राधारानी के बाल अत्यन्त घुंघराले हैं, उनकी दोनों आँखें हमेशा चंचल रहती हैं और उनके स्तन दृढ़ हैं। चूँकि श्रीमती राधारानी में सारे दिव्य गुण प्रकट हैं, अतएव अकेले वे ही कृष्ण की सारी इच्छाएँ पूरी करने में समर्थ हैं—अन्य कोई नहीं।'

तात्पर्य

यह श्लोक कृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत *श्री गोविन्द लीलामृत* (११.१२२) से लिया गया है। प्रश्नोत्तर के रूप में इस श्लोक में श्रीमती राधारानी की महिमा का वर्णन हुआ है।

यँार सौभाग्य-गुण वाञ्छे सत्यभामा ।
यँार ठाञि कला-विलास शिखे व्रज-रामा ॥१८३॥
यँार सौन्दर्यादि-गुण वाञ्छे लक्ष्मी-पार्वती ।
यँार पतिव्रता-धर्म वाञ्छे अरुन्धती ॥१८४॥

ग्याँर सौभाग्य-गुण वाञ्छे सत्यभामा ।
ग्याँर ठाञि कला-विलास शिखे व्रज-रामा ॥१८३॥
ग्याँर सौन्दर्ग्यादि-गुण वाञ्छे लक्ष्मी-पार्वती ।
ग्याँर पतिव्रता-धर्म वाञ्छे अरुन्धती ॥१८४॥

ग्याँर—जिनका; **सौभाग्य**—सौभाग्य; **गुण**—गुण; **वाञ्छे**—चाहती हैं; **सत्यभामा**—सत्यभामा, कृष्ण की रानियों में से एक; **ग्याँर ठाञि**—जिनसे; **कला-विलास**—चौसठ कलाएँ; **शिखे**—सीखती हैं; **व्रज-रामा**—वृन्दावन की सभी गोपियाँ; **ग्याँर**—जिनका; **सौन्दर्ग्य-आदि**—सौन्दर्य आदि; **गुण**—गुण; **वाञ्छे**—चाहती हैं; **लक्ष्मी**—भाग्य की देवी लक्ष्मी; **पार्वती**—शिवजी की पत्नी पार्वती; **ग्याँर**—जिनका; **पति-व्रता**—प्रतिव्रता; **धर्म**—धर्म; **वाञ्छे**—चाहती हैं; **अरुन्धती**—वशिष्ठ मुनि की पत्नी अरुन्धती।

अनुवाद

"यहाँ तक कि श्रीकृष्ण की रानियों में से एक सत्यभामा भी श्रीमती

राधारानी के सौभाग्य और उत्तम गुणों के लिए इच्छा करती रहती हैं। सारी गोपियाँ श्रीमती राधारानी से सजने की कला सीखती हैं और विष्णु-पत्नी लक्ष्मी तथा शिव-पत्नी पार्वती भी उनके सौन्दर्य और गुणों के लिए इच्छा करती हैं। वसिष्ठ की पतिव्रता पत्नी अरुन्धती भी श्रीमती राधारानी के पातिव्रत्य तथा धार्मिक नियमों का अनुकरण करना चाहती हैं।

যাঁর সদগুণ-গণনে কৃষ্ণ না পায় পার ।
তাঁর গুণ গণিবে কেমনে জীব ছার ॥ ১৮৫॥

य्याँर सद्गुण-गणने कृष्ण ना पाय पार ।
ताँर गुण गणिबे केमने जीव छार ॥ १८५ ॥

य्याँर—जिनके; **सत्-गुण**—सद्गुण; **गणने**—गिनने में; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **ना**—नहीं; **पाय**—पाते हैं; **पार**—सीमा; **ताँर**—उनके; **गुण**—गुण; **गणिबे**—गिन सकता है; **केमने**—कैसे; **जीव**—एक जीव; **छार**—अत्यन्त तुच्छ।

अनुवाद

"स्वयं भगवान् कृष्ण भी श्रीमती राधारानी के दिव्य गुणों का पार नहीं पा सकते, तो भला तुच्छ जीव किस प्रकार उनकी गिनती कर सकता है?"

প্রভু কহে,—জানিলুঁ কৃষ্ণ-রাধা-প্রেম-তত্ত্ব ।
শুনিতে চাহিয়ে দুঁহার বিলাস-মহত্ত্ব ॥ ১৮৬॥

प्रभु कहे,—जानिलुँ कृष्ण-राधा-प्रेम-तत्त्व ।
शुनिते चाहिये दुँहार विलास-महत्त्व ॥ १८६ ॥

प्रभु कहे—चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; **जानिलुँ**—अब मैं जान गया हूँ; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण के; **राधा**—श्रीमती राधारानी के; **प्रेम**—प्रेम का; **तत्त्व**—सत्य; **शुनिते**—सुनना; **चाहिये**—मैं चाहता हूँ; **दुँहार**—उन दोनों का; **विलास-महत्त्व**—विलास की महानता।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "अब जाकर मैं राधा तथा कृष्ण के प्रेम-तत्त्व को समझ सकता हूँ। तो भी मैं सुनने का इच्छुक हूँ कि वे दोनों ऐसे प्रेम का उपभोग किस गौरवपूर्ण ढंग से करते हैं।"

রায় কহে,—কৃষ্ণ হয় 'ধীর-ললিত' ।
নিরন্তর কাম-ক্রীড়া—যাঁহার চরিত ॥ ১৮৭॥

রায় কহে,—কৃষ্ণ হয় 'ধীর-ললিত' ।
নিরন্তর কাম-ক্রীড়া—যাঁহার চরিত ॥ ১৮৭॥

রায় কহে—রামানন্দ রায় ने उत्तर दिया; **কৃষ্ণ**—भगवान् कृष्ण; **হয়**—हैं; **ধীর-ললিত**—ऐसे व्यक्ति जो विभिन्न गुणों से अपनी प्रेमिका को सदा नियंत्रण में रख सकते हैं; **নিরন্তর**—निरन्तर; **কাম-ক্রীড়া**—काम क्रीड़ाएँ; **যাঁহার**—जिनका; **চরিত**—चरित्र।

অনুবাদ

रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "भगवान् कृष्ण धीरललित हैं, क्योंकि वे अपनी प्रेयसियों को सदा वश में रख सकते हैं। इस तरह उनका एकमात्र व्यापार है इन्द्रियतृप्ति का भोग करना।

তাৎপর্য

हमें यह सदैव स्मरण में रखना चाहिए कि कृष्ण की इन्द्रियतृप्ति की भौतिक जगत् की इन्द्रियतृप्ति से तुलना कभी नहीं करनी चाहिए। जैसाकि हम पहले कह चुके हैं, कृष्ण की इन्द्रियतृप्ति स्वर्ण जैसी है और उस इन्द्रियतृप्ति का जो विकृत रूप इस भौतिक जगत् में पाया जाता है, वह लोहे के समान है। तात्पर्य यह है कि कृष्ण निर्विशेष नहीं हैं। उनमें वे सारी इच्छाएँ रहती हैं, जो इस भौतिक जगत् में विकृत रूप में प्रकट होती हैं। किन्तु उनके गुण भिन्न हैं—एक आध्यात्मिक है और दूसरा भौतिक। जिस तरह जीवन और मृत्यु में अन्तर है, उसी तरह आध्यात्मिक इन्द्रियतृप्ति और भौतिक इन्द्रियतृप্তি में अन्तर होता है।

বিদগ্ধো নব-তারুণ্যঃ পরিহাস-বিশারদঃ ।
নিশ্চিন্তো ধীর-ললিতঃ স্যাত্প্রায়ঃ প্রেয়সী-বশঃ ॥ ১৮৮॥

বিদগ্ধো নব-তারুণ্যঃ পরিহাস-বিশারদঃ ।
নিশ্চিন্তো ধীর-ললিতঃ স্যাত্প্রায়ঃ প্রেয়সী-বশঃ ॥ ১৮৮॥

বিদগ্ধঃ—होशियार; **নব-তারুণ্যঃ**—सदा तरूण; **পরিহাস**—परिहास में; **বিশারদঃ**—निपुण; **নিশ্চিন্তঃ**—निश्चिन्त; **ধীর-ললিতঃ**—प्रेमाचार में निपुण; **স্যাত্**—है; **প্রায়ঃ**—प्रायः; **প্রেয়সী-বশঃ**—अपनी प्रेमिकाओं को नियन्त्रण में रखने वाले।

अनुवाद

"'जो व्यक्ति अत्यन्त चालाक होता है, सदैव तरुण रहता है, परिहास करने में दक्ष होता है, चिन्तारहित होता है और जो अपनी प्रेयसियों को सदैव वश में रखता है, वह धीरललित कहलाता है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृत सिन्धु* (२.१.२३०) का है।

रात्रि-दिन कुञ्जे क्रीड़ा करे राधा-सङ्गे ।
कैशोर वयस सफल कैल क्रीड़ा-रङ्गे ॥ १८९॥

रात्रि-दिन कुञ्जे क्रीड़ा करे राधा-सङ्गे ।
कैशोर वयस सफल कैल क्रीड़ा-रङ्गे ॥ १८९॥

रात्रि-दिन—दिन-रात; **कुञ्जे**—वृन्दावन की कुंजों में; **क्रीड़ा**—क्रीड़ा; **करे**—करते हैं; **राधा-सङ्गे**—राधारानी के साथ; **कैशोर**—कैशोरावस्था; **वयस**—आयु; **स-फल**—सफल; **कैल**—किया; **क्रीड़ा-रङ्गे**—विविध लीलाओं में आनन्द लेकर।

अनुवाद

"भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावन के कुंजों में श्रीमती राधारानी के सात दिन-रात क्रीड़ा करते हैं। इस तरह उनकी कैशोर अवस्था राधारानी के साथ क्रीड़ा में सफल होती है।

वाचा सूचित-शर्वरी-रति-कला-प्रागल्भ्यया राधिकां
व्रीड़ा-कुञ्चित-लोचनां विरचयन्नग्रे सखीनामसौ ।
तद्वक्षोरुह-चित्र-केलि-मकरी-पाण्डित्य-पारं गतः
कैशोरं सफली-करोति कलयन्कुञ्जे विहारं हरिः ॥ १९०॥

वाचा सूचित-शर्वरी-रति-कला-प्रागल्भ्यया राधिकां
व्रीड़ा-कुञ्चित-लोचनां विरचयन्नग्रे सखीनामसौ ।
तद्वक्षोरुह-चित्र-केलि-मकरी-पाण्डित्य-पारं गतः
कैशोरं सफली-करोति कलयन्कुञ्जे विहारं हरिः ॥ १९०॥

वाचा—वाणी से; **सूचित**—बताते हुए; **शर्वरी**—रात्रि की; **रति**—कामुक लीलाओं में; **कला**—भाग का; **प्रागल्भ्यया**—धृष्टता से; **राधिकाम्**—श्रीमती राधारानी; **व्रीड़ा**—लज्जा से;

कुञ्चित-लोचनाम्—अपने नेत्र बन्द करके; **विरचयन्**—बनाकर; **अग्रे**—आगे; **सखीनाम्**—अपनी सखियों के; **असौ**—वह; **तत्**—उनके; **वक्षः-रुह**—वक्षस्थल पर; **चित्र-केलि**—विविध क्रीड़ाएँ; **मकरी**—मछली का चित्र बनाना; **पाण्डित्य**—दक्षता की; **पारम्**—सीमा; **गतः**—जो पहुँच गये; **कैशोरम्**—किशोरावस्था; **स-फली-करोति**—सफल करते हैं; **कलयन्**—करते हुए; **कुञ्जे**—कुंजों में; **विहारम्**—विहार; **हरिः**—भगवान्।

अनुवाद

"'इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण ने गत रात्रि की रति-क्रीड़ा का वर्णन किया। इससे राधारानी ने लज्जावश अपनी आँखें बन्द कर लीं। इस अवसर का लाभ उठाते हुए श्रीकृष्ण ने उनके स्तनों पर तरह-तरह की मछलियाँ चित्रित कर दीं। इस तरह वे समस्त गोपियों के लिए अत्यन्त कुशल चित्रकार बन गये। ऐसी लीलाओं में भगवान् ने अपनी कैशोर अवस्था का पूरी तरह भोग किया।'"

तात्पर्य

यह श्लोक भी *भक्तिरसामृत सिन्धु* (२.१.११९) का है।

प्रभु कहे,—एहो हय, आगे कह आर ।
राय कहे,—ईहा वइ बुद्धि-गति नाहि आर ॥ १९१ ॥

प्रभु कहे—श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; **एहो हय**—यह सब ठीक है; **आगे कह आर**—आगे और कुछ कहो; **राय कहे**—रामानन्द राय ने उत्तर दिया; **इहा वइ**—इसके सिवाय; **बुद्धि-गति**—मेरी बुद्धि की गति; **नाहि**—नहीं है; **आर**—और अधिक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "यह तो ठीक है, किन्तु और आगे कहिये।" तब रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "मैं नहीं समझता कि मेरी बुद्धि इससे आगे जा सकती है।"

येवा 'प्रेम-विलास-विवर्त' एक हय ।
ताहा शुनि' तोमार सुख हय, कि ना हय ॥ १९२ ॥

ग्रेबा 'प्रेम-विलास-विवर्त' एक हय ।
ताहा शुनि' तोमार सुख हय, कि ना हय ॥ १९२॥

ग्रेबा—जो कुछ; **प्रेम-विलास-बिवर्त**—प्रेमाचार के आनन्द में उत्पन्न भ्रम; **एक हय**—एक है; **ताहा**—वह; **शुनि'**—सुनकर; **तोमार**—आपको; **सुख**—सुख; **हय**—है; **कि**—अथवा; **ना**—नहीं; **हय**—है।

अनुवाद

तब रामानन्द राय ने श्री चैतन्य महाप्रभु को बतलाया, "प्रेम विलास विवर्त नामक एक अन्य विषय है। चाहें तो आप उसे मुझसे सुन सकते हैं, किन्तु मैं कह नहीं सकता कि इससे आप सुखी होंगे अथवा नहीं।"

तात्पर्य

ये बातें हमारे ज्ञानवर्धन के लिए दी गई हैं, जो श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के *अमृत-प्रवाह-भाष्य* के अनुसार हैं। संक्षेप में श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से कहा, "हे रामानन्द, आपने श्रीमती राधारानी तथा कृष्ण के जीवन-लक्ष्य और लीलाओं के विषय में जो वर्णन किया, वह निश्चित रूप से सत्य है। किन्तु फिर भी, यदि कुछ और हो तो उसे भी कहें।" इस पर रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "मेरी समझ में तो अब और कुछ कहने को शेष नहीं रहा, किन्तु एक विषय और है, जिसे मैं आपको बतला सकता हूँ और वह है *प्रेमविलासविवर्त*। किन्तु मैं कह नहीं सकता कि इससे आपको सुख मिलेगा अथवा नहीं।"

एत बलि' आपन-कृत गीत एक गाहिल ।
प्रेमे प्रभु स्व-हस्ते ताँर मुख आच्छादिल ॥ १९३॥

एत बलि'—यह कहकर; **आपन-कृत**—अपना रचित; **गीत**—गीत; **एक**—एक; **गाहिल**—गाया; **प्रेमे**—भगवत्-प्रेम में; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **स्व-हस्ते**—अपने हाथ से; **ताँर**—उनका (रामानन्द राय का); **मुख**—मुख; **आच्छादिल**—ढक लिया।

अनुवाद

यह कहकर रामानन्द राय ने स्वरचित एक गीत गाना शुरू किया,

किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने भावावेश में आकर तुरन्त ही अपने हाथ से रामानन्द राय का मुँह बन्द कर दिया।

तात्पर्य

अब श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय के बीच जिन विषयों की चर्चा होने जा रही है, उन्हें न तो भौतिकतावादी कवि समझ सकता है, न उन्हें बुद्धि या भौतिक अनुभूति से समझा जा सकता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि आध्यात्मिक रस की अनुभूति केवल तभी हो सकती है, जब मनुष्य सत्त्वगुण से ऊपर दिव्य पद पर स्थित हो। यह पद *विशुद्ध सत्त्व* कहलाता है (*सत्त्वं विशुद्धं वसुदेव-शब्दितम्*)। विशुद्ध सत्त्व की अनुभूति भौतिक जगत् के क्षेत्र से परे है और इसकी अनुभूति न तो शारीरिक इन्द्रियों द्वारा हो पाती है, न मानसिक चिन्तन द्वारा। स्थूल शरीर तथा सूक्ष्म मन के साथ हमारी पहचान आध्यात्मिक ज्ञान से भिन्न होती है। चूँकि बुद्धि तथा मन भौतिक हैं, अतएव श्री राधा-कृष्ण का प्रेम उनकी अनुभूति से परे है। *सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्*—जब हम सारी भौतिक उपाधियों से मुक्त हो जाते हैं और हमारी इन्द्रियाँ भक्ति-विधि द्वारा पूर्णतया निर्मल हो जाती हैं, तब हम परम सत्य के इन्द्रिय-कार्यों को समझ सकते हैं (*हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते*)।

आध्यात्मिक इन्द्रियाँ भौतिक इन्द्रियों से परे हैं। भौतिकतावादी किसी भौतिक विविधता का निषेध ही सोच सकता है; वह आध्यात्मिक विविधता नहीं समझ सकता। वह इतना ही सोच सकता है कि आध्यात्मिक विविधता भौतिक विविधता की विरोधी मात्र है, और वह निषेध या शून्य है। किन्तु ऐसा विचार आध्यात्मिक अनुभूति के पास भी नहीं फटक पाता। स्थूल शरीर तथा सूक्ष्म मन के अश्चर्यजनक कार्यकलाप सदैव अपूर्ण रहते हैं। वे आध्यात्मिक ज्ञान की कोटि से निम्न और क्षणभंगुर हैं। आध्यात्मिक रस सदैव अद्‌भुत होता है और *पूर्ण, शुद्ध, नित्यमुक्त* (अर्थात् सारी भौतिक धारणाओं से शाश्वत रूप से मुक्त) कहा जाता है। जब हम अपनी भौतिक इच्छाएँ पूरी नहीं कर पाते, तब अवश्य ही खेद और उलझन होती है। इसे ही *विवर्त* कहा जा सकता है। किन्तु आध्यात्मिक जीवन में दुःख, उन्मत्तता या अपूर्णता नहीं

पाई जाती। श्रीमती राधारानी और कृष्ण के आध्यात्मिक कार्यकलापों को समझने में श्रील रामानन्द राय दक्ष थे और जब उन्होंने महाप्रभु से पूछा कि वे उनके आध्यात्मिक सत्य की अनुभूति की पुष्टि करते हैं या नहीं, उसी समय यह आध्यात्मिक अनुभव भी महाप्रभु के समक्ष रखा गया।

इस सम्बन्ध में तीन पुस्तकें महत्त्वपूर्ण हैं। एक तो भक्तदास बाउल कृत *विवर्त-विलास,* दूसरी जगदानन्द पण्डित प्रणीत *प्रेमविवर्त* और तीसरी श्री रामानन्द राय कृत *प्रेमविलास-विवर्त।* इनमें से भक्त दास बाउल कृत *विवर्त-विलास* अन्य दो पुस्तकों से सर्वथा भिन्न है। कभी-कभी कोई विश्वविद्यालय के विद्यार्थी अथवा प्राध्यापक इस दिव्य साहित्य को पढ़ने का प्रयास करता है और सांसारिक दृष्टि से एक समीक्षात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करने की चेष्टा करता है, ताकि वह डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त कर सके। किन्तु ऐसी अनुभूति रामानन्द राय की अनुभूति से निश्चित रूप से भिन्न है। यदि वास्तव में किसी को चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय से डाक्टरेट उपाधि लेनी हो, तो उसे सर्वप्रथम समस्त भौतिक उपाधियों से मुक्त होना होगा (*सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्*)। जो अपनी पहचान अपने भौतिक शरीर से करता है, वह श्री रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के बीच हुई वार्ता को नहीं समझ सकता। मनुष्य-निर्मित धार्मिक शास्त्र तथा दिव्य दार्शनिक वार्ताएँ सर्वथा भिन्न होती हैं—इन दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर होता है। इस विषय का वर्णन श्रीमन् मध्वाचार्य ने बड़े परिश्रमपूर्वक किया है। चूँकि भौतिक दार्शनिक जीवन की भौतिक धारणा में स्थित होते हैं, अतएव वे आध्यात्मिक *प्रेम-विलास-विवर्त* को नहीं समझ सकते। वे एक तश्तरी पर हाथी को नहीं बैठा सकते। इसी तरह भौतिक ज्ञानी भी आध्यात्मिक हाथी को अपनी सीमित अनुभूति के भीतर नहीं पकड़ पाते। यह तो मेढ़क द्वारा अटलांटिक समुद्र को अपने कुएँ से कई गुना बड़ा कल्पित करके उसकी थाह लेने जैसा प्रयास है। भौतिकतावादी दार्शनिक तथा सहजिया लोग रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के बीच राधाकृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित वार्ता को नहीं समझ सकते। निर्विशेषवादी या प्राकृत सहजियों की एकमात्र प्रवृत्ति निर्विशेषवाद के स्तर तक ही पहुँच पाती है। वे आध्यात्मिक विविधता की बात नहीं समझ सकते। इसीलिए जब

रामानन्द राय अपने बनाये श्लोक सुनाने लगे, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके मुँह को अपने हाथ से ढक दिया।

पहिलेहि राग नयन-भङ्गे भेल
अनुदिन बाढ़ल, अवधि ना गेल
ना सो रमण, ना हाम रमणी
दुँहु-मन मनोभव पेषल जानि'
ए सखि, से-सब प्रेम-काहिनी
कानु-ठामे कहबि विछुरल जानि'
ना खोँजलुँ दूती, ना खोँजलुँ आन्
दुँहुकेरि मिलने मध्य त पाँच-बाण
अबसोहि विराग, तुँहु भेलि दूती
सु-पुरुख-प्रेमकि ऐछन रीति ॥ १९४ ॥

पहिलेहि राग नयन-भङ्गे भेल
अनुदिन बाढ़ल, अवधि ना गेल
ना सो रमण, ना हाम रमणी
दुँहु-मन मनोभव पेषल जानि'
ए सखि, से-सब प्रेम-काहिनी
कानु-ठामे कहबि विछुरल जानि'
ना खोंजलुँ दूती, ना खोंजलुँ आन्
दुँहुकेरि मिलने मध्य त पाँच-बाण
अब्सोहि विराग, तुँहु भेलि दूती
सु-पुरुख-प्रेमकि ऐछन रीति॥ १९४॥

पहिलेहि—आरम्भ में; **राग**—आकर्षण; **नयन-भङ्गे**—नेत्रों की भाव-भंगिमा से; **भेल**—था; **अनु-दिन**—धीरे धीरे, दिन-प्रतिदिन; **बाढ़ल**—बढ़ गई; **अवधि**—सीमा; **ना**—नहीं; **गेल**—पहुँचा; **ना**—न; **सो**—वे; **रमण**—भोक्ता; **ना**—नहीं; **हाम**—मैं; **रमणी**—भोग्य; **दुँहु-मन**—दोनों मन; **मनः-भव**—मनोभाव; **पेषल**—दबाए जाने पर; **जानि'**—जानकर; **ए**—यह; **सखि**—हे प्रिय सखी; **से-सब**—वे सब; **प्रेम-काहिनी**—प्रेम व्यापार; **कानु-ठामे**—कृष्ण के समक्ष; **कहबि**—तुम कहोगी; **विछुरल**—वे भूल गये हैं; **जानि'**—जानते हुए; **ना**—नहीं; **खोंजलुँ**—खोज लिया; **दूती**—सन्देशवाहक; **ना**—नहीं; **खोंजलुँ**—खोजा; **आन्**—अन्य कोई; **दुँहुकेरि**—हम दोनों में से; **मिलने**—मिलन से; **मध्य**—बीच में; **त**—निस्सन्देह; **पाँच-**

बाण—कामदेव के पाँच बाण; **अब्**—अब; **सोहि**—वह; **विराग**—वियोग; **तुँहु**—तुम्हें; **भेलि**—हुआ; **दूती**—सन्देशवाहक; **सु-पुरुख**—एक सुन्दर व्यक्ति के; **प्रेमकि**—प्रेमाचार का; **ऐछन**—ऐसा; **रीति**—परिणाम।

अनुवाद

"'हाय! हमारे मिलन के पूर्व हमारे बीच चितवन के आदान-प्रदान से प्रारम्भिक अनुरक्ति हुई थी। इस तरह अनुरक्ति विकसित होती रही। यह अनुरक्ति क्रमशः बढ़ने लगी है और अब इसकी कोई सीमा नहीं रही। अब वही अनुरक्ति हमारे बीच स्वाभाविक व्यवहार बन चुकी है। ऐसा नहीं है कि यह भोक्ता कृष्ण के कारण है, न ही मुझ भोग्या के कारण है। ऐसा नहीं है। यह अनुरक्ति हमारे पारस्परिक मिलन से ही सम्भव हो सकी है। आकर्षण का यह आदान-प्रदान मनोभव अर्थात् कामदेव कहलाता है। मेरा मन और कृष्ण का मन मिलकर एक हो गया है। अब इस विरह की घड़ी में इन प्रेम-व्यापारों की व्याख्या कर पाना कठिन है। हे प्रिय सखी, सम्भव है कृष्ण ये सारी बातें भूल चुके हों, किन्तु तुम समझ सकती हो, इसलिए यह सन्देश उन तक ले जा सकती हो। किन्तु प्रथम मिलन के समय हम दोनों के बीच न तो कोई दूत था, न ही मैंने किसी से कहा था कि वह उनके पास जाए। कामदेव के पाँच बाण ही हमारे माध्यम थे। अब इस विरह की अवधि में वह आकर्षण दूसरी भावदशा तक बढ़ गया है। हे प्रिय सखी, कृपया मेरी दूती बनो, क्योंकि सुन्दर पुरुष से प्रेम करने का यही परिणाम होता है।'

तात्पर्य

इन श्लोकों की रचना पहले रामानन्द राय ने की और वे ही इन्हें गाया करते थे। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का सुझाव है कि दाम्पत्य प्रेम भोगने के समय अनुरक्ति की तुलना साक्षात् कामदेव से की जा सकती है। किन्तु वियोग के समय कामदेव अत्यन्त उन्नत प्रेम का दूत बन जाता है। यही *प्रेम-विलास-विवर्त* कहलाता है। जब वियोग होता है, तब स्वयं दाम्पत्य प्रेम का भोग दूत का काम करता है और श्रीमती राधारानी ने ऐसी दूती को सखी कहा है। ऐसे आदान-प्रदान का सार है—वियोग तथा संभोग दोनों ही में दिव्य प्रेम के व्यापार

समान रूप से आस्वाद्य है। जब श्रीमती राधारानी कृष्ण-प्रेम में पूर्णरूपेण मग्न थीं, तब वे श्याम तमाल वृक्ष को कृष्ण समझ बैठीं और उन्होंने उसे आलिंगन कर लिया। ऐसी भूल *प्रेम-विवर्त-विलास* कहलाती है।

राधाया भवतश्च चित्त-जतुनी स्वेदैर्विलाप्य क्रमाद्
यूञ्जन्नद्रि-निकुञ्ज-कुञ्जर-पते निर्धूत-भेद-भ्रमम् ।
चित्राय स्वयमन्वरञ्जयदिह ब्रह्माण्ड-हर्म्योदरे
भूयोभिर्नव-राग-हिङ्गुल-भरैः शृङ्गार-कारुः कृती ॥१९५॥

राधाया भवतश्च चित्त-जतुनी स्वेदैर्विलाप्य क्रमाद्
यूञ्जन्नद्रि-निकुञ्ज-कुञ्जर-पते निर्धूत-भेद-भ्रमम् ।
चित्राय स्वयमन्वरञ्जयदिह ब्रह्माण्ड-हर्म्योदरे
भूयोभिर्नव-राग-हिङ्गुल-भरैः शृङ्गार-कारुः कृती ॥१९५॥

राधायाः—श्रीमती राधारानी का; **भवतः च**—और आपका; **चित्त-जतुनी**—लाख की भाँति दो मन; **स्वेदैः**—पसीने से; **विलाप्य**—पिघलकर; **क्रमात्**—धीरे धीरे; **यूञ्जन्**—बनाकर; **अद्रि**—गोवर्धन पर्वत का; **निकुञ्ज**—आमोद-प्रमोद के लिए एकान्त स्थान पर; **कुञ्जर-पते**—हे हाथियों के राजा; **निर्धूत**—पूर्णतया ले जाकर; **भेद-भ्रमम्**—भेद के भ्रम को; **चित्राय**—आश्चर्य को बढ़ाने के लिए; **स्वयम्**—स्वयं; **अन्वरञ्जयत्**—रंगीन; **इह**—इस संसार में; **ब्रह्माण्ड**—ब्रह्माण्ड के; **हर्म्य-उदरे**—राजमहल के अन्दर; **भूयोभिः**—विविध साधनों से; **नव-राग**—नये आकर्षण का; **हिङ्गुल-भरैः**—सिंदूर से; **शृङ्गार**—प्रेमाचार का; **कारुः**—कारीगर; **कृती**—अत्यन्त निपुण।

अनुवाद

"'हे प्रभु, आप गोवर्धन पर्वत के जंगल में रहते हैं और आप हाथियों के राजा की तरह माधुर्य प्रेम की कला में पटु हैं। हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, आपका हृदय तथा श्रीमती राधारानी का हृदय दोनों लाख की तरह हैं और वे अब आपके आध्यात्मिक पसीने में द्रवित हो गये हैं। इसलिए अब आप में तथा राधारानी में कोई भी व्यक्ति अन्तर नहीं बता सकता। अब आपने अपने नवीन स्नेह को, जो सिन्दूर की तरह है, दोनों के द्रवित हृदयों के साथ मिश्रित कर दिया है और सारे विश्व के कल्याण हेतु इस ब्रह्माण्ड रूपी प्रासाद के भीतर दोनों के हृदयों को लाल रंग दे दिया है।'"

तात्पर्य

श्री रामानन्द राय द्वारा उद्धृत यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत *उज्ज्वल नीलमणि* (१४.१५५) का है।

प्रभु कहे,—'साध्य-वस्तुर अवधि' एइ हय ।
तोमार प्रसादे इहा जानिलुँ निश्चय ॥ १९६॥

प्रभु कहे,—'साध्य-वस्तुर अवधि' एइ हय ।
तोमार प्रसादे इहा जानिलुँ निश्चय ॥ १९६॥

प्रभु कहे—श्री चैतन्य महाप्रभु ने पुष्टि की; **साध्य-वस्तुर**—जीवन के उद्देश्य की; **अवधि'**—अवधि, सीमा; **एइ**—यह; **हय**—है; **तोमार**—आपकी; **प्रसादे**—कृपा से; **इहा**—यह; **जानिलुँ**—मैंने समझ लिया है; **निश्चय**—निश्चित रूप से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री रामानन्द राय द्वारा सुनाये गये इन श्लोकों की पुष्टि यह कहकर की, "मानव-जीवन के लक्ष्य की यही सीमा है। केवल आपकी कृपा से मैं निश्चित रूप से इसे समझ सका हूँ।

'साध्य-वस्तु' 'साधन' विनु केह नाहि पाय ।
कृपा करि' कह, राय, पाबार उपाय ॥ १९७॥

'साध्य-वस्तु' 'साधन' विनु केह नाहि पाय ।
कृपा करि' कह, राय, पाबार उपाय ॥ १९७॥

साध्य-वस्तु—जीवन का उद्देश्य; **साधन विनु**—प्रक्रिया के पालन बिना; **केह नाहि पाय**—कोई नहीं पाता; **कृपा करि'**—कृपा करके; **कह**—कृपया कहो; **राय**—मेरे प्रिय रामानन्द राय; **पाबार उपाय**—पाने का साधन।

अनुवाद

"विधि के पालन बिना जीवन-लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। अब आप मुझ पर कृपा करके उस उपाय को बतलायें, जिससे यह जीवन-लक्ष्य प्राप्त किया जा सके।"

রায় কহে,—যেই কহাও, সেই কহি বাণী ।
কি কহিয়ে ভাল-মন্দ, কিছুই না জানি ॥ ১৯৮ ॥

राय कहे,—ग्रेइ कहाओ, सेइ कहि वाणी ।
कि कहिये भाल-मन्द, किछुइ ना जानि ॥ १९८ ॥

राय कहे—रामानन्द राय ने उत्तर दिया; **ग्रेइ**—जो कुछ; **कहाओ**—आप कहलवाते हो; **सेइ**—वही; **कहि**—मैं कहता हूँ; **वाणी**—वचन; **कि**—क्या; **कहिये**—मैं कह रहा हूँ; **भाल-मन्द**—भला-बुरा; **किछुइ ना जानि**—मैं कुछ नहीं जानता।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "मैं क्या कह रहा हूँ, यह मैं नहीं जानता, किन्तु अच्छा या बुरा जो भी है, उसे आप ही मुझसे कहलवा रहे हैं। मैं तो केवल उसी सन्देश को दोहरा रहा हूँ।

ত্রিভুবন-মধ্যে ঐছে হয় কোন্ধীর ।
যে তোমার মায়া-নাটে হইবেক স্থির ॥ ১৯৯ ॥

त्रिभुवन-मध्ये ऐछे हय कोन्धीर ।
ग्रे तोमार माया-नाटे हइबेक स्थिर ॥ १९९ ॥

त्रि-भुवन-मध्ये—तीनों भुवनों में; **ऐछे**—इतना; **हय**—है; **कोन्**—कौन; **धीर**—धीर; **ग्रे**—जो; **तोमार**—आपकी; **माया-नाटे**—विभिन्न शक्तियों के छल में; **हइबेक**—होगा; **स्थिर**—स्थिर।

अनुवाद

"तीनों लोकों में ऐसा कौन अविचलित व्यक्ति होगा, जो आपकी विभिन्न शक्तियों के अदलने-बदलने पर स्थिर रह सके?

মোর মুখে বক্তা তুমি, তুমি হও শ্রোতা ।
অত্যন্ত রহস্য, শুন, সাধনের কথা ॥ ২০০ ॥

मोर मुखे वक्ता तुमि, तुमि हओ श्रोता ।
अत्यन्त रहस्य, शुन, साधनेर कथा ॥ २०० ॥

मोर मुखे—मेरे मुख से; **वक्ता**—वक्ता; **तुमि**—आप हो; **तुमि**—आप; **हओ**—हो;

श्रोता—श्रोता; **अत्यन्त रहस्य**—अत्यन्त रहस्यपूर्ण; **शुन**—अब कृपया सुनें; **साधनेर कथा**—प्रक्रिया का वृत्तान्त।

अनुवाद

"वास्तव में आप ही मेरे मुँह से बोल रहे हैं और साथ साथ आप ही सुन भी रहे हैं। यह अत्यन्त रहस्यमय है। जो भी हो, कृपा करके उस व्याख्या को सुनें जिससे लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

तात्पर्य

श्रील सनातन गोस्वामी ने हमें यह सलाह दी है कि वैष्णव के मुख से ही कृष्ण के विषय में सुना जाए। उन्होंने अवैष्णव से सुनने के लिए स्पष्ट मना किया है :

अवैष्णवमुखोद्गीर्णं पूतं हरिकथामृतम्।
श्रवणं नैव कर्तव्यं सर्पोच्छिष्टं यथा पयः॥

पद्म-पुराण का प्रमाण देते हुए उन्होंने आगाह किया है कि कोई अवैष्णव कितना ही बड़ा संसारी पण्डित क्यों न हो, उससे कृष्ण के विषय में सुनना नहीं चाहिए। जिस तरह साँप के होठों के स्पर्श से दूध जहरीला हो जाता है, उसी तरह अवैष्णव द्वारा दिया गया कृष्ण विषयक प्रवचन भी विषैला होता है। किन्तु वैष्णव द्वारा दिया गया प्रवचन आध्यत्मिक रूप से शक्तिप्रद होता है, क्योंकि वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरणागत होता है। *भगवद्गीता* (१०.१०) में भगवान् कृष्ण कहते हैं :

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

"जो निरन्तर मेरी भक्ति करते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी पूजा करते हैं, उन्हें मैं ऐसी बुद्धि देता हूँ, जिससे वे मेरे पास आ सकते हैं।" जब शुद्ध वैष्णव बोलता है, तो वह प्रामाणिक होता है। यह कैसे? क्योंकि उसकी वाणी को स्वयं कृष्ण हृदय के भीतर से व्यवस्थित करते हैं। श्रील रामानन्द राय यह आशीर्वाद श्री चैतन्य महाप्रभु से प्राप्त करते हैं, इसीलिए वे स्वीकार करते हैं कि वे जो कुछ भी बोल रहे हैं, उनकी अपनी बुद्धि से नहीं निकल रहा, प्रत्युत वह सब श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रेरित है। *भगवद्गीता* (१५.१५) के अनुसार :

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम्॥

"मैं हर एक के हृदय में स्थित हूँ और मुझ से ही स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति प्राप्त होती है। सारे वेदों के द्वारा जानने योग्य मैं ही हूँ; निश्चित रूप से, मैं ही वेदान्त का संकलनकर्ता हूँ और मैं सारे वेदों का ज्ञाता हूँ।"

सारी बुद्धि हर मनुष्य के भीतर स्थित परमात्मा से उद्भूत होती है। अभक्तगण भगवान् से इन्द्रियतृप्ति की याचना करना चाहते हैं, इसलिए वे माया के वशीभूत हो जाते हैं। किन्तु एक भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा निर्देशित होने के कारण योगमाया से प्रभावित होता है। इसीलिए एक भक्त तथा एक अभक्त के कथनों में जमीन-आसमान का अन्तर रहता है।

রাধা-কৃষ্ণের লীলা এই অতি গূঢ়তর ।
দাস্য-বাৎসল্যাদি-ভাবে না হয় গোচর ॥২০১॥

राधा-कृष्णेर लीला एइ अति गूढ़तर ।
दास्य-वात्सल्यादि-भावे ना हय गोचर ॥ २०१॥

राधा-कृष्णेर लीला—राधा-कृष्ण की लीलाएँ; **एइ**—यह है; **अति**—अत्यन्त; **गूढ़तर**—अधिक रहस्यमय; **दास्य**—दास्य; **वात्सल्य-आदि**—और वात्सल्य आदि की; **भावे**—भावों में; **ना हय**—नहीं है; **गोचर**—समझे जाने योग्य।

अनुवाद

"राधा तथा कृष्ण की लीलाएँ अत्यन्त गूढ़ हैं। उन्हें दास्य, सख्य या वात्सल्य रसों के माध्यम से नहीं समझा जा सकता।

সবে এক সখী-গণের ইহাঁ অধিকার ।
সখী হৈতে হয় এই লীলার বিস্তার ॥২০২॥

सबे एक सखी-गणेर इहाँ अधिकार ।
सखी हैते हय एइ लीलार विस्तार ॥ २०२॥

सबे—केवल; **एक**—एक; **सखी-गणेर**—गोपियों का; **इहाँ**—इसमें; **अधिकार**—अधिकार; **सखी**—गोपियों; **हैते**—से; **हय**—है; **एइ लीलार**—इन लीलाओं का; **विस्तार**—विस्तार।

अनुवाद

"वास्तव में एकमात्र गोपियों को ही यह अधिकार है कि वे इन दिव्य लीलाओं का आस्वादन करें और केवल वे ही इन लीलाओं का विस्तार कर सकती हैं।

सखी विना एই लीला পুষ্ট নাহি হয় ।
সখী লীলা বিস্তারিয়া, সখী আস্বাদয় ॥২০৩॥

सखी विना एइ लीला पुष्ट नाहि हय ।
सखी लीला विस्तारिया, सखी आस्वादय ॥ २०३॥

सखी विना—गोपियों के बिना; **एइ लीला**—ये लीलाएँ; **पुष्ट**—पोषण; **नाहि हय**—कभी नहीं होती; **सखी**—गोपियाँ; **लीला**—लीलाएँ; **विस्तारिया**—विस्तार करके; **सखी**—गोपियाँ; **आस्वादय**—इस रस का आस्वादन करती हैं।

अनुवाद

"गोपियों के बिना राधाकृष्ण की इन लीलाओं का संवर्धन नहीं हो सकता। केवल उन्हीं के सहयोग से इन लीलाओं का विस्तार होता है। इन रसों का आस्वादन करना भी उन्हीं का कार्य है।

সখী বিনা এই লীলায় অন্যের নাহি গতি ।
সখী-ভাবে যে তাঁরে করে অনুগতি ॥২০৪॥
রাধা-কৃষ্ণ-কুঞ্জসেবা-সাধ্য সেই পায় ।
সেই সাধ্য পাইতে আর নাহিক উপায় ॥২০৫॥

सखी विना एइ लीलाय अन्येर नाहि गति ।
सखी-भावे ये ताँरे करे अनुगति ॥ २०४॥
राधा-कृष्ण-कुञ्जसेवा-साध्य सेइ पाय ।
सेइ साध्य पाइते आर नाहिक उपाय ॥ २०५॥

सखी विना—गोपियों के बिना; **एइ लीलाय**—इन लीलाओं में; **अन्येर**—दूसरों का;

नाहि—नहीं है; **गति**—प्रवेश; **सखी-भावे**—गोपियों के मनोभाव में; **ये**—जो कोई भी; **ताँरे**—भगवान् कृष्ण का; **करे**—करता है; **अनुगति**—अनुगमन; **राधा-कृष्ण**—राधा कृष्ण की; **कुञ्ज-सेवा**—वृन्दावन के कुंजों में सेवा; **साध्य**—उद्देश्य; **सेइ पाय**—वह पाता है; **सेइ**—वह; **साध्य**—लक्ष्य; **पाइते**—पाने के लिए; **आर**—अन्य; **नाहिक**—नहीं है; **उपाय**—साधन।

अनुवाद

"गोपियों की सहायता के बिना इन लीलाओं में प्रवेश नहीं किया जा सकता। जो व्यक्ति गोपी भाव में भगवान् की पूजा करता है और गोपियों के पदचिह्नों पर चलता है, वही श्री श्री राधा-कृष्ण की सेवा वृन्दावन के कुंजों में कर सकता है। केवल तभी वह राधा और कृष्ण के माधुर्य रस को समझ सकता है। इसके अतिरिक्त इसे समझने का कोई अन्य उपाय नहीं है।

तात्पर्य

भगवद्धाम वापस जाने का उपाय भक्ति है, किन्तु सबमें भगवत्सेवा करने की रुचियाँ भिन्न होती हैं। कोई दास्य रस में भक्ति करने की प्रवृत्ति रखता है, तो कोई सख्य या वात्सल्य रस में। किन्तु इन सब में से कोई भी किसी को माधुर्य प्रेम में प्रवेश पाने के लिए सक्षम नहीं बना सकता। ऐसी सेवा कर पाने के लिए गोपियों के *सखी-भाव* का अनुसरण करना होगा। तभी माधुर्य रस को समझा जा सकता है।

उज्ज्वल नीलमणि में श्रील रूप गोस्वामी का उपदेश है :

प्रेमलीलाविहाराणां
सम्यग् विस्तारिका सखी
विश्रम्भरत्नपेटी च।

गोपियों तथा कृष्ण में माधुर्य रस का तथा उनके भोग का विस्तार करने वाली सखी कहलाती है। वह माधुर्य-लीलाओं में अन्तरंग गोपी होती है। ऐसी सहायिकाएँ कृष्ण के विश्वासपात्र के रूप में रत्न-स्वरूप होती हैं। सखियों के वास्तविक कार्य का विवरण *उज्ज्वल नीलमणि* में इस प्रकार मिलता है :

मिथः प्रेमगुणोत्कीर्तिस्तयोरासक्तिकारिता।
अभिसारो द्वयोरेव सख्याः कृष्णे समर्पणम्॥

नर्माश्वासननेपथ्यं हृदयोद्घाटपाटवम् ।
छिद्र संवृतिरेतस्याः पत्यादेः परिवाँचना ॥
शिक्षा संगमनं काले सेवनं व्यजनादिभिः ।
तयोर्द्वयोरुपालम्भः सन्देशप्रेषणं तथा ॥
नायिकाप्राणसंरक्षा प्रयत्नाद्याः सखी-क्रियाः ॥

कृष्ण की माधुर्य लीलाओं में कृष्ण नायक होते हैं, और राधिका नायिका। गोपीयों का पहला कार्य होता है, नायक तथा नायिका दोनों की महिमा का बखान करना। उनका दूसरा काम है, क्रमशः ऐसी परिस्थिति ला देना कि नायक नायिका के प्रति और नायिका नायक के प्रति आकृष्ट हो। उनका तीसरा काम है, उन्हें इस तरह प्रेरित करना कि वे एक-दूसरे के निकट आयें। उनका चौथा काम कृष्ण की शरण में जाना, पाँचवा हर्षमय वातावरण की सृष्टि करना, छठा उनको लीलाओं को भोग करते रहने का प्रोत्साहन देना, सातवाँ नायक तथा नायिका दोनों को सजाना-सँवारना, आठवाँ उनकी इच्छाएँ व्यक्त करने में निपुणता बताना, नौवाँ नायिका के दोषों को छिपाना, दसवाँ उसके पति तथा परिवार वालों को धोखा देना, ग्यारहवाँ शिक्षा देना, बारहवाँ उचित समय पर नायक-नायिका को मिलाना, तेरहवाँ नायक-नायिका को पंखा झलना, चौदहवाँ नायक-नायिका को कभी-कभी डाँटना, पंद्रहवाँ बातें शुरू कराना और सोलहवाँ कार्य है सभी प्रकार से नायिका की रक्षा करना।

कुछ भौतिकतावादी सहजिया, जो वास्तव में राधा तथा कृष्ण की लीलाओं को समझ नहीं सकते हैं, वे किसी प्रमाण के बिना मनोकल्पना से अपनी खुद की जीवन-शैली बनाते हैं। ऐसे सहजिया *सखीभेकी* या कभी-कभी *गौरनागरी* कहलाते हैं। वे मानते हैं कि यह भौतिक शरीर, जो कुत्तों तथा सियारों के खाने योग्य है, कृष्ण द्वारा भोग्य है। फलतः वे कृष्ण को आकृष्ट करने के लिए अपने आपको सखियाँ मानकर अपना भौतिक शरीर कृत्रिम साधनों से सजाते-सँवारते हैं। किन्तु कृष्ण कभी भी इस तरह भौतिक शरीर के सजने-सँवरने से आकृष्ट नहीं होते। जहाँ तक राधारानी और उनकी गोपियों का सम्बन्ध है, उनके शरीर, घर, वस्त्र, आभूषण, प्रयत्न तथा कार्य—सभी आध्यात्मिक होते हैं। ये सभी कृष्ण की आध्यात्मिक इन्द्रियों को तुष्ट करने के निमित्त होते हैं।

निस्सन्देह, ये सब कृष्ण को इतना प्रसन्न करने वाले तथा प्रिय हैं कि वे श्रीमती राधारानी तथा उनकी सखियों के वश में हो जाते हैं। उन्हें ब्रह्माण्ड के १४ भुवनों में किसी संसारी वस्तु से कोई वास्ता नहीं रहता। यद्यपि कृष्ण सर्वाकर्षक हैं, किन्तु इतने पर भी वे गोपियों तथा श्रीमती राधारानी के द्वारा आकृष्ट होते हैं।

किसी को मानसिक तर्कवितर्कों से बहक जाना नहीं चाहिए कि उसका भौतिक शरीर पूर्ण है, इसलिए वह सखी बन सकता है। यह *अहंग्रहोपासना* अर्थात् मायावादियों द्वारा अपने शरीर की पूजा सर्वोपरि (ब्रह्म) मानकर करने जैसी बात होगी। श्रील जीव गोस्वामी ने संसारियों को ऐसी धारणा से दूर रहने के लिए सतर्क किया है। उन्होंने यह भी चेतावनी दी है कि गोपियों के पदचिह्नों पर चले बिना अपने आपको भगवान् का संगी सोचना वैसा ही अपराध है जैसाकि अपने आपको भगवान् मानना। ऐसा सोचना अपराध है। मनुष्य को कृष्ण के साथ गोपियों की वार्ताओं को सुनते हुए वृन्दावन में रहने का अभ्यास करना चाहिए। किन्तु उसे अपने आपको गोपी नहीं मानना चाहिए, क्योंकि ऐसा सोचना अपराध है।

विभुरपि सुख-रूपः स्व-प्रकाशोऽपि भावः
क्षणमपि न हि राधा-कृष्णयोर्या ऋते स्वाः ।
प्रवहति रस-पुष्टिं चिद्विभूतीरिवेशः
श्रयति न पदमासां कः सखीनां रस-ज्ञः ॥२०६॥

विभुः—सर्व शक्तिमान; **अपि**—यद्यपि; **सुख-रूपः**—मूर्तिमान सुख; **स्व-प्रकाशः**—स्वयं प्रकाशित; **अपि**—यद्यपि; **भावः**—पूर्णरूपेण आध्यात्मिक कार्यकलाप; **क्षणम् अपि**—एक क्षण के लिए भी; **न**—कभी नहीं; **हि**—अवश्य; **राधा-कृष्णयोः**—श्री राधा और कृष्ण के; **याः**—जिनको; **ऋते**—बिना; **स्वाः**—अपने निजी संगी (गोपियाँ); **प्रवहति**—ले जाती है; **रस-पुष्टिम्**—उच्चतम रस की पूर्णता; **चित्-विभूतीः**—आध्यात्मिक शक्तियाँ; **इव**—की भाँति; **ईशः**—पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; **श्रयति**—आश्रय लेती है; **न**—नहीं; **पदम्**—पद;

आसाम्—उनका; **कः**—जो; **सखीनाम्**—निजी सखियों का; **रस-ज्ञः**—जो रस-तत्त्व से परिचित है वह।

अनुवाद

"'श्री राधा तथा कृष्ण की लीलाएँ स्वतः तेजोमय हैं। वे मूर्तिमान सुख हैं, अनन्त तथा सर्वशक्तिमान हैं। इतने पर भी ऐसी लीलाओं का आध्यात्मिक रस भगवान् की सखियों अर्थात् गोपियों के बिना कभी पुष्ट नहीं होता। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपनी आध्यात्मिक शक्तियों के बिना कभी भी पूर्ण नहीं होते। अतएव गोपियों की शरण लिए बिना कोई राधा तथा कृष्ण की संगति प्राप्त नहीं कर सकता। भला गोपियों की शरण लिए बिना राधा-कृष्ण की आध्यात्मिक लीलाओं में कौन रुचि रख सकता है?'

तात्पर्य

यह उद्धरण *गोविन्द-लीलामृत* (१०.१७) से है।

सखीर स्वभाव एक अकथ्य-कथन ।
कृष्ण-सह निज-लीलाय नाहि सखीर मन ॥२०७॥

सखीर स्वभाव एक अकथ्य-कथन ।
कृष्ण-सह निज-लीलाय नाहि सखीर मन ॥ २०७॥

सखीर—गोपियों का; **स्वभाव**—स्वभाव; **एक**—एक; **अकथ्य**—अवर्णनीय; **कथन**—वृत्तान्त; **कृष्ण-सह**—कृष्ण के साथ; **निज-लीलाय**—अपनी लीलाओं में; **नाहि**—नहीं; **सखीर**—गोपियों का; **मन**—मन।

अनुवाद

"गोपियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति (स्वभाव) अवर्णनीय है। गोपियाँ कृष्ण के साथ कभी भी स्वयं भोग करना नहीं चाहतीं।

कृष्ण सह राधिकार लीला ये कराय ।
निज-सुख हैते ताते कोटि सुख पाय ॥२०८॥

कृष्ण सह राधिकार लीला ग्रे कराय ।
निज-सुख हैते ताते कोटि सुख पाय ॥ २०८॥

कृष्ण सह—कृष्ण के साथ; **राधिकार**—श्रीमती राधारानी की; **लीला**—लीलाएँ; **ग्रे**—जो; **कराय**—वे कराती हैं; **निज-सुख**—अपने सुख; **हैते**—की अपेक्षा; **ताते**—उसमें; **कोटि**—करोड़ों गुना; **सुख**—सुख; **पाय**—उन्हें मिलता है।

अनुवाद

"जब गोपियाँ श्री श्री राधा और कृष्ण को उनकी दिव्य लीलाओं में प्रवृत्त करने का काम करती हैं, तो उनका सुख करोड़ गुना बढ़ जाता है।

राधार स्वरूप——कृष्ण-प्रेम-कल्पलता ।
सखी-गण हय तार पल्लव-पुष्प-पाता ॥ २०९॥

राधार स्वरूप——कृष्ण-प्रेम-कल्पलता ।
सखी-गण हय तार पल्लव-पुष्प-पाता ॥ २०९॥

राधार स्वरूप—श्रीमती राधारानी का आध्यात्मिक स्वभाव; **कृष्ण-प्रेम**—कृष्ण-प्रेम की; **कल्प-लता**—लता; **सखी-गण**—गोपियाँ; **हय**—हैं; **तार**—उस लता की; **पल्लव**—शाखाएँ; **पुष्प**—पुष्प; **पाता**—पत्तियाँ।

अनुवाद

"स्वभाव से श्रीमती राधारानी भगवत्प्रेम की लता के समान हैं और गोपियाँ उस लता की टहनियाँ, फूल तथा पत्तियाँ हैं।

कृष्ण-लीलामृत यदि लताके सिञ्चय ।
निज-सुख हैते पल्लवाद्येर कोटि-सुख हय ॥ २१०॥

कृष्ण-लीलामृत ग्रदि लताके सिञ्चय ।
निज-सुख हैते पल्लवाद्येर कोटि-सुख हय ॥ २१०॥

कृष्ण-लीलामृत—कृष्ण लीलाओं का अमृत; **ग्रदि**—यदि; **लताके**—लता को; **सिञ्चय**—सींचता है; **निज-सुख हैते**—अपने निजी सुख की अपेक्षा; **पल्लव-आद्येर**—शाखाओं का, पुष्पों और पत्तों का; **कोटि**—करोड़ गुना; **सुख**—सुख; **हय**—होता है।

अनुवाद

"जब इस लता पर कृष्ण-लीला रूपी अमृत छिड़का जाता है, तो टहनियों, फूलों तथा पत्तियों को जो सुख मिलता है, वह लता की तुलना में एक करोड़ गुना अधिक होता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में कहा है, "श्रीमती राधारानी भगवत्प्रेम की लता हैं और गोपियाँ टहनियों, फूलों तथा पत्तियों के समान हैं। जब लता पर जल छिड़का जाता है, तो टहनियाँ, फूल तथा पत्तियाँ अप्रत्यक्ष रूप से लता को मिलने वाले सारे लाभ प्राप्त करती हैं। किन्तु लता की जड़ में डाला गया जल जितना प्रभावशाली होता है उतना टहनियों, फूलों तथा पत्तियों पर सीधे डाला गया जल नहीं होता। जब गोपियाँ कृष्ण से सीधे मिलती हैं, तब वे उतनी प्रसन्न नहीं होतीं, जितनी कि वे श्रीमती राधारानी को कृष्ण से मिलाने के बाद होती हैं। उनका दिव्य आनन्द उन्हें मिलाने में निहित है।"

सख्यः श्री-राधिकाया व्रज-कुमुद-विधोर्ह्लादिनी-नाम-शक्तेः
सारांश-प्रेम-वल्ल्याः किसलय-दल-पुष्पादि-तुल्याः स्व-तुल्याः ।
सिक्तायां कृष्ण-लीलामृत-रस-निचयैरुल्लसन्त्याममुष्यां
जातोल्लासाः स्व-सेकाच्छत-गुणमधिकं सन्ति यत्तन्न चित्रम् ॥२११॥

सख्यः श्री-राधिकाया व्रज-कुमुद-विधोर्ह्लादिनी-नाम-शक्तेः
सारांश-प्रेम-वल्ल्याः किसलय-दल-पुष्पादि-तुल्याः स्व-तुल्याः ।
सिक्तायां कृष्ण-लीलामृत-रस-निचयैरुल्लसन्त्याममुष्यां
जातोल्लासाः स्व-सेकाच्छत-गुणमधिकं सन्ति यत्तन्न चित्रम् ॥ २११ ॥

सख्यः—ललिता एवं विशाखा जैसी सखियाँ; **श्री-राधिकायाः**—श्रीमती राधारानी की; **व्रज-कुमुद**—व्रज भूमि के कमल समान निवासियों के; **विधोः**—चन्द्र (कृष्ण) की; **ह्लादिनी**—ह्लादिनी; **नाम**—नामक; **शक्तेः**—शक्ति; **सार-अंश**—सक्रिय सिद्धान्त; **प्रेम-वल्ल्याः**—भगवत्-प्रेम की लता के; **किसलय**—नये उगे; **दल**—पत्ते; **पुष्प**—फूल; **आदि**—आदि; **तुल्याः**—समान; **स्व-तुल्याः**—उसके समान; **सिक्तायाम्**—सींचने पर; **कृष्ण-लीला**—कृष्ण लीलाओं के; **अमृत**—अमृत के; **रस-निचयैः**—रस की बूंदों से; **उल्लसन्त्याम्**—चमकते हुए; **अमुष्याम्**—उनके (श्रीमती राधारानी के); **जात-उल्लासाः**—आनन्द जागृत करके; **स्व-सेकात्**—अपने ऊपर छिड़काव की अपेक्षा; **शत-गुणम्**—सौ गुना; **अधिकम्**—अधिक; **सन्ति**—हैं; **यत्**—जो; **तत्**—वह; **न**—नहीं; **चित्रम्**—आश्चर्यजनक।

अनुवाद

"'श्रीमती राधारानी की निजी सखियाँ—सारी गोपियाँ—उन्हीं के समान हैं। जिस तरह चन्द्रमा कमल-पुष्पों को अच्छा लगता है, कृष्ण उसी तरह व्रजभूमि के निवासियों को अच्छे लगते हैं। उनकी आनन्ददायिनी शक्ति आह्लादिनी कहलाती है, जिसका मुख्य सक्रिय तत्त्व श्रीमती राधारानी हैं। उनकी उपमा उस लता से दी जाती है, जिसमें नये-नये फूल तथा कोंपले लगी हैं। जब कृष्ण-लीला रूपी अमृत श्रीमती राधारानी पर छिड़का जाता है, तो उनकी सारी सखियों (गोपियाँ) को, वह अमृत अपने ऊपर छिड़के जाने की अपेक्षा, सैकड़ों गुना अधिक आनन्द का अनुभव होता है। वास्तव में यह तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है।'

तात्पर्य

यह श्लोक भी *गोविन्द लीलामृत* (१०.१६) से लिया गया है।

यद्यपि सखीर कृष्ण-सङ्गमे नाहि मन ।
तथापि राधिका यत्ने करान सङ्गम ॥२१२॥

यद्यपि सखीर कृष्ण-सङ्गमे नाहि मन ।
तथापि राधिका यत्ने करान सङ्गम ॥ २१२॥

यद्यपि—यद्यपि; **सखीर**—गोपियों का; **कृष्ण-सङ्गमे**—कृष्ण के साथ प्रत्यक्ष संगम; **नाहि**—नहीं; **मन**—मन; **तथापि**—तथापि; **राधिका**—श्रीमती राधारानी; **यत्ने**—बड़े प्रयत्न से; **करान**—कराती हैं; **सङ्गम**—कृष्ण से संगम।

अनुवाद

"यद्यपि श्रीमती राधारानी की सखियाँ (गोपियाँ) कृष्ण के साथ प्रत्यक्ष भोग नहीं करना चाहतीं, किन्तु श्रीमती राधारानी श्रीकृष्ण को गोपियों के साथ भोग करने के लिए प्रेरित करने का काफी प्रयत्न करती हैं।

नाना-च्छले कृष्णे प्रेरि' सङ्गम करायं ।
आत्म-कृष्ण-सङ्ग हैते कोटि-सुख पाय ॥२१३॥

नाना-च्छले कृष्णे प्रेरि' सङ्गम कराय ।
आत्म-कृष्ण-सङ्ग हैते कोटि-सुख पाय ॥ २१३ ॥

नाना-छले—विविध बहानों से; **कृष्णे**—कृष्ण को; **प्रेरि'**—भेजकर; **सङ्गम**—प्रत्यक्ष संग; **कराय**—कराती हैं; **आत्म-कृष्ण-सङ्ग**—कृष्ण के साथ निजी संग; **हैते**—की अपेक्षा; **कोटि-सुख**—करोड़ गुना सुख; **पाय**—वे पाती हैं।

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी कभी-कभी तरह-तरह के बहानों से गोपियों को कृष्ण के पास भेजती हैं, जिससे वे उनका प्रत्यक्ष संग कर सकें। ऐसे अवसरों पर उन्हें अपने प्रत्यक्ष मिलन की अपेक्षा एक करोड़ गुना अधिक सुख मिलता है।

अन्योन्ये विशुद्ध प्रेमे करे रस पुष्ट ।
ताँ-सवार प्रेम देखि' कृष्ण हय तुष्ट ॥२१४॥
अन्योन्ये विशुद्ध प्रेमे करे रस पुष्ट ।
ताँ-सबार प्रेम देखि' कृष्ण हय तुष्ट ॥ २१४ ॥

अन्योन्ये—आपस में; **विशुद्ध**—विशुद्ध, दिव्य; **प्रेमे**—भगवत्प्रेम में; **करे**—करती है; **रस**—रस; **पुष्ट**—वर्धन; **ताँ-सबार**—उन सबका; **प्रेम**—भगवत्प्रेम; **देखि'**—देखकर; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **हय**—हो जाते हैं; **तुष्ट**—सन्तुष्ट।

अनुवाद

"भगवत्प्रेम के पारस्परिक व्यवहार में दिव्य रस की पुष्टि होती है। जब कृष्ण यह देखते हैं कि गोपियों ने उनके लिए किस तरह से शुद्ध प्रेम विकसित कर लिया है, तो वे अत्यधिक तुष्ट होते हैं।

तात्पर्य

श्रीमती राधारानी तथा गोपियों को कृष्ण के संग से प्राप्त होने वाले अपने खुद के सुख में कोई रुचि नहीं है। प्रत्युत वे कृष्ण के साथ एक-दूसरे को मिलते देखकर सुखी होती हैं। इस तरह भगवत्प्रेम से उनके आदानप्रदान और अधिक पुष्ट होते हैं, जिसे देखकर कृष्ण अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।

सहज गोपीर प्रेम,—नहे प्राकृत काम ।
काम-क्रीड़ा-साम्ये तार कहि 'काम'-नाम ॥२१५॥

सहज गोपीर प्रेम,—नहे प्राकृत काम ।
काम-क्रीड़ा-साम्ये तार कहि 'काम'-नाम ॥ २१५ ॥

सहज—स्वाभाविक; **गोपीर**—गोपियों का; **प्रेम**—भगवत्प्रेम; **नहे**—नहीं है; **प्राकृत**—भौतिक; **काम**—कामवासना; **काम-क्रीड़ा**—कामुक क्रीड़ा; **साम्ये**—के समान लगने में; **तार**—ऐसी गतिविधियों का; **कहि**—मैं कहता हूँ; **काम-नाम**—"कामवासना" नाम।

अनुवाद

"यह ध्यान देने की बात है कि परम भगवान् से प्रेम करना गोपियों का सहज गुण है। उनकी कामेच्छा की तुलना भौतिक कामवासना से नहीं की जानी चाहिए। फिर भी कभी-कभी उनकी इच्छा भौतिक कामवासना जैसी प्रतीत होती है, इसलिए कभी-कभी कृष्ण के प्रति उनका दिव्य प्रेम "काम" कहकर पुकारा जाता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि दिव्य ज्ञान से पूर्ण कृष्ण पर भौतिक कामवासना कभी भी आरोपित नहीं की जानी चाहिए। भौतिक कामवासना को भगवान् की सेवा में नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि यह भौतिकतावादियों पर ही लागू होता है, कृष्ण पर नहीं। कृष्ण की तुष्टि के लिए केवल *प्रेम* अर्थात् भगवत्प्रेम उपयोगी है। *प्रेम* भगवान् के प्रति की गई पूर्ण सेवा है। गोपियों का काम-व्यापार वास्तव में सर्वोच्च भगवत्प्रेम है, क्योंकि गोपियाँ कभी-भी अपनी निजी तुष्टि के लिए कार्य नहीं करतीं। वे अन्य गोपियों को भगवान् की सेवा में लगा करके ही प्रसन्न होती हैं। गोपियों को स्वयं भगवान् की सेवा में लगकर उतनी प्रसन्नता नहीं होती, जितनी कि अन्य गोपियों को उनकी सेवा में लगाने से होती है। भौतिक काम तथा भगवत्प्रेम में यही अन्तर है। कामवासना भौतिक जगत् पर लागू होती है और भगवत्प्रेम केवल कृष्ण पर लागू होता है।

प्रेमैव गोप-रामाणां काम इत्यगमत्प्रथाम् ।
इत्युद्धवादयोऽप्येतं वाञ्छन्ति भगवत्प्रियाः ॥२१६॥

प्रेमैव गोप-रामाणां काम इत्यगमत्प्रथाम् ।
इत्युद्धवादयोऽप्येतं वाञ्छन्ति भगवत्प्रियाः ॥ २१६ ॥

प्रेमा—भगवत्प्रेम; **एव**—अवश्य; **गोप-रामाणाम्**—सभी गोपियों की; **कामः**—कामवासना; **इति**—इस प्रकार; **अगमत्**—सामयिक हो गया; **प्रथाम्**—प्रथा; **इति**—इस प्रकार; **उद्धव-आदयः**—ऊद्धव आदि सभी भक्त; **अपि**—निश्चित रूप से; **एतम्**—इस प्रकार के व्यवहार को; **वाञ्छन्ति**—चाहते हैं; **भगवत्-प्रियाः**—जो भगवान् को अत्यन्त प्रिय हैं।

अनुवाद

"'गोपियों के कृष्ण के साथ व्यवहार शुद्ध भगवत्प्रेम के स्तर पर होते हैं। किन्तु कभी-कभी उन्हें काममय मान लिया जाता है। किन्तु ऐसे व्यवहार सर्वथा आध्यात्मिक होते हैं, अतएव उद्धव जैसे भगवान् के अन्य अत्यन्त प्रिय भक्त भी उनमें भाग लेने के इच्छुक रहते हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.२.२८५) का है।

निजेन्द्रिय-सुख-हेतु कामेर ताण्पर्य ।
कृष्ण-सुख-ताण्पर्य गोपी-भाव-वर्य ॥ २१७ ॥
निजेन्द्रिय-सुख-हेतु कामेर तात्पर्य्य ।
कृष्ण-सुख-तात्पर्य्य गोपी-भाव-वर्य्य ॥ २१७ ॥

निज-इन्द्रिय—अपनी इन्द्रियों के; **सुख**—सुख के; **हेतु**—कारण से; **कामेर**—कामुक इच्छा; **तात्पर्य्य**—चेष्टा; **कृष्ण**—कृष्ण के; **सुख**—सुख; **तात्पर्य्य**—अभिप्राय; **गोपी-भाव-वर्य्य**—गोपियों का सर्वप्रथम मनोभाव।

अनुवाद

"कामेच्छाओं का अनुभव तब होता है, जब कोई अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए उत्सुक रहता है। किन्तु गोपियों का भाव ऐसा नहीं होता। उनकी एकमात्र इच्छा कृष्ण की इन्द्रियों को तृप्त करना है।

निजेन्द्रिय-सुख-वाञ्छा नाहि गोपिकार ।
कृष्णे सुख दिते करे सङ्गम-विहार ॥ २१८ ॥

निजेन्द्रिय-सुख-वाञ्छा नाहि गोपिकार ।
कृष्णे सुख दिते करे सङ्गम-विहार ॥ २१८ ॥

निज-इन्द्रिय-सुख—अपने इन्द्रिय सुख के लिए; **वाञ्छा**—इच्छा; **नाहि**—नहीं है; **गोपिकार**—गोपियों की; **कृष्णे**—कृष्ण को; **सुख**—सुख; **दिते**—देने के लिए; **करे**—करती हैं; **सङ्गम-विहार**—कृष्ण के साथ विहार।

अनुवाद

"गोपियों में अपनी खुद की इन्द्रियतृप्ति की रंचमात्र इच्छा नहीं है। उनकी एकमात्र इच्छा कृष्ण को आनन्द देने की होती है। इसी कारण वे उनसे मिलती हैं और उनके साथ भोग करती हैं।

यत्ते सुजात-चरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किं स्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ २१९ ॥

यत्ते सुजात-चरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किं स्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ २१९ ॥

यत्—क्योंकि; **ते**—आपके; **सुजात**—कोमल; **चरण-अम्बु-रुहम्**—चरणकमल; **स्तनेषु**—स्तनों पर; **भीताः**—डरकर; **शनैः**—बड़ी सावधानी से; **प्रिय**—हे प्रिय; **दधीमहि**—हम रखती हैं; **कर्कशेषु**—बहुत कठोर; **तेन**—ऐसे चरणकमलों से; **अटवीम्**—वन; **अटसि**—आप भ्रमण करते हो; **तत् व्यथते**—उन्हें पीड़ा होती है; **न**—नहीं; **किम् स्वित्**—क्या; **कूर्प-आदिभिः**—छोटे कंकरों से; **भ्रमति**—विचलित होती है; **धीः**—बुद्धि; **भवत्-आयुषाम्**—उन लोगों की जो आपको अपना जीवन समझते हैं; **नः**—हमारे।

अनुवाद

"[सारी गोपियों ने कहा :] 'हे कृष्ण, हम आपके कोमल चरणकमलों को बड़ी सावधानी से अपने कठोर स्तनों पर रखती हैं। जब आप जंगल में विचरण करते हैं, तो आपके कोमल चरणकमलों में कंकड़-पत्थर लगते हैं। हम डरती रहती हैं कि इससे आपको पीड़ा होती होगी। चूँकि आप हमारे जीवन और आत्मा हैं, अतएव जब आपके

चरणकमलों को पीड़ा पहुँचती हैं, तो हमारे मन अत्यन्त विचलित हो उठते हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (१०.३१.१९) से लिया गया है।

सेइ गोपी-भावामृते याँर लोभ हय ।
वेद-धर्म-लोक त्यजि' से कृष्णे भजय ॥२२०॥

सेइ गोपी-भावामृते याँर लोभ हय ।
वेद-धर्म-लोक त्यजि' से कृष्णे भजय ॥ २२० ॥

सेइ—वह; **गोपी**—गोपियों के; **भाव-अमृते**—प्रेमावेश के अमृत में; **याँर**—जिनका; **लोभ**—लोभ, आसक्ति; **हय**—है; **वेद-धर्म**—वेदों का धर्म; **लोक**—लोगों की सम्मति; **त्यजि'**—त्यागकर; **से**—वह; **कृष्णे**—कृष्ण को; **भजय**—प्रेमयुक्त सेवा करता है।

अनुवाद

"जो व्यक्ति गोपियों के ऐसे प्रेमभाव से आकृष्ट है, वह वैदिक जीवन के विधानों या लोकमत की परवाह नहीं करता। प्रत्युत वह कृष्ण की शरण में पूर्णतया जाकर उनकी सेवा करता है।

रागानुग-मार्गे ताँरे भजे येई जन ।
सेई-जन पाय ब्रजे ब्रजेन्द्र-नन्दन ॥२२१॥

रागानुग-मार्गे ताँरे भजे येइ जन ।
सेइ-जन पाय व्रजे व्रजेन्द्र-नन्दन ॥ २२१ ॥

राग-अनुग—स्वाभाविक आसक्ति; **मार्गे**—मार्ग से; **ताँरे**—कृष्ण की; **भजे**—पूजा करता है; **येइ**—जो; **जन**—व्यक्ति; **सेइ-जन**—वही व्यक्ति; **पाय**—पाता है; **व्रजे**—वृन्दावन में; **व्रजेन्द्र-नन्दन**—नन्द महाराज के पुत्र को।

अनुवाद

"जो व्यक्ति रागानुग मार्ग पर (स्वतःस्फूर्त प्रेम से) भगवान् की पूजा करता है और वृन्दावन जाता है, उसे नन्द महाराज के पुत्र व्रजेन्द्रनन्दन की शरण प्राप्त होती है।

तात्पर्य

कृष्ण की सेवा करने की कुल ६४ विधियाँ हैं और ये शास्त्रों में निर्देशित और गुरु द्वारा दिये गये विधि-विधान हैं। इन विधियों के अनुसार कृष्ण की सेवा करनी चाहिए, किन्तु यदि व्रजभूमि में वास करने वाले भक्तों के समान किसी में कृष्ण-प्रेम का सहज उदय होता है, तो वह *रागानुग-भक्ति* के स्तर पर स्थित हो जाता है। स्वत:स्फूर्त रागानुग भक्ति प्राप्त करने वाला व्यक्ति व्रजभूमि के निवासियों जैसा पद प्राप्त करता है। व्रजभूमि में कृष्ण-भक्ति के लिए कोई विधान नहीं बनाये गये हैं। हर काम सहज भाव से कृष्ण-प्रेम में किया जाता है। यहाँ वैदिक विधि के नियमों का पालन करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। ऐसे नियमों का पालन तो इस भौतिक जगत् में किया जाता है। जब तक कोई भौतिक स्तर पर होता है, तब तक उसके लिए उन नियमों का पालन करना आवश्यक है। लेकिन कृष्ण का स्वत:स्फूर्त रागानुग प्रेम तो दिव्य होता है। लगने को ऐसा लगता है कि विधि-विधानों का अतिक्रमण हो रहा है, किन्तु भक्त दिव्य पद पर स्थित होता है। ऐसी सेवा *गुणातीत* या *निर्गुण* कहलाती है, क्योंकि वह भौतिक प्रकृति के तीन गुणों द्वारा कलुषित नहीं होती।

व्रज-लोकेर कोन भाव लञा येई भजे ।
भाव-योग्य देह पाञा कृष्ण पाय व्रजे ॥२२२॥

व्रज-लोकेर कोन भाव लञा येइ भजे ।
भाव-योग्य देह पाञा कृष्ण पाय व्रजे ॥ २२२॥

व्रज-लोकेर—गोलोक वृन्दावन का; **कोन**—कोई; **भाव**—भाव; **लञा**—स्वीकार करके; **येइ**—जो कोई; **भजे**—भक्ति करता है; **भाव-योग्य**—उस आध्यात्मिक आकर्षण के योग्य; **देह**—शरीर; **पाञा**—पाकर; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **पाय**—पाकर; **व्रजे**—वृन्दावन में।

अनुवाद

"इस मुक्त अवस्था में भक्त भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति के पाँच रसों में से किसी एक रस के द्वारा आकृष्ट होता है। वह उसी भाव से भगवान् की सेवा करते रहने से गोलोक वृन्दावन में कृष्ण की सेवा करने के लिए आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करता है।

তাহাতে দৃষ্টান্ত—উপনিষদ্শ্রুতি-গণ ।
রাগ-মার্গে ভজি' পাইল ব্রজেন্দ্র-নন্দন ॥২২৩॥

তাহাতে দৃষ্টান্ত—উপনিষদ্শ্রুতি-গণ ।
রাগ-মার্গে ভজি' পাইল ব্রজেন্দ্র-নন্দন ॥ ২২৩॥

তাহাতে—इस विषय पर; **दृष्टान्त**—उदाहरण; **उपनिषद् श्रुति-गण**—मूर्तिमान उपनिषद् और श्रुतियाँ रूपी संत ; **राग-मार्गे**—स्वत:स्फूर्त प्रेम के मार्ग पर; **भजि'**—पूजा करके; **पाइल**—पाया; **व्रजेन्द्र-नन्दन**—भगवान् कृष्ण के चरणकमल।

अनुवाद

"जो सन्तजन उपनिषदों का प्रतिनिधित्व करते हैं, वे इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। रागानुग प्रेम के मार्ग पर भगवान् की पूजा करके उन्होंने नन्द महाराज के पुत्र व्रजेन्द्रनन्दन के चरणकमल प्राप्त किये।

तात्पर्य

गोलोक वृन्दावन ग्रह में कृष्ण के सेवकों में रक्तक तथा पत्रक प्रमुख हैं। श्रीदामा, सुबल आदि उनके मुख्य सखा हैं। वहाँ पर प्रौढ़ गोपियाँ तथा गोप भी हैं, जिनमें नन्द महाराज, माता यशोदा तथा अन्य प्रमुख हैं। ये सारे व्यक्ति कृष्ण के प्रति अपनी-अपनी अनुरक्ति के अनुसार भगवान् की प्रेममयी सेवा में सदैव लगे रहते हैं। जो व्यक्ति भगवान् की प्रत्यक्ष सेवा करने के लिए भगवत्-धाम लौटना चाहता है, वह कृष्ण की ओर सेवक, सखा, पिता अथवा माता के रूप में आकर्षित हो सकता है। इस जीवन में विशेष भाव में कृष्ण की निरन्तर सेवा करते रहने से इस भौतिक शरीर के त्यागने पर मनुष्य उपयुक्त आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करता है, जिससे वह उसी विशेष भाव में कृष्ण की सेवा कर सके। वह दास, सखा, पिता या माता के रूप में सेवा कर सकता है। इसी तरह यदि कोई व्यक्ति माधुर्य भाव से कृष्ण की सेवा करना चाहता है, तो वह गोपियों के मार्गदर्शन में वैसा ही शरीर प्राप्त कर सकता है। इस सम्बन्ध में सबसे ज्वलन्त उदाहरण उन सन्त पुरुषों का है, जिन्हें *श्रुति* कहा गया है और जो उपनिषदों का प्रतिनिधत्व करते हैं। ये श्रुतिगण यह समझते थे कि कृष्ण की सेवा किये बिना तथा गोपियों के पदचिह्नों का अनुसरण किये बिना भगवद्धाम में प्रवेश करने की एवं माधुर्य प्रेम में कृष्ण की सेवा करने की कोई

सम्भावना नहीं है। इसीलिए वे कृष्ण की स्वत:स्फूर्त रागानुगा भक्ति करते थे और गोपियों के चरणचिह्नों का अनुसरण करते थे।

निभृत-मरुन्मनोऽक्ष-दृढ़-योग-युजो हृदि यन्
मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् ।
स्त्रिय उरगेन्द्र-भोग-भुज-दण्ड-विषक्त-धियो
वयमपि ते समाः सम-दृशोऽङ्घ्रि-सरोज-सुधाः ॥२२४॥

निभृत-मरुन्मनोऽक्ष-दृढ़-योग-युजो हृदि यन्
मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् ।
स्त्रिय उरगेन्द्र-भोग-भुज-दण्ड-विषक्त-धियो
वयमपि ते समाः सम-दृशोऽङ्घ्रि-सरोज-सुधाः ॥ २२४॥

निभृत—नियन्त्रित; **मरुत्**—प्राणवायु; **मन:**—मन; **अक्ष**—इन्द्रियाँ; **दृढ़**—दृढ़; **योग**—योगाभ्यास में; **युज:**—लगे हुए; **हृदि**—हृदय में; **यत्**—जो; **मुनय:**—महान् ऋषि; **उपासते**—पूजा करते हैं; **तत्**—वह; **अरय:**—शत्रु; **अपि**—भी; **ययु:**—पाते हैं; **स्मरणात्**—स्मरण करके; **स्त्रिय:**—गोपियाँ; **उरग-इन्द्र**—सर्पों की; **भोग**—शरीरों की भाँति; **भुज**—भुजाएँ; **दण्ड**—दण्डों की तरह; **विषक्त**—बंधे हुए; **धिय:**—जिनके मन; **वयम् अपि**—हम भी; **ते**—आपके; **समा:**—उनके समान; **सम-दृश:**—वैसे ही भावों से; **अङ्घ्रि-सरोज**—चरणकमल का; **सुधा:**—अमृत।

अनुवाद

"'बड़े बड़े मुनि योगाभ्यास तथा प्राणायाम द्वारा अपने मन तथा इन्द्रियों को जीतते हैं। इस तरह योग में प्रवृत्त होकर वे अपने हृदयों के भीतर परमात्मा का दर्शन करते हैं, और अन्तत: निर्विशेष ब्रह्म में प्रवेश करते हैं। किन्तु यह पद तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शत्रु भी उनका केवल चिन्तन करके प्राप्त करते हैं। किन्तु व्रजांगनाएँ अर्थात् गोपियाँ कृष्ण के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर कृष्ण का और उनकी सर्प जैसी भुजाओं का आलिंगन करना चाहती थीं। इस प्रकार उन्होंने अन्ततोगत्वा भगवान् के चरणकमलों के अमृत का आस्वादन किया। इसी तरह हम उपनिषद् भी गोपियों के पदचिह्नों पर चलकर कृष्ण के चरणकमलों का अमृत चख सकते हैं।'"

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (१०.८७.२३) से लिया गया है, जो मूर्तिमान वेद रूपी श्रुतियों द्वारा कहा गया है।

'सम-दृशः'-शब्दे कहे 'सेइ भावे अनुगति' ।
'समाः'-शब्दे कहे श्रुतिर गोपी-देह-प्राप्ति ॥२२५॥

'सम-दृशः'-शब्दे कहे 'सेइ भावे अनुगति' ।
'समाः'-शब्दे कहे श्रुतिर गोपी-देह-प्राप्ति ॥ २२५ ॥

सम-दृशः शब्दे—*समदृशः* शब्द से; **कहे**—अभिप्राय है; **सेइ**—उस; **भावे**—भाव में; **अनुगति**—अनुगमन करके; **समाः शब्दे**—*समः* शब्द से; **कहे**—अर्थ है; **श्रुतिर**—'श्रुति' नामक व्यक्तियों का; **गोपी-देह**—गोपियों की देह; **प्राप्ति**—प्राप्ति।

अनुवाद

"पिछले श्लोक के चतुर्थ चरण में उल्लिखित 'समदृशः' शब्द का अर्थ है, 'गोपियों के भाव का अनुगमन करते हुए।' 'समाः' का अर्थ है, 'श्रुतियों द्वारा गोपियों जैसा ही शरीर प्राप्त करके।'

'अङ्घ्रि-पद्म-सुधा'य कहे 'कृष्ण-सङ्गानन्द' ।
विधि-मार्गे ना पाइये व्रजे कृष्ण-चन्द्र ॥२२६॥

'अङ्घ्रि-पद्म-सुधा'य कहे 'कृष्ण-सङ्गानन्द' ।
विधि-मार्गे ना पाइये व्रजे कृष्ण-चन्द्र ॥ २२६ ॥

अङ्घ्रि-पद्म-सुधाय—कृष्ण के चरणकमलों से निकले अमृत से; **कहे**—अभिप्राय है; **कृष्ण-सङ्ग-आनन्द**—कृष्ण के संग का दिव्य आनन्द; **विधि-मार्गे**—विधि विधानों के पथ पर; **ना पाइये**—कोई पाता नहीं; **व्रजे**—गोकुल वृन्दावन में; **कृष्ण-चन्द्र**—भगवान् कृष्ण।

अनुवाद

"'अङ्घ्रि-पद्मसुधा' का अर्थ है, 'कृष्ण से घनिष्ठतापूर्वक संगति करते हुए।' ऐसी पूर्णता एकमात्र भगवान् के रागानुग प्रेम द्वारा मिल सकती है। केवल विधि-विधानों द्वारा भगवान् की सेवा करने से गोलोक वृन्दावन में कृष्ण को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिका-सुतः ।
ज्ञानिनां चात्म-भूतानां यथा भक्ति-मतामिह ॥ २२७॥

नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिका-सुतः ।
ज्ञानिनां चात्म-भूतानां यथा भक्ति-मतामिह ॥ २२७॥

न—नहीं; **अयम्**—यह भगवान् कृष्ण; **सुख-आपः**—सरलता से उपलब्ध; **भगवान्**—पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; **देहिनाम्**—भौतिक व्यक्तियों के लिए, जो स्वयं को शरीर समझते हैं; **गोपिका-सुतः**—माता यशोदा का पुत्र; **ज्ञानिनाम्**—ज्ञानियों के लिए; **च**—और; **आत्म-भूतानाम्**—घोर व्रत-तप करने वालों के लिए; **यथा**—जैसे; **भक्ति-मताम्**—स्वतःस्फूर्त भक्ति में मग्न लोगों के लिए; **इह**—इस संसार में।

अनुवाद

"'यशोदा के पुत्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण उन भक्तों को सुलभ हैं, जो रागानुगा भक्ति में लगे हुए हैं। किन्तु वे शुष्क चिन्तकों, कठिन व्रत तथा तपस्या द्वारा आत्म-साक्षात्कार के लिए प्रयत्न करने वालों या शरीर को आत्मा मानने वालों को इतनी सरलता से सुलभ नहीं हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.९.२१) का है, जिसे श्रील शुकदेव गोस्वामी ने कहा था। यह उस प्रसंग में आता है, जिसमें वे माता यशोदा तथा कृष्ण के अन्य भक्तों का महिमागान करते हुए कहते हैं कि गोपियाँ किस तरह कृष्ण को अपने प्रेम से वशीभूत कर सकती हैं।

अतएव गोपी-भाव करि अङ्गीकार ।
रात्रि-दिन चिन्ते राधा-कृष्णेर विहार ॥ २२८॥

अतएव गोपी-भाव करि अङ्गीकार ।
रात्रि-दिन चिन्ते राधा-कृष्णेर विहार ॥ २२८॥

अतएव—अतएव; **गोपी-भाव**—गोपियों का प्रेम-भाव; **करि**—करके; **अङ्गीकार**—स्वीकार; **रात्रि-दिन**—दिन-रात; **चिन्ते**—व्यक्ति सोचता है; **राधा-कृष्णेर**—राधा और कृष्ण का; **विहार**—विहार, लीलाएँ।

अनुवाद

"अतएव मनुष्य को गोपियों के सेवाभाव को ग्रहण करना चाहिए।

ऐसे दिव्य भाव में श्री राधाकृष्ण की लीलाओं का निरन्तर चिन्तन करना चाहिए।

सिद्ध-देहे चिन्ति' करे ताहाँञि सेवन ।
सखी-भावे पाय राधा-कृष्णेर चरण ॥२२९॥

सिद्ध-देहे चिन्ति' करे ताहाँञि सेवन ।
सखी-भावे पाय राधा-कृष्णेर चरण ॥ २२९ ॥

सिद्ध-देहे—सिद्धावस्था में; **चिन्ति'**—स्मरण करके; **करे**—करता है; **ताहाँञि**—आध्यात्मिक जगत् में; **सेवन**—सेवा; **सखी-भावे**—गोपी भाव में; **पाय**—पाता है; **राधा-कृष्णेर**—राधा और कृष्ण के; **चरण**—चरणकमल।

अनुवाद

"राधा-कृष्ण तथा उनकी लीलाओं का दीर्घकाल तक चिन्तन करने और भौतिक कल्मष से पूरी तरह मुक्त होने पर मनुष्य आध्यात्मिक जगत् को चला जाता है। वहाँ भक्त को गोपी के रूप में राधा तथा कृष्ण की सेवा करने का सुअवसर प्राप्त होता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि *सिद्धदेह* शब्द का अर्थ "परिपूर्ण आध्यात्मिक देह" है और यह पाँच तत्त्वों से बने भौतिक स्थूल देह और मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार से बने सूक्ष्म देह से परे है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य दव्य युगल राधा तथा कृष्ण किी सेवा करने के योग्य पूर्णतया आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करता है—*सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।*

मनुष्य जब अपने आध्यात्मिक शरीर को प्राप्त होता है, जो इस स्थूल तथा सूक्ष्म भौतिक शरीर से परे है, तभी वह राधाकृष्ण की सेवा करने के योग्य होता है। यह शरीर *सिद्धदेह* कहलाता है। जीव को पूर्वकर्मों तथा मानसिक अवस्था के अनुसार एक विशेष प्रकार का स्थूल शरीर प्राप्त होता है। इस जीवन में मानसिक अवस्था तरह-तरह से बदलती है, और वही जीव अपनी इच्छाओं के अनुरूप अगले जन्म में दूसरा शरीर प्राप्त करता है। मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार भौतिक प्रकृति पर प्रभुत्व जताने में सदैव तत्पर रहते हैं। उस सूक्ष्म शरीर के अनुसार मनुष्य को स्थूल देह मिलता है, जिससे वह अपनी इच्छित

वस्तुओं का भोग कर सके। वर्तमान देह के कार्यों के अनुसार मनुष्य अन्य सूक्ष्म शरीर तैयार करता है और इस सूक्ष्म शरीर के अनुसार उसे दूसरा स्थूल शरीर प्राप्त होता है। यही भौतिक जगत् का नियम है। किन्तु जब मनुष्य आध्यात्मिक पद प्राप्त कर लेता है और स्थूल या सूक्ष्म शरीर की कामना नहीं करता, तो उसे अपना मूल आध्यात्मिक शरीर प्राप्त होता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (४.९) में पुष्टि की गई है—*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।*

मनुष्य आध्यात्मिक शरीर से आध्यात्मिक जगत् तक उन्नत होता है और गोलोक वृन्दावन अथवा अन्य किसी वैकुण्ठ लोक में स्थित होता है। आध्यात्मिक शरीर में भौतिक इच्छाएँ नहीं रह जातीं और मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् राधाकृष्ण की सेवा करके परम सन्तुष्ट रहता है। यह भक्ति का पद है (*हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते*)। जब आध्यात्मिक शरीर, मन तथा इन्द्रियाँ पूरी तरह शुद्ध हो जाते हैं, तब मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनकी प्रेयसी की सेवा कर सकता है। वैकुण्ठ लोक में भगवान् की प्रेयसी लक्ष्मी हैं और गोलोक वृन्दावन में श्रीमती राधारानी हैं। मनुष्य भौतिक कल्मष से रहित आध्यात्मिक शरीर द्वारा राधाकृष्ण तथा लक्ष्मीनारायण की सेवा कर सकता है। जब मनुष्य इस तरह आध्यात्मिक रूप से अवस्थित हो जाता है, तब वह अपनी खुद की इन्द्रियतृप्ति के बारे में नहीं सोचता। यह आध्यात्मिक शरीर *सिद्ध-देह* कहलाता है—अर्थात् ऐसा शरीर जिसके द्वारा मनुष्य राधा तथा कृष्ण की दिव्य सेवा कर सकता है। इसकी विधि यही है कि दिव्य इन्द्रियों को प्रेममयी सेवा में लगाया जाये। इस श्लोक में—*सखी भावे पाय राधाकृष्णेर चरण*—का विशेष उल्लेख हुआ है, जिसका अर्थ यह है कि गोपियों के भाव में आध्यात्मिक रूप से उन्नत व्यक्ति ही राधा-कृष्ण के चरणकमलों की सेवा में लग सकता है।

গোপী-আনুগত্য বিনা ঐশ্বর্য-জ্ঞানে ।
ভজিলেহ নাহি পায় ব্রজেন্দ্র-নন্দনে ॥ ২৩০ ॥

गोपी-आनुगत्य विना ऐश्वर्य्य-ज्ञाने ।
भजिलेह नाहि पाय व्रजेन्द्र-नन्दने ॥ २३० ॥

गोपी-आनुगत्य—गोपियों का अनुसरण किए; **विना**—बिना; **ऐश्वर्य-ज्ञाने**—ऐश्वर्य के ज्ञान में; **भजिलेह**—यदि भगवान् की सेवा की जाए; **नाहि**—नहीं; **पाय**—पाता है; **व्रजेन्द्र-नन्दने**—नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण को।

अनुवाद

"जब तक मनुष्य गोपियों के चरणचिह्नों का अनुसरण नहीं करता, तब तक उसे नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण के चरणकमलों की सेवा प्राप्त नहीं हो सकती। यदि वह भगवान् के ऐश्वर्य के ज्ञान से परास्त हो जाता है, तो उसे भगवान् के चरणकमल प्राप्त नहीं हो सकते, भले ही वह भक्तिमयी सेवा में क्यों न लगा हुआ हो।

तात्पर्य

मनुष्य *विधि-मार्ग* से लक्ष्मीनारायण की पूजा कर सकता है, जिसमें शास्त्र तथा गुरु के आदेशानुसार नियमपूर्वक भगवान् की पूजा करनी होती है। किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, राधा-कृष्ण की पूजा इस विधि से सीधे नहीं की जा सकती। राधा, कृष्ण तथा गोपी के मध्य का व्यवहार लक्ष्मी-नारायण के ऐश्वर्यों से रहित होता है। *विधि-मार्ग* का उपयोग लक्ष्मी-नारायण की पूजा में किया जाता है, किन्तु रागानुग प्रेम, जिसमें वृन्दावन की निवासिनी गोपियों के चरणचिह्नों पर चलना होता है, दिव्य रूप से अधिक उन्नत होता है, और इसीसे राधा-कृष्ण की पूजा की जाती है। भगवान् को उनके ऐश्वर्य में पूजते हुए यह उन्नत पद प्राप्त नहीं किया जा सकता। जो लोग राधा तथा कृष्ण के माधुर्य प्रेम द्वारा आकृष्ट होते हैं, उन्हें गोपियों का अनुसरण करना चाहिए। तभी गोलोक वृन्दावन में भगवान् की सेवा में प्रविष्ट हुआ जा सकता है, और राधा तथा कृष्ण की प्रत्यक्ष संगति प्राप्त की जा सकती है।

তাহাতে দৃষ্টান্ত—লক্ষ্মী করিল ভজন ।
তথাপি না পাইল ব্রজে ব্রজেন্দ্র-নন্দন ॥২৩১॥

ताहाते दृष्टान्त—लक्ष्मी करिल भजन ।
तथापि ना पाइल व्रजे व्रजेन्द्र-नन्दन ॥ २३१ ॥

ताहाते—उसमें; **दृष्टान्त**—प्रमाण; **लक्ष्मी**—लक्ष्मी देवी; **करिल**—की; **भजन**—पूजा;

तथापि—फिर भी; **ना**—नहीं; **पाइल**—पाया; **व्रजे**—वृन्दावन में; **व्रजेन्द्र-नन्दन**—नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण को।

अनुवाद

"इस प्रसंग में अकथनीय उदाहरण लक्ष्मीजी का है, जिन्होंने वृन्दावन में कृष्ण की लीलाओं को प्राप्त करने के लिए भगवान् कृष्ण की पूजा की। किन्तु अपनी ऐश्वर्यमयी जीवन-शैली के कारण उन्हें वृन्दावन में कृष्ण की सेवा प्राप्त नहीं हो सकी।

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्त-रतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिन-गन्ध-रुचां कुतोऽन्याः ।
रासोत्सवेऽस्य भुज-दण्ड-गृहीत-कण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद्व्रज-सुन्दरीणाम् ॥२३२॥

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्त-रतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिन-गन्ध-रुचां कुतोऽन्याः ।
रासोत्सवेऽस्य भुज-दण्ड-गृहीत-कण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद्व्रज-सुन्दरीणाम् ॥२३२॥

न—नहीं; **अयम्**—यह; **श्रियः**—लक्ष्मी देवी; **अङ्गे**—वक्षस्थल पर; **उ**—खेद है; **नितान्त-रतेः**—घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी; **प्रसादः**—कृपा; **स्वः**—स्वर्ग लोकों की; **योषिताम्**—स्त्रियों की; **नलिन**—कमल के फूल की; **गन्ध**—सुगन्ध युक्त; **रुचाम्**—और शारीरिक कान्ति; **कुतः**—बहुत कम; **अन्याः**—अन्य; **रास-उत्सवे**—रास उत्सव में; **अस्य**—भगवान् कृष्ण की; **भुज-दण्ड**—भुजाओं से; **गृहीत**—आलिंगित; **कण्ठ**—उनकी गर्दन में; **लब्ध-आशिषाम्**—ऐसा आशीवार्द पाया; **यः**—जो; **उदगात्**—प्रकट हो गया; **व्रज-सुन्दरीणाम्**—व्रज की सुन्दरियाँ दिव्य गोपियों का।

अनुवाद

"'जब भगवान् श्रीकृष्ण गोपियों के साथ रासलीला में नृत्य कर रहे थे, तब भगवान् की भुजाएँ गोपियों की गर्दन को आलिंगित किए थीं। यह दिव्य कृपा न तो लक्ष्मीजी को, न ही वैकुण्ठ में अन्य किसी प्रेयसी को प्राप्त हो पाई। न ही स्वर्गलोक की उन सुन्दरियों ने कभी ऐसी कल्पना भी की थी, जिनकी शारीरिक कान्ति तथा सुगन्ध कमल-पुष्प जैसी है।

तो भला संसारी स्त्रियों के विषय में क्या कहा जाए, जो भौतिक दृष्टि से कितनी भी सुन्दर क्यों न हों?'"

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (१०.४७.६०) का है।

एत शुनि' प्रभु ताँरे कैल आलिङ्गन ।
दुइ जने गलागलि करेन क्रन्दन ॥२३३॥

एत शुनि' प्रभु ताँरे कैल आलिङ्गन ।
दुइ जने गलागलि करेन क्रन्दन ॥ २३३ ॥

एत शुनि'—इतना सुनकर; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **ताँरे**—रामानन्द राय को; **कैल**—किया; **आलिङ्गन**—आलिंगन; **दुइ जने**—दोनों ने; **गलागलि**—गले लगाकर; **करेन**—किया; **क्रन्दन**—रुदन।

अनुवाद

यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय का आलिंगन किया और दोनों एक-दूसरे को गले लगाकर रुदन करने लगे।

एइ-मत प्रेमावेशे रात्रि गोङाइला ।
प्रातः-काले निज-निज-कार्ये दुँहे गेला ॥२३४॥

एइ-मत प्रेमावेशे रात्रि गोङाइला ।
प्रातः-काले निज-निज-कार्ये दुँहे गेला ॥ २३४ ॥

एइ-मत—इस प्रकार; **प्रेम-आवेशे**—भगवत्प्रेम के आवेश में; **रात्रि**—रात्रि; **गोङाइला**—गुजारी; **प्रातः-काले**—प्रातःकाल; **निज-निज-कार्ये**—अपने अपने कार्य में; **दुँहे**—वे दोनों; **गेला**—चले गये।

अनुवाद

इस तरह सारी रात भगवान् के प्रेमावेश में बीती और प्रातःकाल दोनों अपने-अपने कार्यों पर चले गये।

विदाय-समये प्रभुर चरणे धरिया ।
रामानन्द राय कहे विनति करिया ॥२३५॥

विदाय-समये प्रभुर चरणे धरिया ।
रामानन्द राय कहे विनति करिया ॥ २३५ ॥

विदाय-समये—जाते समय; **प्रभुर चरणे**—चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; **धरिया**—पकड़कर; **रामानन्द राय**—रामानन्द राय; **कहे**—कहते हैं; **विनति करिया**—अत्यन्त विनयपूर्वक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु से विदा होने के पूर्व रामानन्द राय ने पृथ्वी पर गिरकर महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लिए। फिर वे अत्यन्त विनीत भाव से इस प्रकार बोले।

'मोरे कृपा करिते तोमार इहाँ आगमन ।
दिन दश रहि' शोध मोर दुष्ट मन ॥ २३६ ॥

'मोरे कृपा करिते तोमार इहाँ आगमन ।
दिन दश रहि' शोध मोर दुष्ट मन ॥ २३६ ॥

मोरे—मुझ पर; **कृपा**—कृपा; **करिते**—करने के लिए; **तोमार**—आपका; **इहाँ**—यहाँ; **आगमन**—आना; **दिन दश रहि'**—कम से कम दस और दिन रूककर; **शोध**—शुद्ध करो; **मोर**—मेरा; **दुष्ट मन**—दुष्ट मन।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय ने कहा, "आप मुझ पर अपनी अहैतुकी कृपा दर्शाने ही यहाँ आये हैं। अतएव आप यहाँ कम-से-कम दस दिन तक रुक जायें और मेरे दूषित मन को शुद्ध कर दें।

तोमा विना अन्य नाहि जीव उद्धारिते ।
तोमा विना अन्य नाहि कृष्ण-प्रेम दिते' ॥ २३७ ॥

तोमा विना अन्य नाहि जीव उद्धारिते ।
तोमा विना अन्य नाहि कृष्ण-प्रेम दिते' ॥ २३७ ॥

तोमा विना—आपके बिना; **अन्य**—और कोई; **नाहि**—नहीं है; **जीव**—जीव; **उद्धारिते**—उद्धार करने के लिए; **तोमा विना**—आपके बिना; **अन्य**—और कोई; **नाहि**—नहीं है; **कृष्ण-प्रेम दिते**—कृष्ण-प्रेम प्रदान करने के लिए।

अनुवाद

"आपके अतिरिक्त ऐसा कौन है, जो सारे जीवों का उद्धार कर सके, क्योंकि केवल आप ही कृष्ण-प्रेम प्रदान कर सकते हैं।"

प्रभु कहे,——आइलाङ शुनि' तोमार गुण ।
कृष्ण-कथा शुनि, शुद्ध कराइते मन ॥ २३८॥

प्रभु कहे,——आइलाङ शुनि' तोमार गुण ।
कृष्ण-कथा शुनि, शुद्ध कराइते मन ॥ २३८॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **आइलाङ**—मैं आया हूँ; **शुनि'**—सुनकर; **तोमार**—आपके; **गुण**—गुण; **कृष्ण-कथा**—कृष्ण कथाएँ; **शुनि**—मैं सुनता हूँ; **शुद्ध कराइते**—मात्र शुद्ध कराने के लिए; **मन**—मन।

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं आपके सद्गुण सुनकर यहाँ आया हूँ। मैं तो आपके पास कृष्ण का गुणानुवाद सुनने और इस तरह अपना मन शुद्ध करने आया हूँ।

यैछे शुनिलुँ, तैछे देखिलुँ तोमार महिमा ।
राधा-कृष्ण-प्रेमरस-ज्ञानेर तुमि सीमा ॥ २३९॥

यैछे शुनिलुँ, तैछे देखिलुँ तोमार महिमा ।
राधा-कृष्ण-प्रेमरस-ज्ञानेर तुमि सीमा ॥ २३९॥

यैछे—इतना; **शुनिलुँ**—जितना मैंने सुना है; **तैछे**—उतना; **देखिलुँ**—मैंने देखा है; **तोमार महिमा**—आपकी महिमा; **राधा-कृष्ण-प्रेम-रस-ज्ञानेर**—राधा-कृष्ण के प्रेमाचार का दिव्य ज्ञान; **तुमि**—आप; **सीमा**—चरम सीमा।

अनुवाद

"जिस तरह मैंने आपके बारे में सुना था, उसी तरह मैंने आपकी महिमा भी देख ली। जहाँ तक राधा-कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का सम्बन्ध है, आप तो ज्ञान की सीमा हैं।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय को राधा-कृष्ण के प्रेम के दिव्य ज्ञान

में सबसे बड़े अधिकारी के रूप में पाया। इस श्लोक में महाप्रभु वास्तव में कहते हैं कि रामानन्द राय इस ज्ञान की पराकाष्ठा थे।

দশ দিনের কা-কথা যাবতামি জীব' ।
তাবত্তোমার সঙ্গ ছাড়িতে নারিব ॥২৪০॥

দশ দিনের কা-কথা য়াবতামি জীব' ।
তাবত্তোমার সঙ্গ ছাড়িতে নারিব ॥২৪০॥

दश दिनेर—दस दिन का; **का-कथा**—क्या कहें; **य़ावत्**—जब तक; **आमि**—मैं; **जीब'**—जीवित रहूँगा; **तावत्**—तब तक; **तोमार**—आपका; **सङ्ग**—संग, साथ; **छाड़िते**—छोड़ना; **नारिब**—मैं नहीं सकूँगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "दस दिन की क्या बात है, जब तक मैं जीवित रहूँगा तब तक आपका साथ छोड़ पाना मेरे लिए असम्भव होगा।

নীলাচলে তুমি-আমি থাকিব এক-সঙ্গে ।
সুখে গোঙাইব কাল কৃষ্ণ-কথা-রঙ্গে ॥২৪১॥

নীলাচলে তুমি-আমি থাকিব এক-সঙ্গে ।
সুখে গোঙাইব কাল কৃষ্ণ-কথা-রঙ্গে ॥২৪১॥

नीलाचले—जगन्नाथ पुरी में; **तुमि**—आप; **आमि**—मैं; **थाकिब**—रहेंगे; **एक-सङ्गे**—इकट्ठे; **सुखे**—सुखपूर्वक; **गोङाइब**—गुजारेंगे; **काल**—समय; **कृष्ण-कथा-रङ्गे**—कृष्ण कथा की चर्चा के आनन्द में।

अनुवाद

"आप और मैं दोनों साथ साथ जगन्नाथ पुरी में रहेंगे। हम एक साथ आनन्द में कृष्ण तथा उनकी लीलाओं की चर्चा करते हुए अपना समय बितायेंगे।"

এত বলি' দুঁহে নিজ-নিজ কার্যে গেলা ।
সন্ধ্যা-কালে রায় পুনঃ আসিয়া মিলিলা ॥২৪২॥

एत बलि' दुँहे निज-निज कार्य्ये गेला ।
सन्ध्या-काले राय पुनः आसिया मिलिला ॥ २४२ ॥

एत बलि'—यह कहकर; **दुँहे**—वे दोनों; **निज-निज**—अपने अपने; **कार्य्ये**—कार्य में; **गेला**—चले गये; **सन्ध्या-काले**—सायंकाल; **राय**—रामानन्द राय; **पुनः**—पुनः; **आसिया**—वहाँ आकर; **मिलिला**—मिले।

अनुवाद

इस तरह वे दोनों अपने अपने कामों पर चले गये। तत्पश्चात् संध्या-समय रामानन्द राय श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने आये।

अन्योन्ये मिलि' दुँहे निभृते वसिया ।
प्रश्नोत्तर-गोष्ठी कहे आनन्दित हञा ॥२४३॥
अन्योन्ये मिलि' दुँहे निभृते वसिया ।
प्रश्नोत्तर-गोष्ठी कहे आनन्दित हञा ॥ २४३ ॥

अन्योन्ये—परस्पर; **मिलि'**—मिलकर; **दुँहे**—वे दोनों; **निभृते**—एकान्त स्थान पर; **वसिया**—बैठकर; **प्रश्न-उत्तर**—प्रश्नों तथा उत्तरों की; **गोष्ठी**—चर्चा; **कहे**—की; **आनन्दित**—आनन्दित; **हञा**—होकर।

अनुवाद

इस तरह वे बारम्बार मिलते, एकान्त स्थान में बैठते और प्रश्नोत्तर के रूप में प्रसन्न चित्त होकर कृष्ण की लीलाओं पर चर्चा करते थे।

प्रभु पुछे, रामानन्द करेन उत्तर ।
एइ मत सेइ रात्रे कथा परस्पर ॥२४४॥
प्रभु पुछे, रामानन्द करेन उत्तर ।
एइ मत सेइ रात्रे कथा परस्पर ॥ २४४ ॥

प्रभु पुछे—महाप्रभु पूछते; **रामानन्द**—राय रामानन्द; **करेन**—देते; **उत्तर**—उत्तर; **एइ मत**—इस प्रकार; **सेइ रात्रे**—उस रात; **कथा**—चर्चा; **परस्पर**—परस्पर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रश्न पूछते थे और रामानन्द राय उत्तर देते थे। इस तरह रात-भर वे चर्चा में लगे रहते।

প্রভু কহে,—"কোন্বিদ্যা বিদ্যা-মধ্যে সার?" ।
রায় কহে,—"কৃষ্ণ-ভক্তি বিনা বিদ্যা নাহি আর" ॥২৪৫॥

প্রভু কহে,—"কোন্বিদ্যা বিদ্যা-মধ্যে সার?" ।
রায় কহে,—"কৃষ্ণ-ভক্তি বিনা বিদ্যা নাহি আর" ॥ ২৪৫ ॥

প্রভু কহে—महाप्रभु ने पूछा; **কোন্**—क्या; **বিদ্যা**—ज्ञान; **বিদ্যা-মধ্যে**—ज्ञान के मध्य; **সার**—सबसे महत्त्वपूर्ण; **রায় কহে**—रामानन्द राय ने उत्तर दिया; **কৃষ্ণ-ভক্তি**—कृष्ण भक्ति; **বিনা**—विना; **বিদ্যা**—विद्या; **নাহি**—नहीं है; **আর**—और कुछ।

अनुवाद

एक अवसर पर महाप्रभु ने पूछा, "सभी प्रकार की विद्याओं में कौन-सी विद्या सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "दिव्य कृष्ण-भक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई विद्या महत्त्वपूर्ण नहीं है।"

तात्पर्य

श्लोक २४५ से २५७ तक श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय के प्रश्नोत्तर हैं। इस आदान-प्रदान में भौतिक तथा आध्यात्मिक अस्तित्व के अन्तर को दिखाने की चेष्टा की गई है। कृष्णभावनामृत की विद्या सदा दिव्य है और समस्त विद्याओं में श्रेष्ठ है। भौतिक विद्या का लक्ष्य भौतिक इन्द्रियतृप्ति के कार्यों को बढ़ाना रहता है। किन्तु भौतिक इन्द्रियतृप्ति से परे ज्ञान का एक नकारात्मक पक्ष भी है, जो *ब्रह्म-विद्या* अर्थात् निर्विशेष दिव्य ज्ञान कहलाता है। किन्तु इस ब्रह्म-विद्या अर्थात् निराकार ब्रह्म के ज्ञान से भी परे भगवान् विष्णु की भक्तिमयी सेवा का ज्ञान है। यह ज्ञान उच्चतर है और इससे भी बढ़कर है भगवान् कृष्ण की भक्तिमयी सेवा, जो सर्वोच्च विद्या है। *श्रीमद्भागवत* (४.२९.४९) के अनुसार : *तत्कर्म हरितोषं यत् सा विद्या तन्मतिर्यया*— "भगवान् को प्रसन्न करने के निमित्त किया गया कार्य सर्वोत्तम है, और जो विद्या कृष्ण-चेतना को बढ़ाये वही सर्वश्रेष्ठ है।"

श्रीमद्भागवत (७.५.२३-२४) के ही अनुसार :

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं।
अर्चनं वन्दनं दास्यम् सख्यमात्मनिवेदनम्॥

इति पुंसार्पिताविष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियेत भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥

यह प्रह्लाद महाराज का कथन है, जो उन्होंने अपने पिता द्वारा उठाये गये प्रश्न के उत्तर में कहा था। प्रह्लाद महाराज ने कहा, "भगवान् विष्णु के विषय में सुनना या कहना, उन्हें स्मरण करना, उनके चरणकमलों की सेवा करना, उनकी पूजा करना, उनकी स्तुति करना, उनका दास तथा मित्र बनना, उनकी सेवा में सर्वस्व निछावर कर देना—ये भक्ति के विविध प्रकार हैं। जो व्यक्ति ऐसे कार्यों में लगा हुआ है, वह सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त माना जाता है।"

'कीर्ति-गण-मध्ये जीवेर कोन्बड़ कीर्ति?'।
'कृष्ण-भक्त बलिया याँहार हय ख्याति' ॥२४६॥
'कीर्ति-गण-मध्ये जीवेर कोन्बड़ कीर्ति?'।
'कृष्ण-भक्त बलिया य्राँहार हय ख्याति' ॥ २४६ ॥

कीर्ति-गण-मध्ये—महिमापूर्ण कार्यों में; **जीवेर**—जीव का; **कोन्**—कौन सा; **बड़**—महान्; **कीर्ति**—महिमा; **कृष्ण-भक्त**—कृष्ण भक्त; **बलिया**—जैसा; **य्राँहार**—जिसकी; **हय**—है; **ख्याति**—ख्याति।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से पूछा, "समस्त यशस्वी कार्यों में कौन-सा कार्य सर्वाधिक यशस्वी है?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "वह व्यक्ति जो भगवान् कृष्ण के भक्त के रूप में विख्यात है, वही सर्वाधिक यश तथा कीर्ति भोगता है।"

तात्पर्य

कृष्ण-भक्त बनना तथा कृष्णभावनामृत में कार्य करना ही किसी जीव के लिए सर्वोच्च यश प्राप्त करना है। इस भौतिक जगत् में हर व्यक्ति प्रचुर भौतिक ऐश्वर्य एकत्र करके या बैंकों में पैसा जमा करके विख्यात बनना चाहता है। कर्मियों के बीच धनी समाज में आगे बढ़ने के लिए निरन्तर स्पर्धा चलती रहती है। सारा विश्व उसी स्पर्धा में लगा है। किन्तु इस प्रकार का नाम तथा यश नश्वर है, क्योंकि यह सब केवल तब तक रहता है, जब तक नश्वर भौतिक

शरीर रहता है। इससे कोई ब्रह्मज्ञानी अर्थात् निर्विशेषवादी पण्डित के रूप में, तो कोई भौतिक ऐश्वर्यवान व्यक्ति के रूप में विख्यात हो सकता है। किन्तु ऐसी ख्याति कृष्ण-भक्त की ख्याति से निकृष्ट होती है। *गरुड़ पुराण* में कहा गया है :

कलौ भागवतं नाम दुर्लभं नैव लभ्यते।
ब्रह्मरुद्रपदोत्कृष्टं गुरुणा कथितं मम॥

"इस कलियुग में महान् भक्त के रूप में यश पाना दुर्लभ है। किन्तु ऐसा पद ब्रह्मा तथा महादेव जैसे देवताओं से श्रेष्ठतर है। यह सारे गुरुओं का मत है।"

इतिहास समुच्चय में पुण्डरीक से नारद कहते हैं :

जन्मान्तर सहस्रेषु यस्य स्याद् बुद्धिरीदृशी।
दासोऽहं वासुदेवस्य सर्वाल्लोकान् समुद्धरेत्॥

"जब अनेकानेक जन्मों के बाद मनुष्य को अनुभूति होती है कि वह वासुदेव का सनातन दास है, तो वह सारे लोकों का उद्धार कर सकता है।"

आदि पुराण में कृष्ण तथा अर्जुन की वार्ता में कहा गया है : *भक्तानां अनुगच्छन्ति मुक्तयः श्रुतिभिः सह*—"वैदिक ज्ञान से मुक्ति का सर्वोच्च पद प्राप्त होता है। हर व्यक्ति भक्त के पदचिह्नों का अनुसरण करता है।" इसी प्रकार *बृहन्नारदीय पुराण* में भी कहा गया है : *अद्यापि च मुनि श्रेष्ठा ब्रह्माद्या अपि देवताः*—"आज तक ब्रह्मा तथा शिवजी जैसे बड़े-बड़े देवता भी भक्त के प्रभाव को नहीं जान पाये।" इसी प्रकार *गरुड़ पुराण* में कहा गया है :

ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यः सत्रयाजी विशिष्यते
सत्रयाजीसहस्रेभ्यः सर्ववेदान्तपारगः।
सर्ववेदान्तवित्कोट्या विष्णुभक्तो विशिष्यते
वैष्णवानां सहस्रेभ्य एकान्त्येको विशिष्यते॥

"कहा जाता है कि हजारों ब्राह्मणों में से कोई एक यज्ञ करने के योग्य होता है, और ऐसे हजारों योग्य याज्ञिक ब्राह्मणों में कोई एक ब्राह्मण सारे वैदिक ज्ञान को लाँघ चुका होता है। ऐसा व्यक्ति इन सारे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ माना जाता है। फिर भी ऐसे हजारों वेदान्तवित् ब्राह्मणों में कोई एक विष्णु-भक्त हो सकता है, जो अत्यन्त विख्यात होता है। ऐसे हजारों वैष्णवों में से वह एक, जो कृष्ण

की सेवा में दृढ़ रहता है, सर्वाधिक प्रसिद्ध होता है। जो व्यक्ति भगवान् की सेवा पूर्ण रूप से समर्पित है, वह निश्चित रूप से भगवद्धाम वापस जाता है।"

श्रीमद्भागवत (३.१३.४) में भी एक कथन है, जो इस प्रकार है :

श्रुतस्य पुंसां सुचिरश्रमस्य
नन्वञ्जसा सूरिभिरीडितोऽर्थः।
तत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुन्द
पादारविन्दं हृदयेषु येषाम्॥

"अत्यधिक कठिन श्रम के बाद वैदिक साहित्य का पंडित अत्यन्त विख्यात हो जाता है। किन्तु जो व्यक्ति सदैव अपने हृदय में मुकुन्द के चरणकमलों की महिमा का श्रवण और कीर्तन करता रहता है, वह निश्चय ही श्रेष्ठ है।"

नारायण-व्यूह-स्तव में कहा गया है :

नाहं ब्रह्मापि भूयासं त्वद्भक्तिरहितो हरे।
त्वयि भक्तस्तु कीटोऽपि भूयासं जन्म-जन्मसु॥

"यदि ब्रह्मा भगवद्भक्त नहीं है, तो मैं उस ब्रह्मा के रूप में जन्म लेने की आकांक्षा नहीं करता। किन्तु मैं एक कीड़े के रूप में जन्म लेना पसन्द करूँगा, यदि मुझे भक्त के घर में रहने का अवसर मिले।"

श्रीमद्भागवत में ऐसे ही अनेक श्लोक हैं, विशेष रूप से ३.२५.३८, ४.२४.२९, ४.३१.२२, ७.९.२४ तथा १०.१४.३०।

शिवजी ने ही कहा था, "मैं कृष्ण के विषय में सच्चाई नहीं जानता, किन्तु कृष्ण-भक्त सारी सच्चाई जानता है। भगवान् कृष्ण के सारे भक्तों में प्रह्लाद महानतम हैं।"

प्रह्लाद से भी अधिक उन्नत माने जाते हैं पाण्डव। पाण्डवों से भी अधिक उन्नत यदुवंशी हैं और यदुवंश में उद्धव सर्वाधिक उन्नत हैं, किन्तु उद्धव से भी बढ़कर व्रजधाम की गोपियाँ हैं।

बृहद् वामन पुराण में भृगु मुनि से ब्रह्माजी कहते हैं :

षष्टिवर्षसहस्राणि मया तप्तं तपः पुरा।
नन्दगोपव्रजस्त्रीणां पादरेणूपलब्धये॥

"मैंने गोपियों के चरणकमलों की धूलि को समझने के लिए ६० हजार वर्ष

तक तपस्या की और ध्यान किया। फिर भी मैं इसे समझ नहीं सका। मैं तो क्या, शिवजी, शेषजी तथा लक्ष्मीजी भी इसे नहीं समझ सके।"

आदि पुराण में स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कहते हैं :

न तथा मे प्रियतमो ब्रह्मा रुद्रश्च पार्थिव।
न च लक्ष्मिर्न चात्मा च यथा गोपीजनो मम॥

"मुझे गोपियों के समान ब्रह्माजी, शिवजी, लक्ष्मीजी प्रिय नहीं हैं, यहाँ तक कि स्वयं मैं भी प्रिय नहीं हूँ।" समस्त गोपियों में से श्रीमती राधारानी सर्वोच्च हैं। रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी श्रीमती राधारानी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के सबसे महान् सेवक हैं। जो लोग इनकी सेवा में लगे रहते हैं, वे *रूपानुग* भक्त कहलाते हैं। श्रील रूप गोस्वामी के सम्बन्ध में *चैतन्य-चन्द्रामृत* (२६) में कहा गया है :

आस्तां वैराग्यकोटिर्भवतु शमदमक्षान्तिमैत्र्यादिकोटि-
स्तत्त्वानुध्यानकोटिर्भवतु भवतु वा वैष्णवी भक्तिकोटिः।
कोट्यंशोऽप्यस्य न स्यात्तदपि गुणगणो यः स्वतः सिद्ध आस्ते
श्रीमच्चैतन्यचन्द्रप्रियचरणनखज्योतिरामोदभाजाम् ॥

श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में लगे रहने वाले के गुणों—यथा कीर्ति, तपस्या, ज्ञान—की तुलना अन्यों के सद्गुणों से नहीं करनी चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में लगे रहने वाले भक्त की पूर्णता ऐसी है।

'सम्पत्तिर मध्ये जीवेर कोन्सम्पत्ति गणि?'।
'राधा-कृष्णे प्रेम याँर, सेइ बड़ धनी' ॥२४७॥

'सम्पत्तिर मध्ये जीवेर कोन्सम्पत्ति गणि?'।
'राधा-कृष्णे प्रेम ग्याँर, सेइ बड़ धनी' ॥ २४७॥

सम्पत्तिर—धन दौलत, सम्पत्ति का; **मध्ये**—के बीच; **जीवेर**—जीवों का; **कोन्**—क्या; **सम्पत्ति**—सम्पत्ति; **गणि**—हम मानते हैं; **राधा-कृष्णे**—श्रीमती राधारानी और कृष्ण का; **प्रेम**—प्रेम; **ग्याँर**—जिसकी; **सेइ**—वह; **बड़**—बहुत बड़ा; **धनी**—धनी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "धनवानों में सर्वोच्च कौन है?" रामानन्द

राय ने उत्तर दिया, "जो राधा तथा कृष्ण के प्रेम का सबसे बड़ा धनी है, वही सबसे बड़ा धनवान है।"

तात्पर्य

इस भौतिक जगत् में प्रत्येक व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को तुष्ट करने के लिए धन प्राप्त करने का प्रयास करता है। वास्तविकता तो यह है कि कोई भी व्यक्ति भौतिक सम्पत्ति प्राप्त करने और उसे बनाये रखने के अतिरिक्त और किसी बात की परवाह नहीं करता। इस भौतिक जगत् में धनवान व्यक्ति सामान्यतया सबसे महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं, किन्तु जब हम भौतिकतावादी धनी व्यक्ति की तुलना राधा-कृष्ण की भक्ति के धनवान व्यक्ति से करते हैं, तो राधा-कृष्ण की भक्ति वाला ही सबसे बड़ा धनवान पाया जाता है। *श्रीमद्भागवत* के अनुसार (१०.३९.२) :

किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने।
तथापि तत्परा राजन्न हि वाञ्छन्ति किञ्चन॥

"लक्ष्मी के आश्रय भगवान् कृष्ण के भक्तों के लिए कौन-सी बात कठिन है? हे राजन्, यद्यपि ये भक्त कुछ भी प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु ये किसी बात की इच्छा नहीं करते।"

'दुःख-मध्ये कोन दुःख हय गुरुतर?' ।
'कृष्ण-भक्त-विरह विना दुःख नाहि देखि पर' ॥२४८॥

'दुःख-मध्ये कोन दुःख हय गुरुतर?' ।
'कृष्ण-भक्त-विरह विना दुःख नाहि देखि पर' ॥ २४८॥

दुःख-मध्ये—जीवन की दुःखी अवस्था में; **कोन**—क्या; **दुःख**—दुःख; **हय**—है; **गुरुतर**—अधिक कष्टदायक; **कृष्ण-भक्त-विरह**—कृष्ण भक्त से विरह; **विना**—सिवाय; **दुःख**—दुःख; **नाहि**—नहीं है; **देखि**—मैं देखता हूँ; **पर**—अन्य।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "समस्त दुःखों में कौन-सा दुःख सर्वाधिक कष्टदायक है?" श्री रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "मेरी जानकारी में कृष्ण-भक्त के विरह से बढ़कर कोई दूसरा असह्य दुःख नहीं है।"

तात्पर्य

इसके विषय में वैदिक साहित्य में भगवान् का कथन है :

मामनाराध्य दु:खार्त: कुटुम्बासक्तमानस: ।
सत्संगरहितो मर्त्यो वृद्धसेवापरिच्युत: ॥

"जो व्यक्ति मेरी पूजा नहीं करता, जो परिवार के प्रति अत्यधिक आसक्त है, और जो भक्ति में लिप्त नहीं होता, उसे सबसे दु:खी व्यक्ति मानना चाहिए। इसी तरह जो वैष्णवों की संगति नहीं करता या अपने से बड़ों की सेवा नहीं करता, वह भी सर्वाधिक दु:खी व्यक्ति है।"

बृहद्भागवतामृत (१.५.४४) में भी कहा गया है :

स्वजीवनाधिकं प्रार्थ्यं श्रीविष्णुजनसङ्गत: ।
विच्छेदेन क्षणं चात्र न सुखांशं लभामहे ॥

"जीव के जीवन में जिन-जिन वांछित वस्तुओं का अनुभव होता है, उनमें से भगवद्भक्तों की संगति सबसे बड़ी है। भक्त से क्षण-भर का भी वियोग हमें सुखी अनुभव नहीं होने देता।"

'मुक्त-मध्ये कोन्जीव मुक्त करि' मानि?' ।
'कृष्ण-प्रेम याँर, सेइ मुक्त-शिरोमणि' ॥२४९॥

'मुक्त-मध्ये कोन्जीव मुक्त करि' मानि?' ।
'कृष्ण-प्रेम य्याँर, सेइ मुक्त-शिरोमणि' ॥ २४९ ॥

मुक्त-मध्ये—मुक्त जीवों के मध्य; **कोन्**—क्या, कौन; **जीव**—जीव; **मुक्त**—मुक्त; **करि'**—करते हैं; **मानि**—हम स्वीकार; **कृष्ण-प्रेम**—कृष्ण-प्रेम; **य्याँर**—जिसका; **सेइ**—ऐसा व्यक्ति; **मुक्त-शिरोमणि**—सर्वोत्तम मुक्तात्मा।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "समस्त मुक्त पुरुषों में किसे सबसे महान् माना जाए?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "जो कृष्ण-प्रेम से युक्त है, उसे ही सर्वोच्च मुक्ति प्राप्त है।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (६.१४.५) में कहा गया है :

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायण-परायणः ।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥

"हे महामुनि, लाखों मुक्त पुरुषों तथा लाखों सिद्ध पुरुषों में नारायण का भक्त अत्यन्त दुर्लभ होता है। वह अत्यन्त पूर्ण एवं शान्त व्यक्ति होता है।"

'गान-मध्ये कोन गान—जीवेर निज धर्म?' ।
'राधा-कृष्णेर प्रेम-केलि'—येइ गीतेर मर्म ॥२५०॥

'गान-मध्ये कोन गान—जीवेर निज धर्म?' ।
'राधा-कृष्णेर प्रेम-केलि'—येइ गीतेर मर्म ॥ २५० ॥

गान-मध्ये—गीतों के मध्य; **कोन गान**—कौन सा गीत; **जीवेर**—जीव का; **निज**—अपना; **धर्म**—धर्म; **राधा-कृष्णेर प्रेम-केलि**—राधा कृष्ण के प्रेम-व्यवहार; **येइ**—जो; **गीतेर**—गीत का; **मर्म**—अर्थ।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से पूछा, "अनेक गीतों में से किस गीत को जीव का वास्तविक धर्म माना जाए?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "श्री राधा तथा कृष्ण के प्रेम का वर्णन करने वाला गीत अन्य समस्त गीतों से श्रेष्ठ है।"

तात्पर्य

जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (१०.३३.३६) में कहा गया है :

अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमास्थितः ।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥

"भगवान् कृष्ण मनुष्य के रूप में अवतरित होते हैं और वृन्दावन में अपनी दिव्य लीलाएँ प्रकट करते हैं, जिससे बद्धजीव उनके दिव्य कार्यकलापों के विषय में सुनने के लिए आकृष्ट हो।" अभक्तों को राधाकृष्ण सम्बन्धी प्रेम-गीतों में भाग लेना वर्जित है। भक्त बने बिना राधाकृष्ण की लीलाओं के उन गीतों को सुनना अत्यन्त खतरनाक है, जिन्हें जयदेव गोस्वामी, चण्डीदास तथा अन्य उन्नत भक्तों ने लिखा है। यद्यपि शिवजी ने समुद्र भरकर विष-पान किया था, किन्तु हमें इसका अनुकरण नहीं करना चाहिए। पहले भगवान् कृष्ण का शुद्ध

भक्त बनना चाहिए। तभी जयदेव के गीतों को सुनकर दिव्य आनन्द का अनुभव किया जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति शिवजी के कार्यों का मात्र अनुकरण करता है और विषपान करता है, तो उसकी मृत्यु निश्चित है।

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय के बीच की वार्ताएँ केवल उच्च भक्तों के निमित्त हैं। संसारी लोग तथा शोध के लिए इन वार्ताओं के अध्ययन करने वाले लोग इनको नहीं समझ सकेंगे। उल्टे इनका प्रभाव विषैला होगा।

'श्रेय़ो-मध्ये कोन श्रेयः जीवेर हय सार?' ।
'कृष्ण-भक्त-सङ्ग विना श्रेयः नाहि आर' ॥२५१॥

'श्रेयो-मध्ये कोन श्रेयः जीवेर हय सार?' ।
'कृष्ण-भक्त-सङ्ग विना श्रेयः नाहि आर' ॥ २५१ ॥

श्रेयः-मध्ये—लाभदायक कार्यकलापों में; **कोन**—कौन सा; **श्रेयः**—श्रेयस्कर; **जीवेर**—जीव का; **हय**—है; **सार**—सार; **कृष्ण-भक्त-सङ्ग**—भगवान् कृष्ण भक्तों के संग हेतु; **विना**—बिना; **श्रेयः**—श्रेय; **नाहि**—नहीं है; **आर**—अन्य।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "समस्त शुभ तथा लाभप्रद कार्यों में से जीव के लिए सर्वश्रेष्ठ कार्य कौन-सा है?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "एकमात्र शुभ कार्य कृष्ण-भक्तों की संगति है।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (११.२.३०) के अनुसार :

अत आत्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः ।
संसारेऽस्मिन् क्षणार्धोऽपि सत्सङ्गः शेवधिर्नृणाम् ॥

"हम आपसे सर्वाधिक कल्याणप्रद कार्य के विषय में पूछ रहे हैं। मैं सोचता हूँ कि इस भौतिक जगत् में भक्तों की संगति, चाहे क्षण-भर के लिए ही क्यों न हो, मनुष्य के लिए सबसे बड़ा खजाना है।"

'काँहार स्मरण जीव करिबे अनुक्षण?' ।
'कृष्ण'-नाम-गुण-लीला——प्रधान स्मरण' ॥२५२॥

'काँहार स्मरण जीव करिबे अनुक्षण?' ।
'कृष्ण'-नाम-गुण-लीला—प्रधान स्मरण' ॥ २५२ ॥

काँहार—किसका; **स्मरण**—स्मरण; **जीव**—जीव; **करिबे**—करना चाहिए; **अनुक्षण**—निरन्तर; **कृष्ण-नाम**—कृष्ण के पावन नाम का; **गुण-लीला**—उनके गुण और उनकी लीलाएँ; **प्रधान स्मरण**—महत्त्वपूर्ण स्मरण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "सारे जीव किसका निरन्तर स्मरण करें?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "स्मरण करने की मुख्य वस्तु सदैव भगवान् के नाम, गुण तथा लीलाएँ हैं।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (२.२.३६) का कथन है :

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान् नृणाम्॥

शुकदेव गोस्वामी ने कहा, "जीव का कर्तव्य है कि वह प्रत्येक परिस्थिति में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का सदैव स्मरण करे। सारे मनुष्यों को भगवान् का श्रवण, कीर्तन तथा स्मरण करना चाहिए।"

'ध्येय-मध्ये जीवेर कर्तव्य कोन्ध्यान?' ।
'राधा-कृष्ण-पदाम्बुज-ध्यान—प्रधान' ॥२५३॥
'ध्येय-मध्ये जीवेर कर्तव्य कोन्ध्यान?' ।
'राधा-कृष्ण-पदाम्बुज-ध्यान—प्रधान' ॥ २५३ ॥

ध्येय-मध्ये—ध्यान के सभी प्रकारों में से; **जीवेर**—जीव का; **कर्तव्य**—कर्तव्य; **कोन्**—किसका; **ध्यान**—ध्यान; **राधा-कृष्ण-पद-अम्बुज**—राधाकृष्ण के चरणकमलों पर; **ध्यान**—ध्यान; **प्रधान**—महत्त्वपूर्ण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने और आगे पूछा, "समस्त प्रकार के ध्यानों में से कौन-सा ध्यान जीवों के लिए आवश्यक है?" श्रील रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "प्रत्येक जीव का प्रधान कर्तव्य यह है कि वह राधाकृष्ण के चरणकमलों का ध्यान करे।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (१.२.१४) का कथन है :

तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ॥

सूत गोस्वामी ने शौनक आदि ऋषियों को बतलाया, "हर व्यक्ति को ध्यानपूर्वक पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की लीलाओं के विषय में सुनना चाहिए। उसे उनके कार्यकलापों का गुणगान करना चाहिए और उनका नियमित ध्यान करना चाहिए।"

'सर्व त्याजि' जीवेर कर्तव्य काहाँ वास?' ।
'व्रज-भूमि वृन्दावन याहाँ लीला-रास' ॥२५४॥
'सर्व त्यजि' जीवेर कर्तव्य काहाँ वास?' ।
'व्रज-भूमि वृन्दावन य्राहाँ लीला-रास' ॥ २५४॥

सर्व—सब कुछ; **त्यजि'**—त्यागकर; **जीवेर**—जीव का; **कर्तव्य**—कर्तव्य; **काहाँ**—कहाँ; **वास**—निवास; **व्रज-भूमि**—व्रज भूमि; **वृन्दावन**—वृन्दावन; **य्राहाँ**—जहाँ; **लीला-रास**—भगवान् कृष्ण ने रासलीला रची।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "जीव को अन्य सारे स्थान त्यागकर कहाँ रहना चाहिए?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "उसे वृन्दावन या व्रजभूमि नामक पवित्र स्थान में रहना चाहिए, जहाँ भगवान् ने रासनृत्य किया था।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (१०.४७.६१) के अनुसार :

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥

उद्धव ने कहा, "मैं वृन्दावन की वह लता तथा पौधा बनना चाहता हूँ,

जिसे मुकुन्द के चरणकमलों की पूजा करने के लिए, परिवार तथा मित्रों से अपने सारे सम्बन्ध तोड़कर गोपियों ने अपने पैरों से रौंदा हो। उन चरणकमलों की खोज वैदिक साहित्य के अध्ययन में दक्ष सभी बड़े बड़े सन्त करते हैं।"

'श्रवण-मध्ये जीवेर कोन्श्रेष्ठ श्रवण?' ।
'राधा-कृष्ण-प्रेम-केलि कर्ण-रसायन' ॥ २५५ ॥
'श्रवण-मध्ये जीवेर कोन्श्रेष्ठ श्रवण?' ।
'राधा-कृष्ण-प्रेम-केलि कर्ण-रसायन' ॥ २५५ ॥

श्रवण-मध्ये—सभी प्रकार के श्रवणों में से; **जीवेर**—जीव का; **कोन्**—कौन सा; **श्रेष्ठ**—सबसे महत्त्वपूर्ण; **श्रवण**—श्रवण का विषय; **राधा-कृष्ण-प्रेम-केलि**—राधा कृष्ण की प्रेम कथाएँ; **कर्ण-रस-अयन**—कान को सर्वाधिक प्रिय।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "सुने जाने वाले समस्त विषयों में से कौन-सा विषय समस्त जीवों के लिए सर्वोत्तम है?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "राधा तथा कृष्ण के प्रेम-व्यापार के विषय में श्रवण करना कानों को सर्वाधिक सुहावना लगता है।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (१०.३३.३९) के अनुसार :

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः ।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥

"जो व्यक्ति रासनृत्य में कृष्ण तथा गोपियों के व्यवहार को श्रद्धापूर्वक सुनता है और जो इन कार्यों का वर्णन करता है, वह भक्ति की सिद्धि प्राप्त करता है और साथ ही भौतिक वासनामय इच्छाओं से रहित हो जाता है।"

जब मनुष्य मुक्त होता है और राधाकृष्ण के प्रेमालापों का श्रवण करता है, तो उसमें कामेच्छाएँ नहीं रह पातीं। एक संसारी धूर्त ने एक बार कहा कि जब कोई वैष्णव "राधा, राधा" के नाम का उच्चारण करता है, तो उसे राधा

नामक नाइन (नाइ की पत्नी) का स्मरण हो आता है। यह एक व्यावहारिक उदाहरण है। जब तक मनुष्य मुक्त न हो, तब तक उसे राधा-कृष्ण के प्रेम के विषय में सुनने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। यदि वह बिना मुक्त हुए रासलीला का वर्णन सुनता है, तो उसे अपने खुद के सांसारिक कार्यों का तथा राधा नामक किसी स्त्री के साथ अपने अवैध सम्बन्ध का स्मरण हो सकता है। बद्ध अवस्था में ऐसी बातों को स्मरण करने की चेष्टा तक नहीं करनी चाहिए। साधना मार्ग का अनुसरण करने से मनुष्य को कृष्ण-प्रेम के रागानुग पद पर उन्नत होना चाहिए। केवल तभी उसे राधा-कृष्ण की लीला सुननी चाहिए। यद्यपि ये प्रेम-व्यापार बद्ध तथा मुक्त दोनों जीवों के लिए समान रूप से सुहावने लगने वाले हो सकते हैं, किन्तु बद्धजीवों को इन्हें नहीं सुनना चाहिए। रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की वार्ताएँ मुक्त स्तर पर सम्पन्न होती हैं।

'उपास्येर मध्ये कोनुपास्य प्रधान?' ।
'श्रेष्ठ उपास्य—युगल 'राधा-कृष्ण' नाम' ॥ २५६॥

'उपास्येर मध्ये कोनुपास्य प्रधान?' ।
'श्रेष्ठ उपास्य—म्रुगल 'राधा-कृष्ण' नाम' ॥ २५६॥

उपास्येर—पूजा के विषय (वस्तु); **मध्ये**—मध्य; **कोन्**—कौन सा; **उपास्य**—पूज्य; **प्रधान**—प्रधान; **श्रेष्ठ**—श्रेष्ठ; **उपास्य**—पूज्य वस्तु; **म्रुगल**—युगल; **राधा-कृष्ण नाम**—राधा कृष्ण का पावन नाम अथवा हरे कृष्ण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "समस्त पूजा के योग्य (उपास्य) वस्तुओं में से कौन प्रधान है?" रामानन्द ने उत्तर दिया, "प्रधान पूजा योग्य वस्तु राधाकृष्ण का नाम—हरे कृष्ण मन्त्र—है।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (६.३.२२) के अनुसार :

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः॥

"इस भौतिक जगत् में जीव का एकमात्र कार्य भक्तियोग के मार्ग को स्वीकार करना तथा भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना है।"

'मुक्ति, भुक्ति वाञ्छे येई, काहाँ दुँहार गति?' ।
'स्थावर-देह, देव-देह यैछे अवस्थिति' ॥ २५७ ॥

'मुक्ति, भुक्ति वाञ्छे ग्रेइ, काहाँ दुँहार गति?' ।
'स्थावर-देह, देव-देह ग्रैछे अवस्थिति' ॥ २५७ ॥

मुक्ति—मुक्ति; **भुक्ति**—विषय भोग; **वाञ्छे**—चाहता है; **ग्रेइ**—जो; **काहाँ**—कहाँ; **दुँहार**—उन दोनों में से; **गति**—मंजिल; **स्थावर-देह**—वृक्ष का शरीर; **देव-देह**—देवता का शरीर; **ग्रैछे**—जैसे; **अवस्थिति**—स्थित।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "और जो मुक्ति चाहते हैं तथा जो इन्द्रियतृप्ति की इच्छा करते हैं, उनका गन्तव्य क्या है?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "जो लोग भगवान् के अस्तित्व में समा जाने की चेष्टा करते हैं, उन्हें वृक्ष के समान शरीर धारण करना होगा और जो लोग इन्द्रियतृप्ति में अधिक आसक्त हैं, उन्हें देवताओं का शरीर मिलेगा।"

तात्पर्य

जो लोग भगवान् के अस्तित्व में समा जाना चाहते हैं, उन्हें इस भौतिक जगत् में इन्द्रियतृप्ति की इच्छा नहीं होती। किन्तु साथ ही उन्हें भगवान् के चरणकमलों की सेवा करने का कोई ज्ञान नहीं रहता। अतएव उन्हें हजारों वर्षों तक वृक्ष की तरह खड़े रहना पड़ता है। यद्यपि वृक्ष जीवातमा हैं, फिर भी वे अचर हैं। जो मुक्तात्मा भगवान् के अस्तित्व में समा जाते हैं, वे वृक्ष से अधिक अच्छे नहीं हैं। वृक्ष भी भगवान् की सृष्टि में खड़े हैं, क्योंकि भौतिक शक्ति तथा भगवान् की शक्ति एक ही हैं। इसी तरह ब्रह्मतेज भी भगवान् की ही शक्ति है। अतएव चाहे कोई ब्रह्मतेज में रहे या भौतिक शक्ति में, दोनों एक-से हैं, क्योंकि इन दोनों में से किसी में भी आध्यात्मिक क्रियाशीलता नहीं होती। इनसे अच्छे तो वे हैं, जो इन्द्रियतृप्ति की इच्छा करते हैं और स्वर्गलोक जाना चाहते हैं। ऐसे लोग उसी तरह भोग करना चाहते हैं, जिस तरह नन्दनकानन में स्वर्ग के निवासी भोग करते हैं। वे जीवन का भोग करने के लिए कम-से-कम अपनी पहचान तो बनाये रखते हैं, किन्तु निर्विशेषवादी तो अपनी पहचान खोने का प्रयास करते हैं और इसके साथ ही वे भौतिक तथा

आध्यात्मिक दोनों आनन्द से वंचित हो जाते हैं। बौद्ध दार्शनिकों का अन्तिम गंतव्य पत्थर की तरह हो जाना है, जो जड़ है, जिसमें न भौतिक और न ही आध्यात्मिक क्रियाशीलता है। जहाँ तक कठोर श्रम करने वाले *कर्मियों* की बात है, *श्रीमद्भागवत* (११.१०.२३) में कहा गया है :

इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः।
भुञ्जीत देववत् तत्र भोगान् दिव्यान् निजार्जितान्॥

"स्वर्गलोक जाने के लिए नाना प्रकार के यज्ञ करने के बाद कर्मीजन वहाँ पहुँचते हैं और देवताओं के साथ रहकर उसी सीमा तक भोग करते हैं, जहाँ तक उनके पुण्यों के फल मिल सकें।"

जैसाकि *श्रीमद्भगवद्गीता* (९.२०-२१) में भगवान् कृष्ण ने कहा है :

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकम्
अश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्॥
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते॥

"जो लोग स्वर्गलोक की खोज में वेदाध्ययन करते हैं और सोमरस का पान करते हैं, वे मेरी अप्रत्यक्ष पूजा करते हैं। वे इन्द्र के पवित्र स्वर्गीय ग्रह में जन्म लेते हैं, जहाँ वे देवों जैसा आनन्द भोगते हैं। जब वे स्वर्ग का विशाल इन्द्रिय-सुख भोग चुकते हैं, और उनके पुण्यकर्मों का फल समाप्त हो जाता है, तब वे पुनः इस मर्त्यलोक में लौट आते हैं। इस तरह जो वैदिक सिद्धान्तों के माध्यम से सुख की कामना करते हैं, उन्हें केवल बारम्बार जन्म और मृत्यु ही हाथ लगते हैं।"

अतएव पुण्यकर्मों का फल समाप्त हो जाने पर कर्मीजन पुनः इस लोक में बरसात के रूप में लौट आते हैं, और विकास क्रम में घास तथा पौधों के रूप में जीवन बिताते हैं।

অরস-জ্ঞ কাক চূষে জ্ঞান-নিম্ব-ফলে ।
রস-জ্ঞ কোকিল খায় প্রেমাম্র-মুকুলে ॥ ২৫৮ ॥

অরস-জ্ঞ কাক চূষে জ্ঞান-নিম্ব-ফলে ।
রস-জ্ঞ কোকিল খায় প্রেমাম্র-মুকুলে ॥ ২৫৮ ॥

অরস-জ্ঞ—রসহীন; **কাক**—কৌए; **চূষে**—চূসते हैं; **জ্ঞান**—ज्ञान का; **নিম্ব-ফলে**—कड़ुवे नीम का फल; **রস-জ্ঞ**—दिव्य रस के भोगी; **কোকিল**—कोयल; **খায়**—खाते हैं; **প্রেম-আম্র-মুকুলে**—भगवत्प्रेम के आम की कलियाँ।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे कहा, "सभी दिव्य रसों से रहित व्यक्ति (अरसिक) उन कौवों के समान हैं, जो ज्ञानरूपी नीम वृक्ष के कटु फलों का रस चूसते हैं, जबकि रसज्ञ व्यक्ति उन कोयलों के तुल्य हैं, जो भगवत्प्रेम रूपी आम्र वृक्ष की मंजरियों को खाते हैं।"

तात्पर्य

अनुभवजन्य दर्शन की तार्किक शुष्क प्रक्रिया नीम वृक्ष के फल के समान तिक्त होती है। इस फल को चखना कौवों का काम है। दूसरे शब्दों में, परम सत्य की अनुभूति की दार्शनिक विधि कौवे जैसे व्यक्तियों द्वारा ग्रहण की जाती है। किन्तु कोयलों जैसे भक्तों की वाणी मधुर होती है, जिससे वे भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण करते हैं, और भगवत्प्रेम रूपी आम के मधुर फल का आस्वादन करते हैं। ऐसे भक्त भगवान् के साथ मधुर रस का आस्वादन करते हैं।

অভাগিয়া জ্ঞানী আস্বাদয়ে শুষ্ক জ্ঞান ।
কৃষ্ণ-প্রেমামৃত পান করে ভাগ্যবান্ ॥ ২৫৯ ॥

অভাগিয়া জ্ঞানী আস্বাদয়ে শুষ্ক জ্ঞান ।
কৃষ্ণ-প্রেমামৃত পান করে ভাগ্যবান্ ॥ ২৫৯ ॥

অভাগিয়া—अभागे; **জ্ঞানী**—कोरे ज्ञानी, तर्कवादी; **আস্বাদয়ে**—आस्वादन करते हैं; **শুষ্ক**—शुष्क; **জ্ঞান**—ज्ञान; **কৃষ্ণ-প্রেম-অমৃত**—कृष्ण-प्रेम का अमृत; **পান**—पान; **করে**—करते हैं; **ভাগ্যবান্**—भाग्यशाली।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे कहा, "अभागे शुष्क दार्शनिक दर्शन की शुष्क विधि का आस्वादन करते हैं, किन्तु भक्तगण नियमित रूप से कृष्ण-प्रेम रूपी अमृत का पान करते हैं। अतएव वे सर्वाधिक भाग्यशाली हैं।"

এই-মত দুই জন কৃষ্ণ-কথা-রসে ।
নৃত্য-গীত-রোদনে হৈল রাত্রি-শেষে ॥২৬০॥

এइ-মত দুइ জন কৃষ্ণ-কথা-রসে ।
নৃত্য-গীত-রোদনে হৈল রাত্রি-শেষে ॥ ২৬০॥

এइ-মত—इस प्रकार; **দুइ জন**—वे दोनों (चैतन्य महाप्रभु और रामानन्द राय); **কৃষ্ণ-কথা-রসে**—कृष्ण कथाओं की चर्चा के रस में; **নৃত্য-গীত**—नृत्य और कीर्तन में; **রোদনে**—रोने में; **হৈল**—था; **রাত্রি-শেষে**—रात व्यतीत हो गई।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय ने कृष्ण-कथा के रस का आस्वादन करते हुए पूरी रात बिताई। उनके कीर्तन करते, नाचते तथा रोते हुए सारी रात बीत गई।

দোঁহে নিজ-নিজ-কার্যে চলিলা বিহানে ।
সন্ধ্যা-কালে রায় আসি' মিলিলা আর দিনে ॥২৬১॥

দোঁহে নিজ-নিজ-কার্য্যে চলিলা বিহানে ।
সন্ধ্যা-কালে রায় আসি' মিলিলা আর দিনে ॥ ২৬১॥

দোঁহে—वे दोनों; **নিজ-নিজ-কার্য্যে**—अपने अपने कार्य में; **চলিলা**—चले गये; **বিহানে**—प्रातः काल होने पर; **সন্ধ্যা-কালে**—सायंकाल; **রায়**—रामानन्द राय; **আসি'**—पुनः आकर; **মিলিলা**—मिले; **আর**—अगले; **দিনে**—दिन।

अनुवाद

प्रातः होने पर दोनों अपने अपने कार्य पर चले गये, किन्तु संध्या-समय रामानन्द पुनः महाप्रभु से मिलने आये।

इष्ट-गोष्ठी कृष्ण-कथा कहि' कत-क्षण ।
प्रभु-पद धरि' राय करे निवेदन ॥ २६२ ॥

इष्ट-गोष्ठी कृष्ण-कथा कहि' कत-क्षण ।
प्रभु-पद धरि' राय करे निवेदन ॥ २६२ ॥

इष्ट-गोष्ठी—आध्यात्मिक चर्चा; **कृष्ण-कथा**—कृष्ण कथाएँ; **कहि'**—कहकर; **कत-क्षण**—कुछ समय के लिए; **प्रभु-पद**—महाप्रभु के चरणकमल; **धरि'**—पकड़कर; **राय**—रामानन्द राय; **करे**—करते हैं; **निवेदन**—निवेदन।

अनुवाद

उसी दिन संध्या-समय कुछ समय तक कृष्ण-कथा की चर्चा चलाने के बाद रामानन्द राय ने महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लिए और इस तरह बोले।

'कृष्ण-तत्त्व', 'राधा-तत्त्व', 'प्रेम-तत्त्व-सार' ।
'रस-तत्त्व' 'लीला-तत्त्व' विविध प्रकार ॥ २६३ ॥

'कृष्ण-तत्त्व', 'राधा-तत्त्व', 'प्रेम-तत्त्व-सार' ।
'रस-तत्त्व' 'लीला-तत्त्व' विविध प्रकार ॥ २६३ ॥

कृष्ण-तत्त्व—कृष्ण तत्त्व; **राधा-तत्त्व**—राधा तत्त्व; **प्रेम-तत्त्व-सार**—उनके प्रेमाचार का सार; **रस-तत्त्व**—दिव्य रस का तत्त्व; **लीला-तत्त्व**—भगवान् की लीलाओं का तत्त्व; **विविध प्रकार**—विविध प्रकार के।

अनुवाद

"राधारानी तथा कृष्ण विषयक तत्त्व तथा उनके दिव्य प्रेम, रस तथा लीलाओं के अनेकानेक दिव्य तत्त्व हैं।

एत तत्त्व मोर चित्ते कैले प्रकाशन ।
ब्रह्माके वेद येन पड़ाइल नारायण ॥ २६४ ॥

एत तत्त्व मोर चित्ते कैले प्रकाशन ।
ब्रह्माके वेद येन पड़ाइल नारायण ॥ २६४ ॥

एत तत्त्व—तत्त्व के यह सब प्रकार; **मोर चित्ते**—मेरे हृदय में; **कैले**—आपने किये; **प्रकाशन**—प्रकट; **ब्रह्माके**—ब्रह्माजी को; **वेद**—वैदिक ज्ञान; **येन**—जैसे; **पड़ाइल**—पढ़ाया; **नारायण**—नारायण ने।

अनुवाद

"आपने मेरे हृदय में इन अनेक दिव्य तत्त्वों (सत्यों) को प्रकट किया है। नारायण ने इसी तरह ब्रह्माजी को शिक्षा दी थी।"

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने ब्रह्मा के हृदय को ज्ञान से प्रकाशित किया था। *श्वेताश्वतर उपनिषद्* (६.१८) में वैदिक सूचना दी गई है :

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणं अहं प्रपद्ये॥

"चूँकि मैं मुक्ति चाहता हूँ, इसलिए मैं उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण ग्रहण करता हूँ, जिन्होंने सर्वप्रथम ब्रह्मा के हृदय के भीतर से वैदिक ज्ञान का प्रकाश किया। भगवान् समस्त प्रकाश तथा आध्यात्मिक उन्नति के आदि स्रोत हैं। *श्रीमद्भागवत* (२.९.३०-३५, ११.१४.३, १२.४.४० तथा १२.१३.१९) में इससे सम्बन्धित अनेक सन्दर्भ हैं।

অন্তর্যামী ঈশ্বরের এই রীতি হয়ে ।
বাহিরে না কহে, বস্তু প্রকাশে হৃদয়ে ॥২৬৫॥

अन्तर्यामी ईश्वरेर एइ रीति हये ।
बाहिरे ना कहे, वस्तु प्रकाशे हृदये ॥ २६५ ॥

अन्तर्यामी—अन्तर्यामी परमात्मा; **ईश्वरेर**—भगवान् की; **एइ**—यह; **रीति**—रीति; **हये**—है; **बाहिरे**—बाहर से; **ना कहे**—नहीं कहते हैं; **वस्तु**—वास्तविकता; **प्रकाशे**—प्रकट करते हैं; **हृदये**—हृदय में।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे कहा, "परमात्मा हर एक के हृदय के भीतर से बोलते हैं, बाहर से नहीं। वे सभी प्रकार से भक्तों को उपदेश देते हैं, और यही उनकी उपदेश-विधि है।"

तात्पर्य

यहाँ पर श्री रामानन्द राय स्वीकार करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु परमात्मा हैं। परमात्मा ही भक्त को प्रेरणा देते हैं, इसलिए वे गायत्री-मन्त्र के मौलिक उद्गम हैं। गायत्री में कहा गया है—*ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्* । *सविता* समस्त बुद्धि का आदि स्रोत है। वह सविता श्री चैतन्य महाप्रभु हैं। इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* (२.४.२२) से होती है :

प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती
वितन्वताजस्य सतीं स्मृतिं हृदि।
स्वलक्षणा प्रादुरभूत किलास्यतः
स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम्॥

"जिन भगवान् ने सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा के हृदय के भीतर से निहित ज्ञान को वर्धित किया और सृष्टि तथा परमात्मा के पूर्ण ज्ञान से उन्हें प्रेरित किया और जो ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होते प्रतीत हुए, वे मुझ पर प्रसन्न हों।" यह श्लोक शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित के समक्ष *श्रीमद्भागवत* सुनाने के पूर्व भगवान् से आशीर्वाद माँगने के लिए कहा था।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्व-राट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदि-कवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजो-वारि-मृदां यथा विनिमयो यत्र त्रि-सर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्त-कुहकं सत्यं परं धीमहि ॥२६६॥

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्व-राट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदि-कवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजो-वारि-मृदां यथा विनिमयो यत्र त्रि-सर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्त-कुहकं सत्यं परं धीमहि ॥ २६६ ॥

जन्म-आदि—उत्पत्ति, पालन तथा प्रलय; **अस्य**—इसका (ब्रह्माण्ड का); **यतः**—जिनसे; **अन्वयात्**—आध्यात्मिक सम्बन्ध से सीधा; **इतरतः**—भौतिक सम्बन्ध के अभाव से अप्रत्यक्ष रूप में; **च**—भी; **अर्थेषु**—सभी विषयों में; **अभिज्ञः**—पूर्णतया परिचित; **स्व-राट्**—स्वतंत्र; **तेने**—दिया; **ब्रह्म**—परम सत्य; **हृदा**—हृदय में; **यः**—जो; **आदि-कवये**—ब्रह्माजी

को; **मुह्यन्ति**—मोहे जाते हैं; **यत्**—जिन में; **सूरयः**—ब्रह्माजी जैसे महापुरूष और अन्य देवता तथा महान ब्राह्मण; **तेजः-वारि-मृदाम्**—अग्नि, जल और पृथ्वी के; **यथा**—जैसे; **विनिमयः**—आदान-प्रदान; **यत्र**—जिसमें; **त्रि-सर्गः**—तीन गुणों की भौतिक सृष्टि; **अमृषा**—वास्तविक; **धाम्ना**—अपने धाम के साथ; **स्वेन**—अपनी निजी; **सदा**—सदा; **निरस्त-कुहकम्**—सभी भ्रमणा से रहित; **सत्यम्**—सत्य; **परम्**—परम; **धीमहि**—ध्यान करते हैं।

अनुवाद

"'हे मेरे प्रभु, वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण, हे सर्वव्यापी भगवान्, मैं आपको सादर प्रणाम करता हूँ। मैं भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करता हूँ, क्योंकि वे परम अद्वय सत्य हैं और व्यक्त ब्रह्माण्डों की सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कारणों के आदि कारण हैं। वे प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से समस्त जगत् से अवगत रहते हैं और वे स्वतंत्र हैं, क्योंकि उनसे परे अन्य कोई भी कारण नहीं है। उन्होंने ही पहले प्रथम-जीव ब्रह्मा के हृदय में वैदिक ज्ञान प्रदान किया। उनके द्वारा बड़े-बड़े ऋषि और देवतागण भी मोहित हो जाते हैं, जैसे अग्नि में जल या जल में भूमि दिखने से मनुष्य भ्रमित हो जाता है। उन्हीं के कारण तीन गुणों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं से निर्मित भौतिक ब्रह्माण्ड वास्तविकता प्रतीत होते हैं, यद्यपि वे अवास्तविक होते हैं। अतएव मैं उन परम सत्य श्रीकृष्ण का ध्यान करता हूँ, जो अपने दिव्य धाम में निरन्तर रहते हैं, जो भौतिक जगत् की माया से सदा मुक्त है। मैं उनका ध्यान करता हूँ, क्योंकि वे परम सत्य हैं।'"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१.१.१) का मंगलाचरण है।

এক সংশয় মোর আছয়ে হৃদয়ে ।
কৃপা করি' কহ মোরে তাহার নিশ্চয়ে ॥ ২৬৭॥

एक संशय मोर आछये हृदये ।
कृपा करि' कह मोरे ताहार निश्चये ॥ २६७॥

एक संशय—एक सन्देह; **मोर**—मेरा; **आछये**—है; **हृदये**—हृदय में; **कृपा करि'**—कृपा करके; **कह**—कहें; **मोरे**—मुझे; **ताहार**—उसका; **निश्चये**—निश्चय।

अनुवाद

तत्पश्चात् रामानन्द राय ने कहा कि उनके हृदय में अब एक ही संशय बचा है; अतएव उन्होंने महाप्रभु से याचना की कि, "आप मुझ पर कृपालु हों और मेरा संशय दूर करें।"

पहिले देखिलुँ तोमार सन्न्यासि-स्वरूप ।
एबे तोमा देखि मुञि श्याम-गोप-रूप ॥२६८॥

पहिले देखिलुँ तोमार सन्न्यासि-स्वरूप ।
एबे तोमा देखि मुञि श्याम-गोप-रूप ॥ २६८॥

पहिले—आरम्भ में; **देखिलुँ**—मैंने देखा; **तोमार**—आपका; **सन्न्यासि-स्वरूप**—संन्यासी रूप; **एबे**—अब; **तोमा**—आपको; **देखि**—देखता हूँ; **मुञि**—मैं; **श्याम-गोप-रूप**—श्यामसुन्दर, ग्वाले के रूप में।

अनुवाद

तब रामानन्द राय ने श्री चैतन्य महाप्रभु से कहा, "पहले मैंने आपको संन्यासी के रूप में देखा, किन्तु अब मैं आपको एक गोपाल बालक श्यामसुन्दर के रूप में देख रहा हूँ।

तोमार सम्मुखे देखि काञ्चन-पञ्चालिका ।
ताँर गौर-कान्त्ये तोमार सर्व अङ्ग ढाका ॥२६९॥

तोमार सम्मुखे देखि काञ्चन-पञ्चालिका ।
ताँर गौर-कान्त्ये तोमार सर्व अङ्ग ढाका ॥ २६९॥

तोमार—आपके; **सम्मुखे**—सामने; **देखि**—मैं देखता हूँ; **काञ्चन-पञ्चालिका**—सोने की एक गुड़िया; **ताँर**—इसके; **गौर-कान्त्ये**—सुनहरे वर्ण से; **तोमार**—आपका; **सर्व**—सारा; **अङ्ग**—शरीर; **ढाका**—ढक गया था।

अनुवाद

"अब मैं आपको सुनहरे गुड्डे की तरह प्रकट होते देख रहा हूँ और आपका सारा शरीर सुनहरी कान्ति से आच्छादित प्रतीत होता है।

तात्पर्य

श्यामसुन्दर तो श्याम रंग के हैं, किन्तु यहाँ रामानन्द राय कहते हैं कि

उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को सुनहरे रंग में प्रकट होते देखा। श्री चैतन्य महाप्रभु का कान्तिमय शरीर श्रीमती राधारानी के शारीरिक रंग से ढका था।

তাহাতে প্রকট দেখোঁ স-বংশী বদন ।
নানা ভাবে চঞ্চল তাহে কমল-নয়ন ॥২৭০॥

তাহাতে প্রকট দেখোঁ স-বংশী বদন ।
নানা ভাবে চঞ্চল তাহে কমল-নয়ন ॥ ২৭০ ॥

তাহাতে—उसमें; **প্রকট**—प्रकट; **দেখোঁ**—मैं देखता हूँ; **স-বংশী**—वंशी सहित; **বদন**—मुख; **নানা ভাবে**—नाना भावों में; **চঞ্চল**—चंचल; **তাহে**—उसमें; **কমল-নয়ন**—कमलनयन।

अनुवाद

"मैं देख रहा हूँ कि आप मुख में वंशी धारण किये हैं और आपके कमल-नेत्र विभिन्न भावों के कारण चंचल हो रहे हैं।

এই-মত তোমা দেখি' হয় চমৎকার ।
অকপটে কহ, প্রভু, কারণ ইহার ॥২৭১॥

এই-মত তোমা দেখি' হয় চমৎকার ।
অকপটে কহ, প্রভু, কারণ ইহার ॥ ২৭১ ॥

এই-মত—इस प्रकार; **তোমা**—आपको; **দেখি'**—देखकर; **হয়**—होता है; **চমৎকার**—चमत्कार; **অকপটে**—बिना कपट के; **কহ**—कृपया बताओ; **প্রভু**—मेरे प्रभु; **কারণ**—कारण; **ইহার**—इसका।

अनुवाद

"मैं आपको वास्तव में इसी रूप में देख रहा हूँ और यह अत्यन्त अद्भुत है। हे प्रभु, कृपया निष्कपट भाव से बतलायें कि ऐसा क्यों हो रहा है।"

প্রভু কহে,—কৃষ্ণে তোমার গাঢ়-প্রেম হয় ।
প্রেমার স্বভাব এই জানিহ নিশ্চয় ॥২৭২॥

प्रभु कहे,——कृष्णे तोमार गाढ़-प्रेम हय ।
प्रेमार स्वभाव एइ जानिह निश्चय ॥ २७२ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने उत्तर दिया; **कृष्णे**—कृष्ण में; **तोमार**—आपका; **गाढ़-प्रेम**—प्रगाढ़ प्रेम; **हय**—है; **प्रेमार**—ऐसे दिव्य प्रेम का; **स्वभाव**—स्वभाव; **एइ**—यह; **जानिह**—जान लो; **निश्चय**—निश्चित रूप से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "आप में कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रेम है और जिसमें भगवान् के प्रति ऐसा प्रगाढ़ भावमय प्रेम होता है, वह स्वाभाविक रूप से वस्तुओं को इसी तरह से देखता है। आप इसे निश्चय जानें।

महा-भागवत देखे स्थावर-जङ्गम ।
ताहाँ ताहाँ हय ताँर श्री-कृष्ण-स्फुरण ॥२७३॥

महा-भागवत देखे स्थावर-जङ्गम ।
ताहाँ ताहाँ हय ताँर श्री-कृष्ण-स्फुरण ॥ २७३ ॥

महा-भागवत—महा भागवत भक्त; **देखे**—देखता है; **स्थावर-जङ्गम**—चर-अचर; **ताहाँ ताहाँ**—यहाँ वहाँ; **हय**—है; **ताँर**—उसको; **श्री-कृष्ण-स्फुरण**—श्रीकृष्ण की उपस्थिति।

अनुवाद

"आध्यात्मिक स्थिति में उन्नत भक्त प्रत्येक चर तथा अचर वस्तु को भगवान् के रूप में देखता है। उसे इधर-उधर दिखने वाली सारी वस्तुएँ भगवान् कृष्ण के ही स्वरूप जान पड़ती हैं।

स्थावर-जङ्गम देखे, ना देखे तार मूर्ति ।
सर्वत्र हय निज इष्ट-देव-स्फूर्ति ॥२७४॥

स्थावर-जङ्गम देखे, ना देखे तार मूर्ति ।
सर्वत्र हय निज इष्ट-देव-स्फूर्ति ॥ २७४ ॥

स्थावर-जङ्गम—स्थावर-जंगम; **देखे**—वह देखता है; **ना**—नहीं; **देखे**—देखता है; **तार**—इनका; **मूर्ति**—रूप; **सर्वत्र**—सर्वत्र; **हय**—है; **निज**—उसके अपने; **इष्ट-देव**—पूज्य भगवान्; **स्फूर्ति**—उपस्थिति।

अनुवाद

"महान् भक्त अर्थात् महाभागवत अवश्य हर चर तथा अचर को देखता है, किन्तु वह उनके बाह्य रूपों को नहीं देखता। प्रत्युत वह जहाँ कहीं भी देखता है, उसे तुरन्त भगवान् का स्वरूप प्रकट होते दिखता है।"

तात्पर्य

कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण, महाभागवत सर्वत्र कृष्ण का ही दर्शन करता है, अन्य किसी का नहीं। इसकी पुष्टि *ब्रह्म-संहिता* (५.३८) में इस प्रकार हुई है—*प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्ति विलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।*

जब भी भक्त कोई वस्तु देखता है, चाहे वह चर हो या अचर, वह तुरन्त कृष्ण का स्मरण करता है। महाभागवत ज्ञान में उन्नत होता है। यह ज्ञान भक्त में सहज रूप से होता है, क्योंकि उसने *भगवद्गीता* में पढ़ा है कि किस तरह कृष्णभावनामृत जाग्रत किया जाए। *भगवद्गीता* (७.८) के अनुसार भगवान् कृष्ण कहते हैं :

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु॥

"हे कुन्ती-पुत्र (अर्जुन), मैं जल का स्वाद हूँ, सूर्य तथा चन्द्रमा का प्रकाश हूँ, वैदिक मन्त्रों का ॐ हूँ, आकाश का शब्द तथा मनुष्य का पौरुष हूँ।"

अतएव जब भक्त जल या अन्य द्रव पीता है, तो वह तुरन्त कृष्ण का स्मरण करता है। भक्त के लिए चौबीसों घण्टे कृष्णभावनामृत को जागृत रखना कठिन नहीं है। इसीलिए चैतन्य महाप्रभु कहते हैं :

स्थावर जङ्गम देखे ना देखे तार मूर्ति।
सर्वत्र हय निज इष्टदेव-स्फूर्ति॥

सन्त पुरुष या महाभागवत चौबीसों घण्टे कृष्ण का दर्शन करता है और उनके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं देखता। जहाँ तक चर तथा अचर वस्तुओं का सम्बन्ध है, भक्त इन सबको कृष्ण की शक्ति का परिवर्तित रूप मानता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (७.४) में भगवान् कृष्ण ने कहा है :

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्न प्रकृतिरष्टधा॥

"भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार—ये आठों मिलकर मेरी भिन्न भौतिक शक्तियाँ बनती हैं।"

वास्तव में कृष्ण से भिन्न कुछ भी नहीं है। जब भक्त किसी वृक्ष को देखता है, तो वह जानता है कि यह वृक्ष दो शक्तियों—भौतिक तथा आध्यात्मिक—का संयोग (समन्वय) है। निकृष्ट अपरा शक्ति भौतिक है, जिससे वृक्ष का शरीर बनता है, किन्तु वृक्ष के भीतर आध्यात्मिक स्फुलिंग, जीव होता है, जो कृष्ण का अंश है। यह इस जगत् में कृष्ण की उत्कृष्ट परा शक्ति है। हम जो भी सजीव वस्तु देखते हैं, वह मात्र इन दोनों शक्तियों का समन्वय है। जब महाभागवत इन शक्तियों के बारे में सोचता है, तो वह तुरन्त समझ जाता है कि वे परमेश्वर की अभिव्यक्तियाँ हैं। प्रातःकाल जब हम सूर्य का उदय होते देखते हैं, तो हम उठकर प्रातःकाल के कार्यों में जुट जाते हैं। इसी तरह भक्त भगवान् की शक्ति को देखते ही तुरन्त भगवान् कृष्ण का स्मरण करता है। इसकी व्याख्या *सर्वत्र हय निज इष्ट देव स्फूर्ति* श्लोक में की गई है।

जिस भक्त ने भक्ति के द्वारा अपने जीवन को निर्मल बना लिया है, वह पग-पग पर कृष्ण का ही दर्शन करता है। अगले श्लोक में जो *श्रीमद्भागवत* (११.२.४५) से लिया गया है इसी की व्याख्या हुई है।

सर्व-भूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥२७५॥

सर्व-भूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥ २७५ ॥

सर्व-भूतेषु—सभी भूतों (पदार्थ, जीव, तथा इनके मिश्रण) के; **यः**—जो कोई; **पश्येत्**—देखता है; **भगवत्-भावम्**—भगवान् की सेवा में लगने की सम्भावना; **आत्मनः**—परम आत्मा अथवा दिव्यता (जीवन की भौतिक कल्पना के परे); **भूतानि**—सभी जीव; **भगवति**—भगवान् में; **आत्मनि**—अस्तित्व का मूल सिद्धान्त; **एषः**—यह; **भागवत-उत्तमः**—भक्ति में उन्नत मनुष्य।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "'भक्ति में अग्रसर व्यक्ति हर वस्तु के भीतर आत्माओं के आत्मा, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को देखता है। फलस्वरूप वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के स्वरूप को समस्त कारणों के कारण के रूप में देखता है और यह समझता है कि सारी वस्तुएँ उन्हीं में स्थित हैं।'

वन-लतास्तरव आत्मनि विष्णुं
व्यञ्जयन्त्य इव पुष्प-फलाढ्याः ।
प्रणत-भार-विटपा मधु-धाराः
प्रेम-हृष्ट-तनवो ववृषुः स्म ॥२७५॥

वन-लतास्तरव आत्मनि विष्णुं
व्यञ्जयन्त्य इव पुष्प-फलाढ्याः ।
प्रणत-भार-विटपा मधु-धाराः
प्रेम-हृष्ट-तनवो ववृषुः स्म ॥ २७६ ॥

वन-लताः—वन की लताएँ; **तरवः**—वृक्ष; **आत्मनि**—परमात्मा में; **विष्णुम्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **व्यञ्जयन्त्यः**—दिखते हुए; **इव**—की भाँति; **पुष्प-फल-आढ्याः**—पुष्प, फलों आदि से भरपूर; **प्रणत-भार**—भार से नीचे झुके; **विटपाः**—वृक्ष; **मधु-धाराः**—मधु धाराएँ; **प्रेम-हृष्ट**—भगवत्प्रेम से प्रेरित; **तनवः**—जिनके शरीर; **ववृषुः**—निरन्तर बरसाते थे; **स्म**—निश्चित रूप से।

अनुवाद

"'कृष्ण-प्रेम के भाव में पौधे, लताएँ तथा वृक्ष फूलों तथा फलों से लदे थे, जिसके कारण वे झुके जा रहे थे। वे कृष्ण के ऐसे प्रगाढ़ प्रेम से प्रेरित थे कि वे लगातार मधु की वर्षा कर रहे थे। इस तरह गोपियों ने वृन्दावन के पूरे जंगल को देखा।'"

तात्पर्य

यह श्लोक (*भागवत* १०.३५.९) कृष्ण की अनुपस्थिति में गोपियों द्वारा गाया गया एक गीत है। कृष्ण की अनुपस्थिति में गोपियाँ सदैव उनके विचार

में मग्न रहती थीं। इसी प्रकार से महाभागवत हर वस्तु को भगवान् की सेवा में लगी देखता है। श्रील रूप गोस्वामी की संस्तुति है :

प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः।
मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते॥

(*भक्तिरसामृतसिन्धु* १.२.१२६)

भागवत को ऐसी कोई वस्तु नहीं दिखती, जो कृष्ण से सम्बन्धित न हो। मायावादी दार्शनिकों की भाँति, भक्त भौतिक जगत् को मिथ्या नहीं देखता। क्योंकि वह जानता है कि भौतिक जगत् की हर वस्तु कृष्ण से सम्बन्धित है। भक्त जानता है कि ऐसी वस्तुओं का उपयोग भगवान् की सेवा में कैसे किया जाए—यह महाभागवत का गुण है। गोपियों ने पौधों, लताओं तथा वन-वृक्षों को फल-फूल से लदा देखा, जो कृष्ण की सेवा के लिए उद्यत थे। इस तरह उन्हें अपने आराध्य श्रीकृष्ण का स्मरण तुरन्त हो आया। उन्होंने एक संसारी व्यक्ति की तरह पौधों, लताओं तथा वृक्षों को नहीं देखा।

राधा-कृष्णे तोमार महा-प्रेम हय ।
याहाँ ताहाँ राधा-कृष्ण तोमारे स्फुरय ॥ २७७॥

राधा-कृष्णे—राधा तथा कृष्ण में; **तोमार**—आपको; **महा-प्रेम**—महान् प्रेम; **हय**—है; **याहाँ ताहाँ**—कहीं भी और हर जगह; **राधा-कृष्ण**—राधारानी और भगवान् कृष्ण; **तोमारे**—आपको; **स्फुरय**—प्रकट होते है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, "हे राय, आप महान् भक्त हैं, और राधाकृष्ण के प्रेमभाव से सदैव पूरित रहते हैं। अतएव आप जहाँ कहीं जो कुछ देखते हैं, वह आप में कृष्णभावनामृत को जाग्रत करता है।"

राय कहे,—प्रभु तुमि छाड़ भारि-भूरि ।
मोर आगे निज-रूप ना करिह चुरि ॥२७८॥

राय कहे,—प्रभु तुमि छाड़ भारि-भूरि ।
मोर आगे निज-रूप ना करिह चुरि ॥ २७८ ॥

राय कहे—रामानन्द राय ने उत्तर दिया; **प्रभु**—मेरे प्रभु; **तुमि**—आप; **छाड़**—छोड़ दो; **भारि-भूरि**—वे गम्भीर बातें; **मोर**—मेरे; **आगे**—समक्ष; **निज-रूप**—आपका असली रूप; **ना**—नहीं; **करिह**—करो; **चुरि**—चोरी।

अनुवाद

रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, कृपया आप इन सारी गम्भीर बातों को छोड़ दें। कृपया आप मुझसे अपना असली रूप मत छिपायें।"

राधिकार भाव-कान्ति करि' अङ्गीकार ।
निज-रस आस्वादिते करियाछ अवतार ॥ २७९ ॥

राधिकार भाव-कान्ति करि' अङ्गीकार ।
निज-रस आस्वादिते करियाछ अवतार ॥ २७९ ॥

राधिकार—श्रीमती राधारानी का; **भाव-कान्ति**—भावावेश तथा कान्ति; **करि'**—करके; **अङ्गीकार**—स्वीकार; **निज-रस**—अपना दिव्य रस; **आस्वादिते**—आस्वादन करने के लिए; **करियाछ**—आपने लिया है; **अवतार**—अवतार।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे कहा, "हे प्रभु, मैं जानता हूँ कि आपने श्रीमती राधारानी का भाव तथा शारीरिक वर्ण धारण कर रखा है। इस तरह आप अपने निजी दिव्य रस का आस्वादन कर रहे हैं, और इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुए हैं।

निज-गूढ़-कार्य तोमार—प्रेम आस्वादन ।
आनुषङ्गे प्रेम-मय कैले त्रिभुवन ॥ २८० ॥

निज-गूढ़-कार्य तोमार—प्रेम आस्वादन ।
आनुषङ्गे प्रेम-मय कैले त्रिभुवन ॥ २८० ॥

निज-गूढ़-कार्य—निजी रहस्यमय कार्य; **तोमार**—आपका; **प्रेम**—दिव्य प्रेम; **आस्वादन**—आस्वादन; **आनुषङ्गे**—एक साथ; **प्रेम-मय**—भगवत्प्रेम में परिवर्तित; **कैले**—आपने बनाया है; **त्रि-भुवन**—सारे जगत् को।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप निजी कारणों से चैतन्य महाप्रभु के इस रूप में अवतरित होकर प्रकट हुए हैं। आप अपने स्वयं के आध्यात्मिक आनन्द का आस्वादन करने के लिए आये हैं और साथ ही साथ भगवत्प्रेम का प्रसार करके सारे जगत् को रूपान्तरित कर रहे हैं।

আপনে আইলে মোরে করিতে উদ্ধার ।
এবে কপট কর,—তোমার কোন ব্যবহার ॥২৮১॥

आपने आइले मोरे करिते उद्धार ।
एबे कपट कर,—तोमार कोन व्यवहार ॥ २८१ ॥

आपने—स्वयं; **आइले**—आप आये हैं; **मोरे**—मेरे पास; **करिते**—करने; **उद्धार**—उद्धार; **एबे**—अब; **कपट**—कपट; **कर**—आप करते हैं; **तोमार**—आपका; **कोन**—क्या; **व्यवहार**—व्यवहार।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप मुझे मुक्ति प्रदान करने के लिए अपनी अहैतुकी कृपा से मेरे समक्ष प्रकट हुए हैं। अब लेकिन आप छल कर रहे हैं। ऐसे व्यवहार का क्या कारण है?"

তবে হাসি' তাঁরে প্রভু দেখাইল স্বরূপ ।
'রস-রাজ', 'মহাভাব'—দুই এক রূপ ॥২৮২॥

तबे हासि' ताँरे प्रभु देखाइल स्वरूप ।
'रस-राज', 'महाभाव'—दुइ एक रूप ॥ २८२ ॥

तबे—अत:; **हासि'**—मुस्कुराकर; **ताँरे**—उनको (रामानन्द राय को); **प्रभु**—महाप्रभु ने; **देखाइल**—दिखाया; **स्वरूप**—अपना निजी स्वरूप; **रस-राज**—रसराज; **महा-भाव**—महाभाव; **दुइ**—दोनों; **एक**—एक; **रूप**—रूप।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण समस्त आनन्द के आगार हैं और श्रीमती राधारानी साक्षात् महाभावमय भगवत्प्रेम की मूर्तिमन्त स्वरूप हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु

में ये दोनों स्वरूप मिलकर एक हो गये हैं। ऐसा होने के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय को अपना वास्तविक स्वरूप दिखलाया।

तात्पर्य

इसका वर्णन *राधाभावद्युतिसुवलितं नौमिकृष्णस्वरूपम्* में हुआ है। भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमती राधारानी के स्वरूप में मग्न थे। इसका पता रामानन्द राय को तब चला, जब उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को देखा। एक उन्नत भक्त यह समझ सकता है—*श्रीकृष्णचैतन्य, राधाकृष्ण नहे अन्य।* श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण तथा राधा का समन्वित रूप होने के कारण राधा-कृष्ण युगल से अभिन्न हैं। स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने इसकी व्याख्या की है :

राधा कृष्णप्रणयविकृतिर्ह्लादिनी शक्तिरस्माद्
एकात्मानावपि भुवि पुरा देहभेदं गतौ तौ।
चैतन्याख्यं प्रकटं अधुना तद्द्वयं चैक्यमाप्तं
राधाभावद्युतिसुवलितं नौमि कृष्णस्वरूपम्॥

(*चैतन्य-चरितामृत,* आदि १.५)

राधा-कृष्ण एक हैं। राधा-कृष्ण कृष्ण तथा कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति का संयुक्त रूप हैं। जब कृष्ण अपनी ह्लादिनी शक्ति को प्रकट करते हैं, तो वे दो—राधा तथा कृष्ण—प्रतीत होते हैं। अन्यथा राधा तथा कृष्ण दोनों एक हैं। इस एकत्व की अनुभूति श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से महाभागवत कर सकता है। रामानन्द राय के साथ ऐसा ही हुआ। मनुष्य ऐसा ही पद पाने की आकांक्षा कर सकता है, किन्तु उसे महाभागवत का अनुकरण नहीं करना चाहिए।

দেখি' রামানন্দ হৈলা আনন্দে মূর্চ্ছিতে ।
ধরিতে না পারে দেহ, পড়িলা ভূমিতে ॥২৮৩॥

देखि' रामानन्द हैला आनन्दे मूर्च्छिते ।
धरिते ना पारे देह, पड़िला भूमिते ॥ २८३ ॥

देखि'—यह रूप देखकर; **रामानन्द**—रामानन्द राय; **हैला**—हो गये; **आनन्दे**—आनन्द में; **मूर्च्छिते**—अचेत; **धरिते**—उनको पकड़ना; **ना**—नहीं; **पारे**—सम्भव; **देह**—शरीर; **पड़िला**—गिर गये; **भूमिते**—भूमि पर।

अनुवाद

यह स्वरूप देखकर रामानन्द राय दिव्य आनन्द के कारण मूर्छित हो गये। वे खड़े नहीं रह सके, अतः भूमि पर गिर पड़े।

प्रभु তাঁরে হস্ত স্পর্শি' করাইলা চেতন ।
সন্ন্যাসীর বেষ দেখি' বিস্মিত হৈল মন ॥২৮৪॥

प्रभु ताँरे हस्त स्पर्शि' कराइला चेतन ।
सन्न्यासीर वेष देखि' विस्मित हैल मन ॥ २८४॥

प्रभु—महाप्रभु; **ताँरे**—रामानन्द राय को; **हस्त**—हाथ; **स्पर्शि'**—स्पर्श करके; **कराइला**—किया; **चेतन**—सचेत; **सन्न्यासीर**—संन्यासी; **वेष**—वेश; **देखि'**—देखकर; **विस्मित**—विस्मित; **हैल**—हो गया; **मन**—मन।

अनुवाद

जब रामानन्द राय मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े, तो चैतन्य महाप्रभु ने उनके हाथ का स्पर्श किया, जिससे उन्हें तुरन्त चेतना प्राप्त हो गई। किन्तु जब उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को संन्यासी वेश में देखा, तो वे आश्चर्यचकित हो गये।

আলিঙ্গন করি' প্রভু কৈল আশ্বাসন ।
তোমা বিনা এই-রূপ না দেখে অন্য-জন ॥২৮৫॥

आलिङ्गन करि' प्रभु कैल आश्वासन ।
तोमा विना एइ-रूप ना देखे अन्य-जन ॥ २८५॥

आलिङ्गन करि'—उनका आलिंगन करके; **प्रभु**—महाप्रभु ने; **कैल**—किया; **आश्वासन**—आश्वस्त; **तोमा विना**—आपके बिना; **एइ-रूप**—यह रूप; **ना**—नहीं; **देखे**—देखा; **अन्य-जन**—अन्य किसी ने।

अनुवाद

रामानन्द राय का आलिंगन करने के बाद महाप्रभु ने उन्हें सान्त्वना दी और बतलाया, "आपके अतिरिक्त अन्य किसी ने यह स्वरूप नहीं देखा है।"

तात्पर्य

भगवद्गीता (७.२५) में कहा गया है :

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥

"मैं मूर्खों तथा बुद्धिहीनों के समक्ष कभी प्रकट नहीं होता। उनके लिए तो मैं अपनी अन्तरंगा शक्ति (योगमाया) से आच्छादित रहता हूँ, जिससे वे मुझ अजन्मा तथा अव्यय को नहीं जान पाते।"

भगवान् अपना यह अधिकार बनाये रखते हैं कि वे हर एक के समक्ष प्रकट न हों। किन्तु भक्तगण सदैव भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं। वे अपनी जीभ से हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करके और महाप्रसाद का आस्वादन करके उनकी सेवा करते हैं। निष्ठावान भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को धीरे धीरे प्रसन्न कर लेता है, और भगवान् अपने आपको प्रकट कर देते हैं। कोई भी मनुष्य अपने निजी प्रयास से भगवान् का दर्शन नहीं कर सकता। भगवान् जब भक्त की सेवा से प्रसन्न होते हैं, तभी वे स्वयं को प्रकट करते हैं।

मोर तত্ত্ব-লীলা-রস তোমার গোচরে ।
অতএব এই-রূপ দেখাইলুঁ তোমারে ॥২৮৬॥

मोर तत्त्व-लीला-रस तोमार गोचरे ।
अतएव एइ-रूप देखाइलुँ तोमारे ॥ २८६ ॥

मोर—मेरा; **तत्त्व-लीला**—तत्त्व तथा लीलाएँ; **रस**—और रस; **तोमार**—आपकी; **गोचरे**—जानकारी में; **अतएव**—अतएव; **एइ-रूप**—यह रूप; **देखाइलुँ**—मैंने दिखाया है; **तोमारे**—आपको।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पुष्टि की, "मेरी लीलाओं तथा रसों का सारा तत्त्व (सत्य) आपको ज्ञात है। इसीलिए मैंने आपको यह स्वरूप दिखलाया है।

গৌর অঙ্গ নহে মোর—রাধাঙ্গ-স্পর্শন ।
গোপেন্দ্র-সুত বিনা তেঁহো না স্পর্শে অন্য-জন ॥২৮৭॥

গৌর অঙ্গ নহে মোর—রাধাঙ্গ-স্পর্শন ।
গোপেন্দ্র-সুত বিনা তেঁহো না স্পর্শে অন্য-জন ॥ ২৮৭॥

গৌর—गोरा; **অঙ্গ**—शरीर; **নহে**—नहीं; **মোর**—मेरा; **রাধা-অঙ্গ**—श्रीमती राधारानी के शरीर का; **স্পর্শন**—स्पर्श; **গোপেন্দ্র-সুত**—नन्द महाराज का पुत्र; **বিনা**—बिना; **তেঁহো**—श्रीमती राधारानी; **না**—नहीं; **স্পর্শে**—छूती हैं; **অন্য-জন**—और किसी को।

अनुवाद

"वास्तव में मेरा शरीर गौर वर्ण का नहीं है। यह तो श्रीमती राधारानी के शरीर का स्पर्श करने से ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु राधारानी नन्द महाराज के पुत्र के अतिरिक्त अन्य किसी का स्पर्श नहीं करती।

তাঁর ভাবে ভাবিত করি' আত্ম-মন ।
তবে নিজ-মাধুর্য করি আস্বাদন ॥২৮৮॥

তাঁর ভাবে ভাবিত করি' আত্ম-মন ।
তবে নিজ-মাধুর্য্য করি আস্বাদন ॥ ২৮৮॥

তাঁর—श्रीमती राधारानी के; **ভাবে**—भावावेश में; **ভাবিত**—रंग लिया; **করি'**—करके; **আত্ম-মন**—शरीर तथा मन; **তবে**—तब; **নিজ-মাধুর্য্য**—मेरा अपना दिव्य माधुर्य; **করি**—मैं करता हूँ; **আস্বাদন**—आस्वादन।

अनुवाद

"अब मैंने अपने शरीर तथा मन को श्रीमती राधारानी के भाव में रंग लिया है। इस तरह मैं अपने ही माधुर्य का आस्वादन उस रूप में कर रहा हूँ।"

तात्पर्य

गौरसुन्दर ने यहाँ श्री रामानन्द राय को बतलाया, "आप वास्तव में गौर वर्ण वाले किसी भिन्न व्यक्ति को देख रहे थे। वास्तव में मैं गौर वर्ण का नहीं हूँ। मैं नन्द महाराज का पुत्र श्रीकृष्ण होने के कारण श्याम हूँ, किन्तु श्रीमती राधारानी के सम्पर्क में आते ही मैं बाहर से गौर वर्ण का हो जाता हूँ। श्रीमती राधारानी कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी के शरीर का स्पर्श नहीं करती। मैं

श्रीमती राधारानी का वर्ण स्वीकार करके अपने ही दिव्य स्वरूप का आस्वादन करता हूँ। राधारानी के बिना कृष्ण के माधुर्य रस के दिव्य आनन्द का आस्वादन नहीं किया जा सकता।" इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्राकृत सहजिया सम्प्रदाय पर टीका करते हैं, जो कृष्ण तथा भगवान् चैतन्य को पृथक्-पृथक् शरीर वाले मानता है। वे यहाँ श्लोक २८७ में आये *गौर अङ्ग नहे मोर* शब्दों की गलत विवेचना करते हैं। उस श्लोक में तथा इस श्लोक में यह समझा जा सकता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण से अभिन्न हैं। दोनों एक ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। कृष्ण के रूप में भगवान् आध्यात्मिक आनन्द का भोग करते हैं और समस्त भक्तों के आश्रय—*विषय-विग्रह*—बने रहते हैं। अपने गौरांग स्वरूप में कृष्ण श्रीमती राधारानी के भाव में कृष्ण-विरह का आस्वादन करते हैं। यह भाव से पूरित स्वरूप श्रीकृष्ण चैतन्य है। श्रीकृष्ण सदैव समस्त आनन्द के दिव्य आगार हैं और *धीरललित* कहलाते हैं। श्रीमती राधारानी मूर्तिमन्त आध्यात्मिक शक्ति हैं, जो साक्षात् कृष्ण-प्रेम हैं। इसीलिए केवल कृष्ण ही उनका स्पर्श कर सकते हैं। यह *धीरललित* पक्ष भगवान् के किसी अन्य रूप में—न तो विष्णु में, न नारायण में देखा जाता है। इसीलिए श्रीमती राधारानी गोविन्द-नन्दिनी तथा गोविन्द-मोहिनी कहलाती हैं, क्योंकि वे ही कृष्ण के दिव्य आनन्द की एकमात्र स्रोत हैं और वे ही ऐसी हैं, जो उनके चित्त को हर सकती हैं।

तोमार ठाञि आमार किछु गुप्त नाहि कर्म ।
लुकाइले प्रेम-बले जान सर्व-मर्म ॥२८९॥

तोमार ठाञि आमार किछु गुप्त नाहि कर्म ।
लुकाइले प्रेम-बले जान सर्व-मर्म ॥ २८९ ॥

तोमार ठाञि—आपके सामने; **आमार**—मेरा; **किछु**—कुछ भी; **गुप्त**—गुप्त; **नाहि**—नहीं है; **कर्म**—कर्म; **लुकाइले**—यदि मैं छुपाऊँ भी; **प्रेम-बले**—आपके प्रेम के बल पर; **जान**—आप जानते हो; **सर्व-मर्म**—सब कुछ विस्तार से।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने शुद्ध भक्त रामानन्द राय के समक्ष स्वीकार किया, "अब कोई ऐसा गुप्त कार्य नहीं है, जो आपसे अज्ञात हो।

यद्यपि मैं अपने कार्यों को गुप्त रखने की चेष्टा करता हूँ, फिर भी आप मेरे प्रति अपने उन्नत प्रेम के कारण प्रत्येक बात को विस्तार से समझ सकते हैं।"

गुप्ते राखिह, काहाँ ना करिओ प्रकाश ।
आमार वातुल-चेष्टा लोके उपहास ॥२९०॥

गुप्ते राखिह, काहाँ ना करिओ प्रकाश ।
आमार बातुल-चेष्टा लोके उपहास ॥ २९० ॥

गुप्ते—गुप्त; **राखिह**—रखो; **काहाँ**—कहीं भी; **ना**—नहीं; **करिओ**—करो; **प्रकाश**—प्रकाशित; **आमार**—मेरा; **बातुल-चेष्टा**—उन्मत्त व्यक्ति जैसे कार्यकलाप; **लोके**—सामान्य लोगों में; **उपहास**—हँसी।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने रामानन्द राय से अनुरोध किया, "इन सारी बातों को गुप्त रखें। आप इन्हें कहीं भी प्रकट न करें। चूँकि मेरे कार्य उन्मत्त व्यक्ति जैसे प्रतीत होते हैं, अतएव लोग उनकी गम्भीरता न समझते हुए हँसी उड़ा सकते हैं।"

आमि—एक वातुल, तुमि—द्वितीय वातुल ।
अतएव तोमाय आमाय हइ सम-तुल ॥२९१॥

आमि—एक बातुल, तुमि—द्वितीय बातुल ।
अतएव तोमाय आमाय हइ सम-तुल ॥ २९१ ॥

आमि—मैं; **एक**—एक; **बातुल**—उन्मत्त आदमी; **तुमि**—आप; **द्वितीय**—दूसरे; **बातुल**—उन्मत्त आदमी; **अतएव**—अतएव; **तोमाय**—आप; **आमाय**—मैं; **हइ**—हैं; **सम-तुल**—समान स्तर पर।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने तब कहा, "मैं सचमुच उन्मत्त व्यक्ति हूँ और आप भी उन्मत्त हो। अतएव हम दोनों समान धरातल पर हैं।"

तात्पर्य

रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की ये वार्ताएँ एक सामान्य व्यक्ति,

जो भक्त नहीं है, उसे हास्यास्पद प्रतीत होती हैं। सारा जगत् भौतिक विचारधाराओं से भरा है और लोग इन वार्ताओं को, संसारी दर्शन द्वारा बद्ध होने के कारण, समझने में असमर्थ हैं। जो लोग संसारी कार्यों में अत्यधिक लिप्त रहते हैं, वे रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के बीच की इन भावपूर्ण वार्ताओं को नहीं समझ सकेंगे। इसीलिए महाप्रभु ने रामानन्द राय से अनुरोध किया कि वे इन सारी वार्ताओं को गुप्त रखें और उन्हें सामान्य जनता के सामने प्रकट न करें। जो वास्तव में कृष्णभावनामृत में उन्नत होता है, वही इन गुप्त बातों को समझ सकता है, अन्यथा ये विक्षिप्त प्रतीत होंगी। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय को बतलाया कि वे दोनों ही बातुल (उन्मत्त) लगते हैं और एक ही धरातल पर हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (२.६९) द्वारा भी होती है :

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

"जो समस्त जीवों के लिए रात है, वह संयमी व्यक्तियों के लिए जगने का समय है, और जो समस्त जीवों के लिए जगने का समय है, वह अन्तर्दर्शी मुनियों के लिए रात है।"

कभी-कभी संसारी व्यक्तियों को कृष्णभावनामृत एक प्रकार का पागलपन जैसा प्रतीत होता है, जिस तरह संसारी व्यक्तियों के कार्य कृष्णभावनाभावित व्यक्ति द्वारा पागलपन का एक रूप समझे जाते हैं।

एइ-रूप दश-रात्रि रामानन्द-सङ्गे ।
सुखे गोङाइला प्रभु कृष्ण-कथा-रङ्गे ॥२९२॥

एइ-रूप दश-रात्रि रामानन्द-सङ्गे ।
सुखे गोङाइला प्रभु कृष्ण-कथा-रङ्गे ॥ २९२॥

एइ-रूप—इस प्रकार; **दश-रात्रि**—दस रातें; **रामानन्द सङ्गे**—श्री रामानन्द राय के साथ; **सुखे**—सुखपूर्वक; **गोङाइला**—व्यतीत की; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **कृष्ण-कथा-रङ्गे**—कृष्ण कथाओं की चर्चा के दिव्य आनन्द में।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय ने कृष्ण की लीलाओं पर चर्चा करते हुए सुखपूर्वक दस रातें बिताईं।

निगूढ़ ब्रजेर रस-लीलार विचार ।
अनेक कहिल, तार ना पाइल पार ॥ २९३ ॥

निगूढ़ व्रजेर रस-लीलार विचार ।
अनेक कहिल, तार ना पाइल पार ॥ २९३ ॥

निगूढ़—अत्यन्त रहस्यपूर्ण; **व्रजेर**—व्रजभूमि वृन्दावन की; **रस-लीलार**—कृष्ण तथा गोपियों के माधुर्य प्रेम की लीलाओं का; **विचार**—विचार; **अनेक**—अनेक; **कहिल**—बातें की; **तार**—उनकी; **ना**—नहीं; **पाइल**—पाई; **पार**—सीमा।

अनुवाद

रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के बीच हुई वार्ताएँ अत्यन्त गूढ़ हैं, जो वृन्दावन (व्रजभूमि) में राधा तथा कृष्ण के माधुर्य प्रेम से सम्बन्धित हैं। यद्यपि दोनों ने इन लीलाओं पर विस्तार से बातें कीं, किन्तु वे उनका पार नहीं पा सके।

तामा, काँसा, रूपा, सोना, रत्न-चिन्तामणि ।
केह यदि काहाँ पोता पाय एक-खानि ॥ २९४ ॥

तामा, काँसा, रूपा, सोना, रत्न-चिन्तामणि ।
केह यदि काहाँ पोता पाय एक-खानि ॥ २९४ ॥

तामा—तांबा; **काँसा**—कांसा; **रूपा**—चांदी; **सोना**—सोना; **रत्न-चिन्तामणि**—चिन्तामणि पत्थर, सारी धातुओं का आधार; **केह**—कोई; **यदि**—यदि; **काहाँ**—कहीं; **पोता**—दबा हुआ; **पाय**—पाता है; **एक-खानि**—एक खान में।

अनुवाद

वस्तुतः ये वार्ताएँ उस विशाल खान के तुल्य हैं, जहाँ पर एक ही स्थान से सभी तरह की धातुएँ निकाली जा सकती हैं यथा ताँबा, काँसा, चाँदी, सोना तथा अन्य सभी धातुओं का आधार चिन्तामणि पत्थर।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के बीच हुइ वार्ताओं का सारांश इस प्रकार दिया है—रामानन्द राय ने श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा पूछे गये पाँच प्रश्नों के उत्तर दिये और ये प्रश्न तथा उनके उत्तर श्लोक ५७ से ६७ में दिये गये हैं। पहला उत्तर ताँबे के समान दूसरा उससे बेहतर काँसे के समान, तीसरा उससे भी बेहतर चाँदी के समान, चौथा सर्वोत्तम धातु स्वर्ण के समान है, किन्तु पाँचवा उत्तर अत्यन्त मूल्यवान रत्न चिन्तामणि के समान है, क्योंकि इसमें भक्तिमय जीवन के चरम लक्ष्य—अनन्य भक्ति—का उल्लेख है और यह अपने पूर्व के चार उत्तरों पर प्रकाश डालने वाला है।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इंगित करते हैं कि व्रजभूमि में रेतीले तटों वाली यमुना नदी है। वहाँ कदम्ब वृक्ष हैं, गौवें हैं, कृष्ण की लकुटियाँ हैं जिनसे वे गौवें हाँकते थे, तथा कृष्ण की वंशी है। ये सभी शान्त रस से सम्बन्धित हैं। इसके अतिरिक्त कृष्ण के प्रत्यक्ष दास हैं—यथा चित्रक, पत्रक तथा रक्तक—ये सभी दास्य भाव के साकार रूप हैं। वहाँ श्रीदामा तथा सुदामा आदि मित्र भी हैं, जो सख्य भाव के द्योतक हैं। नन्द महाराज तथा माता यशोदा वात्सल्य रस के प्रतीक हैं। इन सबसे ऊपर हैं—माधुर्य रस की प्रतीक श्रीमती राधारानी तथा उनकी गोपी सखियाँ—ललिता, विशाखा आदि। इस तरह पाँचों रस—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य निरन्तर व्रजभूमि में विद्यमान रहते हैं। इनकी तुलना क्रमशः ताँबा, काँसा, चाँदी, सोना तथा सभी धातुओं की आधार चिन्तामणि से की गई है। इसलिए श्रील कविराज गोस्वामी वृन्दावन या व्रजभूमि में धातुओं की खान के सनातन अस्तित्व का उल्लेख करते हैं।

क्रमे उठाइते सेह उत्तम वस्तु पाय ।
ऐछे प्रश्नोत्तर कैल प्रभु-रामराय ॥ २९५ ॥

क्रमे उठाइते सेह उत्तम वस्तु पाय ।
ऐछे प्रश्नोत्तर कैल प्रभु-रामराय ॥ २९५ ॥

क्रमे—धीरे धीरे; **उठाइते**—उठाने के लिए; **सेह**—उस व्यक्ति को; **उत्तम**—उत्तम;

वस्तु—धातु; **पाय**—पाता है; **ऐछे**—उसी प्रकार; **प्रश्न-उत्तर**—प्रश्न तथा उत्तर; **कैल**—किये हैं; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **राम-राय**—और रामानन्द राय ने।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय ने एक से एक उत्तम धातुओं को निकालने वाले खनिक का काम किया। उनके प्रश्न तथा उत्तर बिल्कुल इसी तरह के हैं।

आर दिन राय-पाशे विदाय मागिला ।
विदायेर काले ताँरे एइ आज्ञा दिला ॥२९६॥

आर दिन राय-पाशे विदाय मागिला ।
विदायेर काले ताँरे एइ आज्ञा दिला ॥ २९६ ॥

आर दिन—अगले दिन; **राय-पाशे**—रामानन्द राय से; **विदाय मागिला**—विदा माँगी; **विदायेर काले**—प्रस्थान के समय; **ताँरे**—उनको; **एइ**—यह; **आज्ञा**—आज्ञा; **दिला**—दी।

अनुवाद

अगले दिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रस्थान करने के लिए रामानन्द राय से अनुमति माँगी। विदा होते समय महाप्रभु ने राय को निम्नलिखित आज्ञा दी।

विषय छाड़िया तुमि याह नीलाचले ।
आमि तीर्थ करि' ताँहा आसिव अल्प-काले ॥२९७॥

विषय छाड़िया तुमि याह नीलाचले ।
आमि तीर्थ करि' ताँहा आसिब अल्प-काले ॥ २९७ ॥

विषय—भौतिक कार्य; **छाड़िया**—छोड़कर; **तुमि**—आप; **याह**—जाओ; **नीलाचले**—जगन्नाथ पुरी; **आमि**—मैं; **तीर्थ करि'**—अपनी तीर्थयात्रा समाप्त करके; **ताँहा**—वहाँ; **आसिब**—लौट जाऊँगा; **अल्प-काले**—बहुत जल्दी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे कहा, "आप सारे भौतिक कार्यकलाप छोड़कर जगन्नाथ पुरी जायें। मैं अपनी तीर्थयात्रा समाप्त करके शीघ्र ही वहाँ लौट आऊँगा।

দুই-জনে নীলাচলে রহিব এক-সঙ্গে ।
সুখে গোঙাইব কাল কৃষ্ণ-কথা-রঙ্গে ॥২৯৮॥

দুइ-জনে নীলাচলে রহিব এক-সঙ্গে ।
সুখে গোঙাইব কাল কৃষ্ণ-কথা-রঙ্গে ॥ ২৯৮ ॥

দুइ-জনে—হম দোনों; **নীলাচলে**—জগন্নাথ পুরী में; **রহিব**—रहेंगे; **এক-সঙ্গে**—साथ में; **সুখে**—सुखपूर्वक; **গোঙাইব**—व्यतीत करेंगे; **কাল**—समय; **কৃষ্ণ-কথা-রঙ্গে**—कृष्ण कथाओं की चर्चा में आनन्द लेते हुए।

अनुवाद

"हम दोनों जगन्नाथ पुरी में मिलकर रहेंगे और कृष्ण-कथा कहते हुए सुखपूर्वक अपना समय बितायेंगे।"

এত বলি' রামানন্দে করি' আলিঙ্গন ।
তাঁরে ঘরে পাঠাইয়া করিল শয়ন ॥২৯৯॥

এত বলি' রামানন্দে করি' আলিঙ্গন ।
তাঁরে ঘরে পাঠাইয়া করিল শয়ন ॥ ২৯৯ ॥

এত বলি'—यह कहकर; **রামানন্দে**—श्री रामानन्द राय का; **করি'**—करके; **আলিঙ্গন**—आलिंगन; **তাঁরে**—उनको; **ঘরে**—उनके घर; **পাঠাইয়া**—भेजकर; **করিল**—किया; **শয়ন**—विश्राम।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय का आलिंगन किया और उन्हें उनके घर भेजकर वे स्वयं विश्राम करने लगे।

প্রাতঃ-কালে উঠি' প্রভু দেখি' হনুমান্ ।
তাঁরে নমস্করি' প্রভু দক্ষিণে করিলা প্রয়াণ ॥৩০০॥

প্রাতঃ-কালে উঠি' প্রভু দেখি' হনুমান্ ।
তাঁরে নমস্করি' প্রভু দক্ষিণে করিলা প্রয়াণ ॥ ৩০০ ॥

প্রাতঃ-কালে—प्रातः काल; **উঠি'**—उठकर; **প্রভু**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **দেখি'**—देखकर; **হনুমান্**—गाँव के विग्रह हनुमान; **তাঁরে**—उनको; **নমস্করি'**—नमस्कार करके; **প্রভু**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **দক্ষিণে**—दक्षिण की ओर; **করিলা**—किया; **প্রয়াণ**—प्रस्थान।

अनुवाद

प्रातःकाल जगने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु स्थानीय मन्दिर में गये, जहाँ हनुमानजी का विग्रह था। उन्हें नमस्कार करने के बाद महाप्रभु ने दक्षिण भारत के लिए प्रस्थान किया।

तात्पर्य

भारत के समस्त कस्बों तथा शहरों में भगवान् रामचन्द्र के शाश्वत सेवक हनुमानजी के मन्दिर हैं। यहाँ तक कि वृन्दावन में गोविन्दजी के मन्दिर के पास भी हनुमान-मन्दिर है। पहले यह मन्दिर गोपालजी मन्दिर के सामने था, किन्तु गोपालजी का वह विग्रह साक्षीगोपाल के रूप में उड़ीसा चले गये। भगवान् रामचन्द्रजी के शाश्वत दास होने के कारण हनुमानजी की पूजा लाखों वर्षों से बड़े ही आदर के साथ होती चली आ रही है। यहाँ तक कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने दृष्टान्त प्रस्तुत किया कि किस तरह मनुष्य को हनुमानजी का आदर करना चाहिए।

'विद्यापूरे' नाना-मत लोक वैसे यत ।
प्रभु-दर्शने 'वैष्णव' हैल छाड़ि' निज-मत ॥३०१॥

'विद्यापूरे' नाना-मत लोक वैसे यत ।
प्रभु-दर्शने 'वैष्णव' हैल छाड़ि' निज-मत ॥३०१॥

विद्यापूरे—विद्यानगर में; **नाना-मत**—विभिन्न विचार वाले; **लोक**—लोग; **वैसे**—रहते थे; **यत**—सब; **प्रभु-दर्शने**—श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन करके; **वैष्णव**—वैष्णव; **हैल**—हो गये; **छाड़ि'**—छोड़कर; **निज-मत**—अपना अपना मत।

अनुवाद

विद्यानगर के सारे निवासी विभिन्न मतों को मानने वाले थे, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने के बाद उन्होंने अपना-अपना मत त्याग दिया और वैष्णव बन गये।

रामानन्द हैला प्रभुर विरहे विह्वल ।
प्रभुर ध्याने रहे विषय छाड़िया सकल ॥३०२॥

रामानन्द हैला प्रभुर विरहे विह्वल ।
प्रभुर ध्याने रहे विषय छाड़िया सकल ॥ ३०२ ॥

रामानन्द—श्रील रामानन्द राय; **हैला**—हो गये; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु के; **विरहे**—विरह में; **विह्वल**—विह्वल; **प्रभुर ध्याने**—श्री चैतन्य महाप्रभु का ध्यान करके; **रहे**—रहते; **विषय**—सांसारिक कार्य; **छाड़िया**—छोड़कर; **सकल**—सब।

अनुवाद

रामानन्द राय श्री चैतन्य महाप्रभु के विरह में विह्वल हो उठे। वे अपने सारे भौतिक कार्यकलाप त्यागकर महाप्रभु के ध्यान में मग्न रहने लगे।

सङ्क्षेपे कहिलुँ रामानन्देर मिलन ।
विस्तारि' वर्णिते नारे सहस्र-वदन ॥ ३०३ ॥

सङ्क्षेपे कहिलुँ रामानन्देर मिलन ।
विस्तारि' वर्णिते नारे सहस्र-वदन ॥ ३०३ ॥

सङ्क्षेपे—संक्षेप में; **कहिलुँ**—मैंने वर्णन किया है; **रामानन्देर मिलन**—श्रील रामानन्द राय से मिलन; **विस्तारि'**—विस्तार से; **वर्णिते**—वर्णन करने के लिए; **नारे**—नहीं सम्भव; **सहस्र-वदन**—हजारों मुखवाले भगवान् शेषनाग।

अनुवाद

मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय के मिलन का संक्षेप में वर्णन किया है। इसका पूरे विस्तार से वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है। यहाँ तक कि हजार फनों वाले भगवान् शेषनाग भी इसका वर्णन नहीं कर सकते।

सहजे चैतन्य-चरित्र——घन-दुग्ध-पूर ।
रामानन्द-चरित्र ताहे खण्ड प्रचुर ॥ ३०४ ॥

सहजे चैतन्य-चरित्र——घन-दुग्ध-पूर ।
रामानन्द-चरित्र ताहे खण्ड प्रचुर ॥ ३०४ ॥

सहजे—साधारणतया; **चैतन्य-चरित्र**—श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; **घन-दुग्ध-पूर**—गाढ़े दूध की भाँति; **रामानन्द-चरित्र**—रामानन्द राय की कथा; **ताहे**—उसमें; **खण्ड**—मिश्री (मिठास); **प्रचुर**—बड़ी मात्रा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलाप गाढ़े दूध के समान हैं और रामानन्द राय के कार्यकलाप मिश्री के ढेर के समान हैं।

রাধা-কৃষ্ণ-লীলা—তাতে কর্পূর-মিলন ।
ভাগ্যবান্ যেই, সেই করে আস্বাদন ॥৩০৫॥

राधा-कृष्ण-लीला—ताते कर्पूर-मिलन ।
भाग्यवान् ग्रेइ, सेइ करे आस्वादन ॥ ३०५ ॥

राधा-कृष्ण-लीला—राधा-कृष्ण की लीलाएँ; **ताते**—उस मिश्रण में; **कर्पूर**—कपूर; **मिलन**—मिलाया; **भाग्यवान्**—भाग्यशाली; **ग्रेइ**—वह जो; **सेइ**—वह व्यक्ति; **करे**—करता है; **आस्वादन**—आस्वादन।

अनुवाद

उनका मिलन गाढ़े दूध और मिश्री के मिश्रण के समान है। जब वे राधा तथा कृष्ण की लीलाओं के विषय में बातें करते हैं, तो मानो उसमें कपूर मिल गया हो। जो व्यक्ति इस मिश्रित व्यंजन का स्वाद चखता है, वह परम भाग्यशाली है।

যে ইহা এক-বার পিয়ে কর্ণ-দ্বারে ।
তার কর্ণ লোভে ইহা ছাড়িতে না পারে ॥৩০৬॥

ग्रे इहा एक-बार पिये कर्ण-द्वारे ।
तार कर्ण लोभे इहा छाड़िते ना पारे ॥ ३०६ ॥

ग्रे—जो कोई; **इहा**—यह; **एक-बार**—एक बार; **पिये**—पी लेता है; **कर्ण-द्वारे**—कान द्वारा; **तार**—उसको; **कर्ण**—कान; **लोभे**—लोभ में; **इहा**—इसे; **छाड़िते**—छोड़ना; **ना**—नहीं; **पारे**—सम्भव।

अनुवाद

इस अद्‌भुत व्यंजन को कानों से ग्रहण करना होता है। जो इसे ग्रहण करता है, वह इसका और अधिक आस्वादन करने के लिए लालायित हो जाता है।

'रस-तत्त्व-ज्ञान' हय इहार श्रवणे ।
'प्रेम-भक्ति' हय राधा-कृष्णेर चरणे ॥ ३०७ ॥

'रस-तत्त्व-ज्ञान' हय इहार श्रवणे ।
'प्रेम-भक्ति' हय राधा-कृष्णेर चरणे ॥ ३०७ ॥

रस-तत्त्व-ज्ञान—राधा-कृष्ण के माधुर्य-प्रेम के रस का दिव्य ज्ञान; **हय**—है; **इहार**—इसको; **श्रवणे**—सुनने से; **प्रेम-भक्ति**—प्रेमाभक्ति; **हय**—सम्भव हो जाती है; **राधा-कृष्णेर चरणे**—राधा-कृष्ण के चरणकमलों में।

अनुवाद

रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की वार्ताओं को सुनकर राधाकृष्ण-लीलाओं के रसों का दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है। इस तरह राधा तथा कृष्ण के चरणकमलों के प्रति अनन्य प्रेम विकसित हो सकता है।

चैतन्येर गूढ़-तत्त्व जानि इहा हैते ।
विश्वास करि' शुन, तर्क ना करिह चित्ते ॥ ३०८ ॥

चैतन्येर गूढ़-तत्त्व जानि इहा हैते ।
विश्वास करि' शुन, तर्क ना करिह चित्ते ॥ ३०८ ॥

चैतन्येर—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **गूढ़-तत्त्व**—गुप्त तत्त्व; **जानि**—हम जान सकते हैं; **इहा हैते**—इन बातों से; **विश्वास करि'**—दृढ़ विश्वास करके; **शुन**—सुनते हैं; **तर्क**—तर्क; **ना**—नहीं; **करिह**—करते; **चित्ते**—हृदय में।

अनुवाद

लेखक का हर पाठक से यही अनुरोध है कि इन वार्ताओं को श्रद्धापूर्वक बिना तर्क किये सुने। इस तरह से अध्ययन करने पर ही वह श्री चैतन्य महाप्रभु के गूढ़ तत्त्व को समझ सकेगा।

अलौकिक लीला एइ परम निगूढ़ ।
विश्वासे पाइये, तर्के हय बहु-दूर ॥ ३०९ ॥

अलौकिक लीला एइ परम निगूढ़ ।
विश्वासे पाइये, तर्के हय बहु-दूर ॥ ३०९ ॥

अलौकिक—अप्राकृत; **लीला**—लीलाएँ; **एइ**—यह; **परम**—परम; **निगूढ़**—रहस्यपूर्ण; **विश्वासे**—श्रद्धा से; **पाइये**—हम पा सकते हैं; **तर्के**—तर्क से; **हय**—है; **बहु-दूर**—बहुत दूर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का यह अंश परम गोपनीय है। मनुष्य केवल श्रद्धा से तुरन्त लाभान्वित हो सकता है, अन्यथा तर्क करने से वह इससे वंचित रहेगा।

श्री-चैतन्य-नित्यानन्द-अद्वैत-चरण ।
याँहार सर्वस्व, ताँरे मिले एइ धन ॥ ३१० ॥

श्री-चैतन्य-नित्यानन्द-अद्वैत-चरण ।
य्याँहार सर्वस्व, ताँरे मिले एइ धन ॥ ३१० ॥

श्री-चैतन्य—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **नित्यानन्द**—नित्यानन्द प्रभु का; **अद्वैत-चरण**—श्री अद्वैत प्रभु के चरणकमल; **य्याँहार सर्व-स्व**—जिनका सर्वस्व; **ताँरे**—उसको; **मिले**—मिलता है; **एइ**—यह; **धन**—धन।

अनुवाद

जिसने श्री चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु के चरणकमलों को सब कुछ मान रखा है, वही इस दिव्य खजाने को प्राप्त कर सकता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि जो श्रद्धावान हैं उन्हें कृष्ण सुलभ हैं, किन्तु जो तर्क करने के अभ्यस्त हैं, उनके लिए कृष्ण दुर्लभ हैं। इसी तरह जिस व्यक्ति में दृढ़ श्रद्धा है, वही रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की इन वार्ताओं को समझ सकता है। जो *अश्रौतपन्थी* हैं अर्थात् जो गुरु-शिष्य परम्परा से जुड़े नहीं हैं, उनकी इन वार्ताओं में श्रद्धा नहीं हो सकती। वे सदैव संशय करते हैं और कपोल-कल्पना में लगे रहते हैं। ऐसे स्वच्छन्द लोग इन वार्ताओं को नहीं समझ पाते। जो तर्क करने वाले हैं, उनसे भी ये दिव्य वार्ताएँ दूर रहती हैं। इस सम्बन्ध में *कठ उपनिषद* (१.२.९) का कहना है—*नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ। मुण्डक उपनिषद* (३.२.३) के अनुसार :

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन
यमेवैषवृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥

और *ब्रह्मसूत्र* (२.१.११) के अनुसार—*तर्काप्रतिष्ठानात्।*

सभी वैदिक ग्रंथों की घोषणा है कि दिव्य विषयों को केवल तर्क या दलील से नहीं समझे जा सकते। आध्यात्मिक बातें व्यावहारिक ज्ञान से बहुत ऊपर हैं। यदि कोई कृष्ण के दिव्य प्रेम-व्यापारों में रुचि रखता है, तो वह कृष्ण-कृपा होने पर ही उन्हें समझ सकता है। जो व्यक्ति केवल भौतिक बुद्धि के बल पर इन दिव्य कथाओं को समझना चाहता है, उसका प्रयास निष्फल जाता है। फिर चाहे वह प्राकृत सहजिया हो या संसारी अवसरवादी या पंडित, संसारी साधनों के द्वारा इन कथाओं को समझने के लिए किया जाने वाला उसका श्रम व्यर्थ जायेगा। अत: मनुष्य को सारे सांसारिक प्रयास त्यागकर भगवान् विष्णु का शुद्ध भक्त बनने का प्रयास करना चाहिए। जब ऐसा भक्त विधानों का पालन करता है, तो इन कथाओं का सत्य उसके समक्ष प्रकट होगा। इसकी पुष्टि *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.२.२३४) में हुई है :

अत: श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियै:।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यद: ॥

मनुष्य अपनी स्थूल भौतिक इन्द्रियों से भगवान् के नाम, लीला, रूप, गुण तथा पार्षदों को नहीं समझ सकता। किन्तु निरन्तर सेवा करते रहने से जब इन्द्रियाँ शुद्ध हो जाती हैं, तो राधाकृष्ण की लीलाओं का आध्यात्मिक सत्य (तत्त्व) प्रकट होता है। *मुण्डक उपनिषद* में पुष्टि हुई है—*यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्*। जिस पर पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् की कृपा होती है, वही श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य स्वरूप को समझ सकता है।

रामानन्द रायेर मोर कोटी नमस्कार ।
याँर मुखे कैल प्रभु रसेर विस्तार ॥३११॥

रामानन्द राये मोर कोटी नमस्कार ।
याँर मुखे कैल प्रभु रसेर विस्तार ॥ ३११ ॥

रामानन्द राये—श्री रामानन्द राय को; **मोर**—मेरा; **कोटी**—करोड़; **नमस्कार**—नमस्कार; **याँर मुखे**—जिनके मुख से; **कैल**—किया; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **रसेर विस्तार**—दिव्य रस का विस्तार।

अनुवाद

मैं श्री रामानन्द राय के चरणकमलों में एक करोड़ बार नमस्कार करता हूँ, क्योंकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके मुख से प्रचुर आध्यात्मिक ज्ञान का विस्तार किया।

दामोदर-स्वरूपेर कड़चा-अनुसारे ।
रामानन्द-मिलन-लीला करिल प्रचारे ॥ ३१२ ॥
दामोदर-स्वरूपेर कड़चा-अनुसारे ।
रामानन्द-मिलन-लीला करिल प्रचारे ॥ ३१२ ॥

दामोदर-स्वरूपेर—स्वरूप दामोदर गोस्वामी की; **कड़चा**—गुटके के; **अनुसारे**—अनुसार; **रामानन्द-मिलन-लीला**—रामानन्द मिलन-लीला का; **करिल**—किया है; **प्रचारे**—प्रचार।

अनुवाद

मैंने श्री स्वरूप दामोदर के गुटकों के अनुसार श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय की मिलन-लीलाओं का प्रचार किया है।

तात्पर्य

लेखक प्रत्येक अध्याय के अन्त में गुरु-शिष्य परम्परा के महत्त्व को स्वीकार करते चलते हैं। वे यह दावा कभी नहीं करते कि उन्होंने शोध-कार्य के आधार पर यह दिव्य साहित्य रचा है। वे स्वरूप दामोदर, रघुनाथ दास गोस्वामी तथा अन्य प्रामाणिक भक्तों द्वारा लिखे गये गुटकों (टिप्पणियों) के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। दिव्य साहित्य का लेखन इसी तरह से किया जाता है, क्योंकि यह साहित्य तथाकथित विद्वानों तथा शोधार्थियों के लिए नहीं है। सही विधि है—*महाजनो येन गत: स पन्था:* /महापुरुषों तथा आचार्यों

का पूरी तरह अनुगमन करना अनिवार्य है। *आचार्यवान् पुरुषो वेद*—जिसे आचार्य की कृपा प्राप्त होती है, वह हर बात जान जाता है। कविराज गोस्वामी का यह कथन समस्त शुद्ध भक्तों के लिए अत्यन्त मूल्यवान है। कभी-कभी प्राकृत सहजिये दावा करते हैं कि उन्होंने अपने गुरु से सत्य सुना है। किन्तु अप्रामाणिक गुरु से श्रवण करके दिव्य ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। गुरु को प्रामाणिक होना चाहिए, और उसे अपने प्रामाणिक गुरु से श्रवण किया हुआ होना चाहिए। तभी उसके सन्देश को प्रामाणिक माना जायेगा। इसकी पुष्टि भगवान् कृष्ण द्वारा *भगवद्गीता* (४.१) से होती है :

श्री भगवान् उवाच
इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान् अहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥

"भगवान् ने कहा, 'मैंने यह अमर योग-विद्या का उपदेश सूर्यदेव विवस्वान को प्रदान किया, और विवस्वान् ने इसे मनुष्य जाति के पिता मनु को प्रदान किया, और मनु ने इसे इक्ष्वाकु को प्रदान किया।'"

इस तरह कोई सन्देश प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु-शिष्य परम्परा से एक प्रामाणिक गुरु से प्रामाणिक शिष्य तक पहुँचाया जाता है। इसीलिए श्रील कविराज गोस्वामी पहले ही की तरह इस अध्याय की समाप्ति छः गोस्वामियों के चरणकमलों पर अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए करते हैं। इस तरह वे अपना यह दिव्य साहित्य—*चैतन्य-चरितामृत*—प्रस्तुत कर सके।

শ্রী-রূপ-রঘুনাথ-পদে যার আশ ।
চৈতন্য-চরিতামৃত কহে কৃষ্ণদাস ॥ ৩১৩॥

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे ग्रार आश ।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ ३१३॥

श्री-रूप—श्रील रूप गोस्वामी; **रघुनाथ**—श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; **पदे**—के चरणकमलों पर; **ग्रार**—जिनकी; **आश**—आशा; **चैतन्य-चरितामृत**—*चैतन्य चरितामृत* नामक ग्रन्थ; **कहे**—वर्णन करता है; **कृष्ण-दास**—श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप और श्री रघुनाथ दास के चरणकमलों पर प्रार्थना करते उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलकर श्रीचैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार चैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के आठवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जो श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय के मध्य हुई वार्ताओं से सम्बन्धित है ।